वीर-चरितावलीका चौथा ग्रन्थ

भारतके महापुरुष

दूसरा भाग

लेखक—

पं० शिवशंकर मिश्र

प्रकाशक—

निहालचन्द एण्ड कम्पनी।

नं० २, नारायणप्रसाद बाबू लेन,

कलकत्ता।

प्रथमवार १००० } सं० १९८० { मूल्य सादी २॥)

रेशमी जिल्द ३।)

प्रकाशक—

निहालचन्द वर्म्मा।

१, नारायणप्रसाद बाबू लेन, कलकत्ता।

मुद्रक—

दयाराम बेरी।

"श्रीकृष्ण प्रेस"

१, नारायणप्रसाद बाबू लेन, कलकत्ता।

यह ग्रन्थ क्यों लिखा गया ?

हिन्दी साहित्यमें इस समय ऐसा कोई भी ग्रन्थ नहीं है, जिसमें एक साथ अनेक प्राचीन महापुरुषोंके शिक्षाप्रद जीवन वृत्तान्त अङ्कित हों। जबतक किसी साहित्यमें ऐसे ग्रन्थ न हों, जिन्हें पढ़कर मनुष्य अपना मानव--जीवन सुधार सके, तबतक वह साहित्य अधूरा ही रहता है। इस लिये इस ग्रन्थके लिखनेकी आवश्यकता हुई।

इस ग्रन्थसे लाभ

अपने पूर्व महापुरुषोंका जीवन-वृत्तान्त पढ़नेसे प्राचीन कीर्तिकी अनोखी छटा मनुष्यकी आंखोंके सामने घूमने लगती है। उनकी अच्छी चाल-चलन, उनकी उत्तम रीति-रसम, उनका पवित्र पारिवारिक प्रेम, उनकी महान वीरता, उनका विशुद्ध विश्व-प्रेम, उनकी अटल प्रभु-भक्ति, उनकी अनोखी तर्कशैली, उनकी अकाट्य युक्तियाँ, उनका सच्चा विज्ञान, उनकी अतिउत्तम नीति आदिका हाल पढ़नेसे मनुष्यका मन उत्तम तरंगोंसे भर जाता है। यदि उन महापुरुषोंका वृत्तान्त मननकर, मनुष्य उनका अनुसरण करे, तो मानव-सृष्टिमें अपने आपको ऊँचे आसनपर बैठा सकता है, यही इस ग्रन्थके पढ़नेसे लाभ है।

वक्तव्य ।

परम कृपालु परमात्माकी अपार अनुकम्पासे आज 'भारतके महापुरुष' का द्वितीय भाग प्रकाशित हो रहा है। प्रस्तुत पुस्तकके विषयमें जो कुछ कहना था, वह प्रथम भागकी भूमिकामेंही कहा जा चुका है। जिस उद्देश्यको लेकर प्रथम भाग लिखा गया था, उसी उद्देश्यको लेकर दूसरे भागकी भी सृष्टि हुई है।

यहाँपर यह बतला देना आवश्यक है, कि कुछ जीवनियों को छोड़, अधिकांश जीवनियां एक गुजराती ग्रन्थके सहारे लिखी गयीं हैं। जो जीवनियां मैंने स्वतन्त्र रूपसे लिखीं हैं, उनके सङ्कलनमें भी अनेक ग्रन्थोंसे सहायता ली है। ऐसी दशामें मुझे इस ग्रन्थका लेखक समझना, अपने आपको भ्रममें डालना है। मैंने केवल एक मालाकारकी भाँति साहित्य उद्यानसे इन आदर्श-पुष्पोंको चुन विद्यानुरागियोंके निकट एक चरित्र-माला प्रस्तुत करनेकी चेष्टा भर की है।

पुस्तककी अनेक त्रुटियोंको जानते हुए भी मैं अपनी विद्या, बुद्धि और अध्यवसाय बलकी कमीके कारण उन्हें दूर नहीं कर सका। आशा है, कि सहृदय पाठकगण उन त्रुटियोंपर ध्यान न दे, केवल सार ग्रहण कर मेरा परिश्रम सफल करेंगे।

कलकत्ता
वसन्त पञ्चमी सम्वत १९८०

शिवशंकर मिश्र।
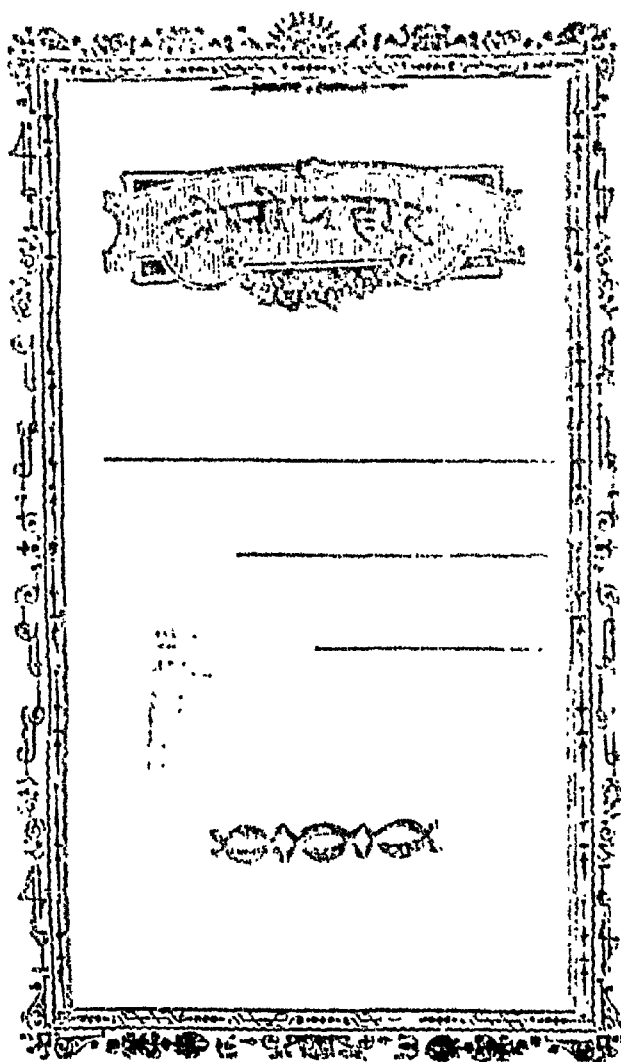
चित्र परिचय ।
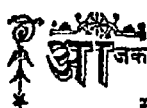
आजकल पुस्तकोंको चित्रोंसे सजाकर निकालनेकी प्रथा सी चल पड़ी है, परन्तु उनके कारण पुस्तकोंका मूल्य बढ़ जाना किसी प्रकार वाञ्छनीय नहीं; इस लिये इस पुस्तकमें केवल टाइटिल पेजके अतिरिक्त और चित्र नहीं दिये गये। टाइटिल पेजपर कुल सात महापुरुषोंके चित्र हैं।

(१) स्वामी शङ्कराचार्य (२) महात्मा गौतम बुद्ध
(३) स्वामी दयानन्द सरस्वती (४) गोस्वामी तुलसीदास
(५) महात्मा सूरदास (६) महाकवि कालिदास
और (७) कुटिल चाणक्य।

पाठकगण इन क्रमाङ्कोंके सहारे उन चित्रोंका परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

प्रकाशक ।

प्रथम खण्ड ।

द्वितीय खण्ड ।

नाटक प्रेमियो !

यदि आप रङ्गमञ्चपर अभिनीत करने योग्य
नये-नये नाटक पढ़ना चाहते हों तो

॥) प्रवेश फी भेजकर

हमारे यहांसे प्रकाशित होनेवाली

नाट्य-ग्रन्थमाला

के

स्थायी ग्राहक बन जाइये ।

॥) आना अग्रिम प्रवेश फी भेजकर स्थायी ग्राहक
बननेवालोंको इस मालामें निकलनेवाले सभी
ग्रन्थ पौनी कीमतमें मिला करेंगे ।

पता—

निहालचन्द एण्ड कम्पनी ।

नं० १, नारायणप्रसाद बाबू लेन, कलकत्ता ।

द्वितीय भाग।

प्रथम खण्ड।

महान् धर्म्म-प्रवर्त्तक।

महात्मा गौतम बुद्ध।

सिद्धार्थ-बुद्ध सूर्य्यवंशी क्षत्रिय थे। उनके पिताका नाम शुद्धोदन था। वे एक प्रदेशके अधीश्वर थे। कपिल वस्तु नामक नगर उनकी राजधानी थी। नेपालकी तराईमें वर्तमान गोरखपुरके पास वह नगर स्थित था। शुद्धोदन शाक्य वंशी थे। शाक्यवंशके मूल पुरुष इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न थे। वह अपने पिताके भयसे गोतम वंशी कपिलमुनिके आश्रममें एक शाक वृक्षमें छिप रहे थे। उनका वंश इसीके कारणसे शाक्य किंवा गौतमके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

राजा शुद्धोदन धर्मनिष्ठ थे। उनके राज्यमें धन, धान्य, सुख, शान्ति, प्रेम और पुण्य सर्वत्र व्याप्त हो रहे थे। वे अहो-र्निश प्रजाके हित-चिन्तनमें लीन रहते थे। धनी और निर्धन, पण्डित और मूर्ख सभी उनके राज्यमें एक समान सुख भोग करते थे।

कपिलवस्तुके पासही एक अञ्जन नामक राजा राज्य करता था। देवदह नामक नगरमें उसकी राजधानी थी। उसके महा माया और गौतमी नामक दो सुन्दर कन्यायें थीं। राजा शु-द्धोदनका विवाह उन्हींके साथ हुआ था। वे दोनों स्त्रियां पति-पद-रता परम पतिव्रता थी। जैसा उनमें रूप लावण्य और सौन्दर्य था, वैसेही सुन्दर गुण भी थे। दीर्घ काल व्यतीत हो गया, परन्तु राजाके कोई सन्तान न हुई। वे और उनकी स्त्रियां इस अभावके कारण उदास रहते थे। ठीक ४५ वर्षकी अवस्थामें महामायाके एक पुत्र हुआ। सबकी आशा सिद्ध हुई, अतः उसका नाम सिद्धार्थ रक्खा गया। राज्यमें सर्वत्र उत्सव और आनन्द मनाया गया।

जब सिद्धार्थ सात दिनके हुए तब उनकी माताका देहान्त हो गया। विमाता गौतमीने उनका प्रतिपालन किया। जब वह बड़े हुए तब उनका उपनयन संस्कार हुआ। इसके बाद राजसी ठाटके साथ उनकी शिक्षा दीक्षा हुई। बालक सिद्धार्थ बड़े मेधावी थे। कुछही वर्षोंमें वह वेद वेदाङ्ग पारङ्गत हो गये। ज्यों ज्यों उनका ज्ञान बढ़ता गया त्यों त्यों उनकी प्रकृति

में गम्भीरता आती गयी। उनके पिता चाहते थे, कि वह उनके समानही शूरवीर और राजविद्या विशारद हो, परन्तु सिद्धार्थको आरम्भसेही खेल कूदसे घृणा थी। वे राजकीय वाटिकाके एकान्त स्थलोंमें बैठकर सोच विचारमें अपना समय विताया करते थे। उनकी दृष्टि सृष्टि-सौन्दर्य्यका अवलोकन और चिंत विचार करनेमें लीन रहता था। सुख और ऐश्वर्य्यपर उन्हें प्रेम न था। वे सांसारिक पदार्थोंकी ओरसे प्रायः विरक्त रहा करते थे।

शुद्धोदन अपने पुत्रकी उदासीनता देख चिन्तित रहते थे। फिर भी युवा होनेपर सिद्धार्थने अपना शस्त्र कौशल दिखलाकर स्वयंवरमें अपने लिये एक राजकन्याको जीत लिया। इस प्रकार कुछ दिनोंके लिये वह सांसारिक विषयोंमें फंस गये और बाल्यकालके चिन्तनीय विषयोंको उन्होंने भुला दिया।

उनकी स्त्रीका नाम यशोधरा था। वह सुन्दर और पतिव्रता रमणी थी। सिद्धार्थ उसे प्राप्तकर अपनेको धन्य समझने लगे। भविष्यमें उसने उन्हें बड़ी सहायता पहुंचायी। पति पत्नी दोनोंके हृदय प्रेमपाशमें आबद्ध हो गये। कुछ दिनोंके लिये सिद्धार्थकी उदासीनता विलुप्त हो गयी। उनके पिता उन्हें इस दशामें देख प्रसन्न रहने लगे।

कुछ दिनोंके बाद सिद्धार्थकी वैराग्य वृत्ति पुनः जागरित हुई। फिर वे पूर्ववत् उदास रहने लगे। इस बार शुद्धोदनने उन्हें फंसानेके लिये अनेक उपाय किये। उन्होंने उनके लिये एक

सुशोभित और रमणीय महल बनवा दिया। उसमें उन्होंने सुख भोग और विलासके सभी पदार्थ रखवा दिये। इसके अतिरिक्त उनके मनोरंजनार्थ गायन, वादन और नृत्य-कला-कुशल अनेक सुन्दर नायिकाओंका प्रबन्ध किया।

इस प्रकार सिद्धार्थको मायाजालमें जकड़ रखनेके लिये शुद्धोदनने अनेक उपाय किये, परन्तु सिद्धार्थके हृदयपर उनका कोई प्रभाव न पड़ा। दिन प्रतिदिन उनकी विरक्ति बढ़ती गयी। एक दिन वे अपने राज-भवनमें सो रहे थे। प्रातःकालका समय था। बन्दीजन उन्हें जगानेके लिये एक प्रभाती गा रहे थे। सिद्धार्थ अर्द्धनिद्रित दशामें पड़े हुए थे। बन्दीजनोंका गान सुन वे उठ बैठे। प्रभातीने उनकी मोह निद्रा सदाके लिये दूर कर दी। वे ध्यान पूर्वक उसे सुनने लगे। उसका भावार्थ यह था:—

"संसार जरा, व्याधि और दुःखसे भरा हुआ है। प्राणी मात्रको जरा और मृत्युके अधीन होना पड़ता है। मानव-जीवन जल बुद्बुद वत् क्षण स्थायी है। जिस प्रकार हरिण शिकारीके जालमें उलझ जाता है, उसी प्रकार मनुष्य सांसारिक सुख और स्त्री पुत्रादिके मोहपाशमें बंध जाते हैं। पहले शरीर सुन्दर और सुकोमल होता है, परन्तु बादको जरा, व्याधि और दुःख उसे जर्जर बना देते हैं। जबतक धन धान्य होता है तब तक स्वजन और स्नेही प्रेम करते हैं। जब धन नहीं होता तब कोई नहीं चाहता। वृक्षपर वज्रपात होनेपर जो दशा उसको

होती है, वही दशा जराजीर्ण मनुष्यकी होती है। वृद्धत्व महान् शत्रु है। वह मनुष्यके वेग, पराक्रम और वीर्यको नष्टकर देता है। उसका आक्रमण होतेही रूप विरूपमें और सुख दुःख में परिणत हो जाते है। हे भाइयो! इस शत्रुसे अपने आपको बचानेकी चेष्टा करो। जिस प्रकार सरिताके प्रवाहमें पड़ कर वृक्षके अङ्ग प्रत्यङ्ग अलग विलग हो जाते हैं, उसी प्रकार इस भवसागरमें पड़े हुए मनुष्यके स्वजन उससे विलग हो जाते है। एक बार वियोग हो जानेपर फिर कोई किसीको नहीं मिलता। मृत्यु सबको न जाने कहां खींच ले जाती है, अतः हे भाइयों! मोह निद्राका त्याग करो। उठो, जागृत हो! यही अवसर है। कर्त्तव्य पालन करो!"

सिद्धार्थ प्रभातीका भाव समझ गये। मानो उन्हें परमात्माने सचेत कर दिया। उनके नेत्रोंमें जल भर आया। वे गृह त्याग करनेके लिये उत्सुक हो उठे। हृदयमें वैराग्य स्फुरित हो उठा। वे अपनेको संसारके मोह जालमें उलझा हुआ देखने लगे। उनका चित्त चिन्तित हो उठा। वह एक बारगी विचार सागरमें निमग्न हो गये।

पतिकी यह दशा देख, यशोधरा व्याकुल हो उठी। उसे सिद्धार्थके विचारोंका पता लग गया। उसने अनेक प्रकारसे उन्हें समझानेकी चेष्टा की परन्तु कोई फल न हुआ। सिद्धार्थने कहा,—"प्रिये! मैं अब संसारमें लीन रहना नहीं चाहता। मनुष्यका जीवन दुःखमय है। सभी सांसारिक सुख अनित्य हैं

इन्हें भोग करना न करना बराबर है। मैं शीघ्रही गृहत्याग करूंगा। किसी वनमें रहकर कन्दमूल खाते हुए मैं शान्तिप्रद उपायोंकी खोज करूंगा।"

यह कहते हुए सिद्धार्थकी आंखोंमें जल भर आया। यशोधराने दुःखित हो कुंठित स्वरमें ऐसा न करनेके लिये प्रार्थना की। सिद्धार्थका निश्चय अटल था। वे उचित अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे। उनके यह विचार शुद्धोदनपर भी प्रकट हो गये, उन्होंने भी अनेक प्रकारसे उन्हें समझाया। सिद्धार्थ पिताकी बात सुन शान्त हो गये। ज्ञात होने लगा, कि उनके विचारोंमें अन्तर आ गया, परन्तु नहीं, इस बारकी अग्नि शान्त होनेवाली न थी। वह अन्दरही अन्दर धधक रही थी। केवल गम्भीरताने हृदयकी अशान्तिको छिपा रखा था।

एक दिन सिद्धार्थ अपने सारथिके साथ अश्वारूढ़ हो प्रमोदवनकी ओर जा रहे थे। मार्गमें उन्हें एक वृद्ध मनुष्य मिला। वह बड़ाही दुर्बल हो रहा था। शरीरमें रक्त और मांसका नाम भी न था। अङ्ग प्रत्यङ्गकी हड्डियां दिखाई दे रही थीं। उसके बन्धुओंने उसका त्याग कर दिया था। एक लकड़ीके सहारे बड़े कष्टके साथ वह धीरे धीरे चल रहा था।

सिद्धार्थको वृद्धकी दशा देख, बड़ा दुःख हुआ। आगे चलकर उन्होंने एक व्याधिग्रस्त मनुष्य देखा। उसका शरीर क्षत विक्षत हो रहा था। क्षतोंसे रक्त भी बह रहा था। वह बड़ी कठिनाईके साथ श्वास ले सकता था। उसका अन्तिम समय

समीप था। वह अपने मल मूत्रमें पड़ा हुआ था। न उसमें उठनेकी शक्ति थी, न उसका कोई सहायकही था, जो उसे उठा कर अन्यत्र सुलाता।

सिद्धार्थको इस मनुष्यकी दशा देख कर और भी क्षोभ हुआ। आगे चलकर उन्होंने एक और दृश्य देखा। एक मनुष्य मर गया था। उसे लोग श्मशान लिये जा रहे थे। उसके स्वजन हृदय भेदक स्वरमें क्रन्दन कर रहे थे।

यह सब देखकर सिद्धार्थका हृदय कांप उठा। राजमहलके अन्दर रहनेके कारण उन्हें संसारके दुःखोंका कुछ अनुमान न था। आज जब उन्होंने देखा, कि वृद्धताके कारण मनुष्यकी दुर्दशा हो जाती है, व्याधिके कारण मनुष्य क्लेशित होता है और मृत्यु ऐसी भयावनी वस्तु है, कि जिसके जालमें फंस कर संसारके सब सुखोंका अन्त हो जाता है, तो उनके हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे कहने लगे—"अहो! धिक् है, इस अनित्य जीवनको! जरा व्याधि और मृत्यु-यही तीन मनुष्यके साथी हैं।"

सिद्धार्थका हृदय तो पहलेहीसे वैराग्यवान् था, परन्तु आज के दृश्योंसे वह विशेष रूपसे प्रभावान्वित हुए। वह जीवनके कष्टों और परिवर्तनोंसे बचनेका उपाय सोचने लगे। आगे चलकर उन्हें एक संन्यासी मिला। सारथिसे उसका परिचय पूछने पर उसने बतलाया, कि यह संन्यासी है। इसने संसारकी वासना और द्वेषका त्याग कर दिया है। यह सभीको अपनेही समान देखता है और भिक्षान्न पर निर्वाह करता है।

सारथिकी यह बात सुन सिद्धार्थ प्रसन्न हुए। वे कहने लगे—"यह सांसारिक मनुष्योंसे कहीं अधिक सुखी है। मैं भी ऐसाही करना चाहता हूं। शास्त्रोंमें भी संन्यासीकी प्रशंसा की गयी है। संन्यासी अपना और साथही संसारका हित कर सकता है। संन्याससे लोक परलोक दोनों बन सकते हैं। शान्ति प्राप्त करनेके लिये यही मार्ग हितकर है।"

इसके बाद वे अपने उद्यान गये और वहां एकान्तमें बैठ कर्त्तव्य पर विचार करने लगे। उसी समय उन्हें पुत्र-जन्मका समाचार मिला। वे और भी चिन्तित हो उठे। मनही मन कहने लगे—"अभी तक एकही बन्धन था। मैं उसीसे छूटनेके लिये छटपटा रहा था। अब यह एक और बन्धन आ पड़ा। अब अधिक समय संसारमें रहना उचित नहीं। न जाने ऐसे कितने बन्धन आ पड़ेंगे। अब घरबार छोड़नेमें विलंब न करना चाहिये।"

इस प्रकारका विचार कर सिद्धार्थ अपने पिताके पास गये। नगरमें उत्सव मनाया जा रहा था। द्वारपर बधाई बज रही थी। महलके अन्दर मङ्गलाचार हो रहे थे। चारों ओर धूम मची हुई थी, परन्तु सिद्धार्थका हृदय क्षुब्ध हो रहा था। उन्होंने पिताको प्रणाम कर अपना निश्चय कह सुनाया और संन्यास ग्रहण करनेके लिये उनकी आज्ञा मांगी। शुद्धोदन मानो किसी अथाह सागरमें जा पड़े। उन्होंने सजल नेत्रहो कुंठित स्वरमें कहा—"ऐसा न करो। तुम्हें मैं गृहत्यागके लिये आज्ञा नहीं दे सकता। घरमें रह कर भी ईश्वर भजन हो सकता है। तुम्हारे

इच्छानुसार, जैसी कहो, वैसी व्यवस्था यहीं कर दूं। मैं वृद्ध हूं। तुम एक मात्र मेरे पुत्र हो। तुम जो कहो, वह करूँ। जो मांगो वह दूं, परन्तु वन जानेका विचार न करो।"

सिद्धार्थने हाथ जोड़ कर कहा—"मैं चार बातें चाहता हूं। यदि आप उनके लिये व्यवस्था कर दें तब तो मैं घरमें रह सकता हूं, अन्यथा मुझे कोई रोक नहीं सकता। मैं चाहता हूं, कि वृद्धता मुझ पर आक्रमण न करे। मेरा यौवन चिरस्थायी रहे। मेरा शरीर कभी व्याधि ग्रस्त न हो और मेरी मृत्यु न हो। यदि आप मेरी यह इच्छायें पूर्ण कर सकें, तो मैं संन्यास लेनेका नाम भी न लूं।"

सिद्धार्थकी यह बात सुन शुद्धोदन हताश हो गये। उन्होंने अनेक प्रकारसे उन्हें समझाया और बतलाया, कि तपस्या करने पर भी ऋषिमुनि जरा, व्याधि और मृत्युके बन्धनसे मुक्त नहीं हो सकते। परन्तु उनकी बातोंका सिद्धार्थ पर कोई प्रभाव न पड़ा।

रात्रिका समय था। चारों ओर भयानक सन्नाटा छा रहा था। निःस्तब्धताने अन्धकारकी भीषणता और भी बढ़ा दी थी। कहींसे एक शब्द भी नहीं सुनाई पड़ता था। राजपथ जन-शून्य हो रहा था। सिद्धार्थ चुपचाप महलसे नीचे उतर आये। अश्वशालामें जाकर उन्होंने अपना अश्व लिया और सारथिको साथ ले बाहर वनकी राह ली।

अपना साम्राज्य पार कर वे वैशाली और वैशालीसे मल्ल-

राज्य पहुंचे। कपिल वस्तुसे प्रायः पैंतालिस कोसके अन्तर पर एक वन था। वहां पहुंच कर वे घोड़ेसे उतर पड़े। एक दरिद्रीको अपने राजसी कपड़े दे उसके चीथड़े उन्होंने स्वयं पहन लिये। शिर पर वीरोचित केश थे। तलवारसे वह काट डाले। इसके बाद वस्त्राभूषण और अश्व अपने सारथिको दे, उसे कपिलवस्तु की ओर रवाना किया।

स्वामिभक्त सारथि रोता हुआ कपिलवस्तु लौट आया। नगरमें सिद्धार्थकी खोज हो रही थी। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। शुद्धोदन कलप रहे थे। गौतमी रो रही थी और विचारी यशोधरा, बच्चेको लिये शोक सागरमें डूब रही थी।

सारथिने आकर, जैसी सबको धारणा थी, वैसाही समाचार सुनाया। समय बीतनेके साथही शोकका वेग घट जाता है। कुछ दिनोंके बाद राजा शुद्धोदन धैर्य्य धारण कर पूर्ववत राज-काज करने लगे, उन्होंने सिद्धार्थके पुत्रका नाम रक्खा-राहुल। उसीके पालनमें वे व्यस्त रहने लगे। प्रजा भी उन्हें भूल गयी। दुःखिनी यशोधरा श्वेत वस्त्र धारण कर, कठिन व्रत पालन करने लगी। वह एक बार भोजन करती, भूमि पर सोती और जप तपमें लीन रहती। राज-वधू होने पर भी वह एक साधारण रमणीकी भाँति रहने लगी। उसने शृङ्गार और सुख भोग करना छोड़ दिया। केवल सौभाग्य सूचक सिन्दूर विन्दुको वह न छोड़ सकी। पति-प्राणा विचारी यशोधरा पति विरहसे सूखकर कांटा हो गयी।

सारथिको विदा कर गृहहीन भिक्षुककी भाँति सिद्धार्थ इधर उधर घूमने लगे। घूमते हुए वह महर्षि रैवतके आश्रम पहुंचे। वहां ऋषियोंने उनका बड़ा सत्कार किया। वहांसे वह वैशाली नगर गये। वैशालीमें आराद नामक एक वेदानुसारी सांख्य दर्शनके संन्यासी रहते थे। वे परम विद्वान थे। उनके निकट ३०० शिष्य विद्याध्ययन करते थे। सिद्धार्थ भी संन्यास ग्रहण कर शिष्य भावसे रहने लगे। उन्होंने उनके निकट दर्शन शास्त्र और ध्यानादिकी शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद वे राजगृह गये। राजगृहमें मगध राज्यकी राजधानी थी। उन दिनों राजा बिम्बसार वहां राज्य शासन करते थे। उन्होंने सिद्धार्थको संन्यास छोड़ अपने पास रहने पर आधा राज्य देनेको कहा। सिद्धार्थने कहा—"राजन्! वासना विषके समान है। वही क्लेशोंका कारण है। उसीका त्याग करनके लिये मैंने राज-सिंहासन छोड़ संन्यास ग्रहण किया है। असार वासनामें आबद्ध होकर मनुष्य दुःखी होता है। मैंने परम हितकर ज्ञान प्राप्त करनेके लिये जीवन अर्पण कर दिया है। मुझे राज्य न चाहिये।"

इसके बाद सिद्धार्थ उद्रक नामक ऋषिके पास गये। वे एक पर्वतकी गुफामें रहते थे। उनके ७०० शिष्य थे। सिद्धार्थ भी वहीं अध्ययन करने लगे। वहां उन्होंने तत्वज्ञान और योग-साधनाकी सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त की। उन्हें यह भी बतलाया गया कि केवल शास्त्र पठनसे वासनाका मूलोच्छेद नहीं हो

सकता। आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करनेके लिये तप द्वारा आत्म संयम करना चाहिये।

सिद्धार्थने यह सुनकर कठिन तपश्चर्या और कष्टों द्वारा इन्द्रियोंको निष्काम बना देनेका निश्चय किया। वे किसी उपयुक्त तपोवनकी खोज करने लगे। घूमते फिरते वह गयाके पास उरुविल्व नामक स्थानमें गये। वहां नैरंजना नदीके तटपर घना जंगल था। सिद्धार्थको वह स्थान पुण्य, शान्ति और पवित्रता की खान प्रतीत हुआ। वहीं उन्होंने तप करना निश्चय किया। कपिल वस्तुके पांच ब्राह्मण पुत्र जो उन्हें गुरु मानते थे, वहीं उनके पास रहने लगे।

सिद्धार्थ इच्छित वस्तु प्राप्त करनेके लिये घोर तप करने लगे। छः वर्ष पर्य्यन्त कठिन व्रतोंका पालन कर उन्होंने अपना शरीर सुखा दिया। बुद्ध गयाका मन्दिर अब भी उस स्थानको बताता है, जहां उन्होंने तपस्या की थी।

तप करनेसे सिद्धार्थका शरीर निर्बल और अशक्त हो गया, परन्तु इच्छा पूर्ण न हुई। वे इन्द्रिय निग्रह और शारीरिक वैराग्यको असार समझने लगे। उपवास और कायाकष्टसे चित्तकी शान्ति प्राप्त करनेके स्थानमें उनका हृदय निराशासे भर गया। शङ्का और दुविधाओंने उनके मनकी एकाग्रता भङ्ग कर दी। वह सोचने लगे, कि अबतकका तप निरर्थक हुआ। मानसिक कष्टोंके कारण मूर्च्छित होकर वह भूमिपर गिर पड़े। जब उनकी मूर्च्छा दूर हुई, तब उनके विचार बदल गये। वे अनु-

अब करने लगे, कि पहाड़ोंकी कन्दराओंमें जाकर किंवा जनशून्य वनोंमें बैठकर शरीरको कष्ट देनेसे मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। वे समझ गये, कि धर्म साधनके लिये शरीरकी रक्षा करनी चाहिये। अबतक वे समझते थे, कि गैरिक वसनोंको धारण कर, संन्यासी हो तप करनेसे शान्ति प्राप्त होगी, परन्तु अब उनकी धारणा बदल गयी उनके शिष्य अब भी समझते थे, कि काया कष्टों द्वाराही शान्ति मिलती है। गुरुमें यह आकस्मिक परिवर्तन देख, वे उन्हें छोड़ कर चले गये। उनका भक्तिभाव जाता रहा। वे समझने लगे, कि गुरु धर्मभ्रष्ट हो गये।

सिद्धार्थ वनमें अकेले रह गये। वे अपनी निष्फलताके कारण दुःखी होने लगे। एक बात और भी थी। संन्यास लेनेके बाद चार्वाक प्रभृति नास्तिक मतावलम्बियोंसे उनको भेंट हो गयी थी। उनके विचारोंने उनपर कुछ प्रभाव जमा लिया था। वे केवल आत्मबलसे शान्ति प्राप्त करना चाहते थे। ईश्वर कृपासे वासनाका मूलोच्छेद होता है, और तत्पश्चात् दीर्घ-कालके प्रयाससे मुक्ति मिलती है, इस पर उन्हें विश्वास न था। यही कारण था, कि उन्हें अपने प्रथम प्रयासमें निष्फल होना पड़ा।

सिद्धार्थ विफल मनोरथ हो पुनः कर्तव्य स्थिर करने लगे। एक ओर शरीर निग्रह—कठिन तपश्चर्या और दूसरी ओर विलास सम्भोग और मोह जाल, इन दोनोंको ठीक न समझ उन्होंने मध्यम मार्ग ग्रहण करना स्थिर किया। उन्होंने दूर्वाका

एक योगासन बनाया। उसपर एक वट वृक्षके नीचे बैठ वे एकाग्र हो विचार करने लगे। उन्होंने परमज्ञानकी प्राप्ति न होने तक वहांसे न उठनेकी प्रतिज्ञा की।

सतत सदुद्योगमें लगे रहनेसे आत्मकल्याण अवश्य होता है। बीचमें जरा भी भ्रमित होनेसे सञ्चय किया हुआ समस्त तपोधन नाश हो जाता है। आत्मकल्याणके लिये जिस समय मनुष्य उद्योग करता है, उस समय विविध प्रकारकी मनोभावनायें उत्पन्न हो हो कर उसमें विघ्न उपस्थित करती हैं। जब तक पांपका मूल नष्ट नहीं होता, तब तक मनुष्य निश्चिन्त नहीं हो सकता। सिद्धार्थ दृढ़ चित्त हो, आत्मध्यानमें निमग्न हुए, उनके मनमें अनेक भावनायें उत्पन्न होने लगीं। जब वे सत्यासत्य और नित्यानित्यका विचार करने लगे, तब उन्हें प्रतीत हुआ, कि संसारमें केवल एकही सत्य और नित्य वस्तु है। उसके अतिरिक्त सभी कुछ असार है। यह देखकर वे उसी सत्य और नित्य वस्तुके ध्यानमें निमग्न हुए। ऐसा करतेही उन्हें परम ज्ञानकी प्राप्ति हुई। जिस वट वृक्षके नीचे उन्हें ज्ञानकी प्राप्ति हुई, वह बोधी सत्य कहलाया। उसकी एक शाखा ई० स० पू० ३०० में सिंहलद्वीपके अनुरोधपुरमे ले जाकर लगाई गई। वहां वह वृक्ष अवतक विद्यमान हैं और संसार भरमें सबसे अधिक प्राचीन माना जाता है।

इसके बाद सिद्धार्थ, बुद्ध नामसे विख्यात हुए। उन्होंने सांख्य मतावलम्बी संन्यासियोंके निकट दर्शन शास्त्र, तत्वज्ञान

और वेदादि शास्त्रोंका अध्ययन किया था। इसके अतिरिक्त नास्तिक मतके विचारोंका भी उनके हृदयपर प्रभाव पड़ा था, बुद्धने उन दोनोंके तत्वोंमें अपने विचारोंका सम्मिश्रण कर नवीन धर्म्मकी स्थापना की। उस समय जो धर्म्म प्रचलित था उसमें प्रायश्चित्त, यज्ञादि कर्म्म, बलिदान, मन्त्रतन्त्र, देव देवी, ब्राह्मणोंपर विश्वास, प्रभृति बातोंकी प्रधानता थी। बुद्धके नवीन धर्म्ममें आत्म संयम और जीव दया (अहिंसा) का प्राधान्य था।

बुद्धने सांख्य दर्शनके संन्यासियोंसे अपने धर्म्मके यतियोंके आचारोंमें भिन्नता रक्खी। सर्व प्रथम वह बनारसके समीप वर्ती मृगदाव नामक स्थानमें गये। मार्गमें उन्हें आजीविक नामक एक ब्राह्मण मिला! उसने उनकी शान्तिमूर्त्ति देखकर पूछा—"ऐसा कौन धर्म्म है, जिसे ग्रहणकर आपने यह शान्ति लाभ की है।"

बुद्धने कहा—"भाई! अज्ञानता, पाप और तृष्णा, इन तीनोंका त्याग करनेसे मेरी यह दशा हुई है।"

बुद्धका यह उत्तर सुन ब्राह्मण विचार करता हुआ एक ओर चला गया। बुद्ध मृगदाव जा पहुंचे। वहां उन पांच शिष्योंसे भेट हुई, जो उन्हें जङ्गलमें छोड़ कर चले आये थे। बुद्ध उनके पास गये। उन्होंने उन्हें उपदेश देते हुए कहा—"देखो एक ओर सांसारिक मनुष्योंके उपभोग्य इन्द्रिय सुख हैं और दूसरी ओर फलहीन दुःखकर तपस्या। धर्म्मार्थियोंको इन

दोनोंका त्याग करना चाहिये। मैंने एक माध्यमिक मार्गकी खोज की है। धर्म्मार्थियोंके लिये वही उपयुक्त मार्ग है। उसे ग्रहण करनेसे दिव्यज्ञानकी प्राप्ति होगी, शान्ति मिलेगी और निर्वाण होगा।"

बुद्धकी यह बात सुन उन शिष्योंने वह मार्ग बतलानेकी प्रार्थना की। बुद्धने बतलाया, कि सत् दृष्टि, सत् सङ्कल्प, सदुवाक्य, सद्व्यवहार, सद्उद्योग, सत्स्मृति, सत्यसमाधि और सदुजीविका यही मेरे खोजे हुए आठ मार्ग हैं। दुःखही दुःखका कारण है। दुःखनिरोध दुःख रोकनेका मार्ग है। मेरे बतलाये हुए आचार सत्य हैं। जन्म होनेसेही नाना प्रकारके दुःख भोग करने पड़ते हैं। जरा, व्याधि और मृत्यु, यही महान् दुःख है। जीवन, तृष्णा और इन्द्रिय तृष्णा यह दुःखके कारण हैं। इन तृष्णाओंका मूलोच्छेद करनेसे दुःख दूर होता है, उपरोक्त आठ मार्ग दुःख रोकनेके मार्ग हैं। सहज ज्ञान और विचार शक्तिके प्रभावसे यह सत्य ज्ञान प्राप्त कर, मैं दुःखसे सदैवके लिये मुक्त हो गया हूं।

बुद्धने अपनी इन बातोंको अनेक प्रकारसे उन पांचोंको समझाया। अन्तमें वे उनके शिष्य हो गये। इस प्रकार प्रचारका श्रीगणेश कर बुद्ध लोगोंको उपदेश देने लगे। ब्राह्मण उपदेशकोंकी भांति उन्होंने केवल द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) कोही अपना उपदेश नहीं सुनाया, किन्तु साधारण लोगों तक भी उन्होंने अपनी आवाज पहुंचायी। पहले पहल शूद्रोंने

ही उनका धर्म स्वीकार किया। इनके बाद अन्यान्य लोग भी उनके शिष्य होने लगे। तीन मासमें उन्होंने साठ मनुष्योंको अपने धर्ममें दीक्षित किया। उन्हें उन्होंने समीपवर्ती प्रदेशोंमें प्रचारार्थ प्रेषित किया।

इसके बाद वे पुनः उरुविल्वके वनमें गये। वहां काश्यप नामक एक ब्राह्मण और उनके दो भाई रहते थे। वे तीनों दार्शनिक पण्डित और अग्नि उपासक थे। बुद्ध उनके पास कुछ दिनों तक रहे। काश्यप और उनमें सौहार्द स्थापित हो गया। काश्यपके निकट कुछ विद्यार्थी विद्याध्ययन किया करते थे। बुद्धने उन्हें उपदेश दे स्वधर्ममें दीक्षित कर लिया। काश्यप, धर्म विद्या और अपने चारित्र-बलके कारण देशमें विख्यात हो रहे थे। उन्होंने भी स्वधर्मको जलाञ्जलि दे बुद्धके सिद्धान्तोंको मान्य कर किया। इस घटनासे बुद्धकी सर्वत्र ख्याति हो गयी और उत्तरोत्तर उनके शिष्योंकी संख्यामें वृद्धि होने लगी।

बुद्ध वर्षमें आठ मास घूमकर प्रचार किया करते थे और वर्षाकालमें चार मास तक किसी नियत स्थानमें बैठ कर कुटियामें आये हुए लोगोंको उपदेश दिया करते थे। राजकुमार, व्यापारी शिल्पीगण, ब्राह्मण, वानप्रस्थी, कृषक और नागरिक सभी कोटिके मनुष्य आ आकर उनके सम्प्रदायको बढ़ाने लगे।

काश्यपको स्वमतानुयायी बनानेके बाद बुद्ध उन्हें अपने साथ ले राजगृह गये। हम पहलेही बतला चुके हैं, कि वहां बिम्बिसार नामक राजा राज्य करते थे। बुद्धके आगमनका समाचार सुन, वे

उनसे मिलने गये। नगरकी जनता भी उनके दर्शनार्थ उमड़ पड़ी। बुद्धने इस समय बड़ी युक्तिसे काम लिया। उन्होंने सबके सम्मुख काश्यपको खड़े कर उनसे पूछा—"तुमने अग्निकी उपासना क्यों छोड़ दी?"

काश्यपने उपस्थित जन समुदायको सुनाते हुए उच्च स्वरमें कहा—"लोग रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द तथा इन्द्रियोंकी सेवामें ही सुख समझते हैं। कुछ लोग बाह्य वैराग्य और बलि-दानकोही भला समझते हैं, परन्तु मैंने आचारोंको असार समझ कर उनका त्याग किया है।"

काश्यपकी बातोंका जनताके हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे स्वयं दार्शनिक पण्डित और आचार विचारके समर्थक थे। उन्हें इस प्रकार बुद्धके सिद्धान्तोंकी प्रशंसा करते देख, लोगोंकी बौद्ध सम्प्रदाय पर श्रद्धा बढ़ गयी। उनका वक्तव्य समाप्त होने पर बुद्धने अपने चार महासत्योंकी व्याख्या की और समयोचित उपदेश दिया। काश्यपके वक्तव्य और उनके व्याख्यानका लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। अनेकानेक मनुष्योंके साथ स्वयं मगधराज राजा बिम्बिसार भी उनके शिष्य हो गये।

काश्यप और बिम्बिसार इन दो प्रसिद्ध पुरुषोंकी देखा देखी अनेकानेक लोग बौद्ध धर्ममें दीक्षित हुए। बुद्धके शिष्यों की संख्या बहुत अधिक हो गयी। उन्होंने राजगृहके निकट वेणु वनमें अपना निवासस्थान नियत किया। वहां दो ब्राह्मण पुत्र आकर दीक्षित हुए। बुद्धने एकका नाम सारिपुत्र और

दूसरेका मौदगलयायन रक्खा। उनकी योग्यता देख बुद्धने उन्हें प्रधान पद प्रदान किया। अन्य शिष्योंको यह बात अच्छी न लगी। वे उनकी प्रधानता स्वीकार करनेको तय्यार न थे। आपसमें ईर्षा द्वेष और प्रपञ्च होने लगा। बुद्धने सबको समझा बुझा कर किसी प्रकार शान्त किया। पुनः ऐसा विवाद न हो अतः उन्होंने एक सभा कर नियमोंकी रचना करायी। उस सभाका नाम "श्रावक सन्निपात" और उन नियमोंका नाम "प्रतिमोक्ष" पड़ा।

इस प्रकार नियमोंकी रचना करा कर बुद्धने शिष्योंका मनोमालिन्य दूर कर दिया। इस आन्तरिक वादाविवादके कारण प्रचारकार्य्यमें कुछ शिथिलता आ गयी। कई मास तक एक भी मनुष्य उनके धर्म्ममें दीक्षित न हुआ। बुद्ध शिष्योंमें शान्ति स्थापित कर पुनः प्रचार करने लगे। फिर उसी तरह उनके शिष्योंकी संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी।

यह सब समाचार राजा शुद्धोदनने सुना। वे अपने पुत्रसे मिलनेको आतुर हो उठे। बुद्धके हृदयमें भी वैसीही भावना जागरित हुई। वे अपने कुछ शिष्योंको साथ ले कपिलवस्तुके लिये रवाना हुए। मार्गमें उन्होंने उपाली नामक एक नापितको अपना शिष्य बनाया। कपिलवस्तु पहुंच कर उन्होंने शिष्यों सह नगरके बाहर एक वट वृक्षके नीचे निवास किया।

दूसरे दिन बुद्ध नगरमें भिक्षा मांगने निकले। जनता अपने राजकुमारको इस भाँति संन्यासीके वेशमें देखकर व्याकुल हो उठी।

राजा शुद्धोदन और सती यशोधराने भी यह समाचार सुना। उनके भी दुःखका वारापार न रहा। बुद्धने जिस राजमहलको एक राजकुमारकी स्थितिमें छोड़ा था, उसमें परिव्राजककी स्थितिमें, पीत वस्त्रोंको धारण किये हुए, शिर मुड़ाये और हाथमें कमण्डलु लिये हुए पदार्पण किया।

शुद्धोदन अपने पुत्रको भिक्षा मांगते देख, क्षुब्ध हो रहे थे। महलमें राज परिवारने एकत्र हो उन्हें बहुत समझाया, परन्तु कोई फल न हुआ। इसके विपरीत जो कुछ बुद्धने कहा, उसका लोगोंके हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। राजा शुद्धोदनने भी उनके उपदेशको श्रद्धा पूर्वक सुना।

इसके बाद वे अपनी प्रिय पत्नीके पास गये। दुःखिनी यशोधरा विलाप करती हुई उनके चरणोंपर लोट पड़ी। बुद्धको उसकी दशा देखकर दया आ गयी। उन्होंने उसे अनेक प्रकारसे समझा बुझा कर शान्त किया। उनका उपदेश सुन, सब लोग उनके धर्म्म पर श्रद्धा दिखाने लगे। बुद्धने गौतमी पुत्र नन्दको अपने सम्प्रदायमें दीक्षित कर लिया। उसके अतिरिक्त उन्होंने अपने पुत्र राहुलको भी, जिसे उन्होंने नवजात शिशुकी दशामें छोड़ दिया था, बौद्ध धर्म्मकी दीक्षा दे दी। उसकी अवस्था सात वर्षकी थी। उन्होंने उसके बहुमूल्य वस्त्र उतार डाले और पीत पट परिधान कराकर अपने संघमें सम्मिलित कर लिया।

राजा शुद्धोदन यह समाचार सुन बड़े दुःखी हुए। उनका अब कोई उत्तराधिकारी न रहा। पुत्र और पौत्र-नन्द और राहुल,

दोनोंको बुद्धने संन्यासी बना दिया। वे कलपते हुए बुद्धके पास आये। उन्होंने उनके इस कार्य्यका विरोध किया। उन्होंने किसी बालकको, बिना उसके संरक्षकोंकी आज्ञाके, दीक्षा देना अनुचित बतलाया। बुद्धने भी उनकी यह बात मान ली और संघकी नियमावलीमें तद्विषयक एक नियम बढ़ा दिया।

इस प्रकार पत्नीको सान्त्वना, पिताको उपदेश और पुत्र तथा भाईके साथ अनेकानेक मनुष्योंको स्वधर्मकी दीक्षा दे. बुद्ध राजगृह लौट आये। इसके बाद वे पूर्ववत् लोगोंको उपदेश दे धर्म प्रचार करते रहे।

कौशल देशके श्रावस्ति नगरमें सुदत्त नामक एक धनवान वणिक रहता था। कुछ दिनोंके बाद बुद्धने उसे दीक्षा दी। उसने प्रचुर धन व्ययकर समीपवर्ती जेतवनमें एक विहार बनवा दिया।

एकबार बुद्धने चतुर्मास श्रावस्तिके विहारमें व्यतीत करना स्थिर किया। उनके वहां पहुंचनेके पूर्वही, उनके अनेकानेक गृहत्यागी शिष्योंने वहां डेरा डाल दिया था। जिस समय बुद्ध वहां पहुंचे उस समय रात्रि हो गयी थी। उन्हें कहीं ठहरनेकी जगह न मिली। शिष्योंने समस्त स्थान अधिकृत कर लिया था। विवश हो उन्हें एक वृक्षके नीचे रात्रि व्यतीत करनी पड़ी। उन्हें शिष्योंका अविवेक और स्वार्थ परता देखकर बड़ा दुःख हुआ। दूसरे दिन उन्होंने सबको एकत्र कर प्रभावशाली शब्दोंमें उपदेश दिया। उन्होंने बतलाया, कि मेरे धर्ममें वही बड़े हैं

जिनकी अवस्था बड़ी है। अपनेसे बड़ोंको सदा सन्तुष्ट रखना चाहिये और आदरकी दृष्टिसे देखना चाहिये।

इसके बाद बुद्ध पिताके जीवननिर्वाणोन्मुखका समाचार सुन कपिलवस्तु गये जिस समय वे वहां पहुंचे उस समय शुद्धोदन मृत्यु शय्या पर पड़े हुए थे। बुद्ध अपने शिष्यों सह उन्हें घर कर बैठ गये। शुद्धोदनने आंख खोल कर देखा। उनमे बोलनेकी शक्ति न थी। फिरभी, अपने प्रिय पुत्रको अन्तिम समयमें सम्मुख देख वे प्रसन्न हो उठे। उनके चेहरे पर हर्षकी रेखायें झलक मारने लगीं। दूसरे दिन उन्होंने शान्ति पूर्वक इस नश्वर शरीरका त्याग कर परलोक यात्रा की। उस समय उनकी अवस्था ६७ वर्षकी थी। बुद्ध ने यथाविधि उनका अग्नि संस्कार किया और दुःखी परिवारको उपदेश तथा सान्त्वना दे शान्त किया।

बुद्धने अपने वंशके प्रायः सभी राजकुमारोंको दीक्षा दे सन्यासी बना दिया था। राजकुटुम्बकी स्त्रियां पतियोंके होते हुए भी वैधव्य भोग रही थीं। शुद्धोदन ही एकमात्र उनके आधार थे। उनके न रहने पर सब निराश्रिता हो गयीं। बुद्धसे उन्होंने अपनेको दीक्षा दे संघमें सम्मिलित कर लेनेके लिये प्रार्थना की।

स्त्रियोंकी, जिनमें उनकी पत्नी यशोधरा भी थी, प्रार्थना सुन कर बुद्ध बड़े विचारमें पड़ गये। अब तक उन्होंने स्त्रियोंको दीक्षा न दी थी। संघमें उन्हें सम्मिलित करनेका नियम भी न था। पहले दो बार वह यशोधराकी प्रार्थना अमान्य भी कर

चुके थे। अब उन्होंने आनन्द नामक शिष्यकी सम्मतिसे उन का निवेदन स्वीकार कर लिया। आज पीछे स्त्रियां भी दीक्षा ग्रहण कर धार्मिक व्रत धारण करने लगीं। बुद्धने स्त्री और पुरुषोंको समान अधिकार प्रदान किये। साथही उन्होंने उनकी पवित्रता अखण्ड रखनेके लिये कुछ नियम भी बना दिये। गौतमी यशोधरा तथा उनके साथ अन्यन्य स्त्रियां भी बौद्ध मतमें दीक्षित हुईं। बुद्धने यशोधराको उन स्त्रियोंकी नेत्री नियुक्त किया।

बुद्ध जिस समय कौशाम्बीमें निवास करते थे उस समय एक भिक्षु किसी कारणसे दोषी ठहराया गया। संघके सामने उसने अपराध स्वीकार न किया, अतः उसका वहिष्कार कर दिया गया। वह विद्वान और धार्मिक तत्वोंका ज्ञाता था। उसके पाण्डित्य, बुद्धिमत्ता और विचार गाम्भीर्यको सभी लोग जानते थे। उसने अपनेको निर्दोष कहकर कुछ लोगोंको अपने पक्षमें कर लिया। संघ दो दलोंमें विभक्त हो गया। एक दल उसका पक्षपाती था और दूसरा विरोधी। बुद्धने दोनों दलोंको समझा कर यह विरोधाग्नि शान्त करनेकी चेष्टा की, परन्तु किसीने अपना दुराग्रह न छोड़ा।

दोनों दलोंका पारस्परिक विरोध दूर न हुआ। बुद्धके उपदेशका भी कोई प्रभाव न पड़ा। अन्तमें, इन दुराग्रहियोंके साथ रहनेकी अपेक्षा अकेला रहना कहीं अच्छा है, यह सोचकर बुद्ध श्रावस्ती चले गये।

बुद्धके चले जानेपर, लोगोंने साधुओंको झगड़ालू समझ,

सहायता देना बन्द कर दिया। यह हाल देख वे बुद्धको मना-लानेके लिये बाध्य हुए। दोनों दल श्रावस्ती पहुंचे। बुद्धने असन्तुष्ट होनेपर भी उन कलहप्रिय साधुओंसे कोई कठोर बात न कही। उनके आदेशानुसार भिक्षुकोंका एक सम्मेलन हुआ, और संघमें पूर्ववत् एकता स्थापित हो गयी।

बुद्धने राहुलको बाल्यावस्थामेंही दीक्षा दे दी थी। जिस समय वे पहली बार कपिलवस्तु गये थे, उस समय राहुल सात वर्षका बालक था। एक दिन यशोधराने उसे सुन्दर वस्त्र पहना कर बुद्धके पास भेजा। उसने राहुलको बतला दिया, कि यह परम तेजस्वी महापुरुष तेरे पूज्य पिता हैं। उनके पास चार ख-जाने हैं। पिताकी सम्पत्तिपर पुत्रका अधिकार होता है, अतः तुम उनके पास जाकर याचना करो।

राहुल माताके आदेशानुसार बुद्धके पास आया और बड़े साहस तथा प्रेमके साथ उन्हें पिता कहकर सम्बोधित किया। बुद्धने उसके शिरपर हाथ रख आशीर्वाद दिया। राहुलने पुनः साहसकर पैत्रिक सम्पत्ति मांगी। बुद्धने कहा—"पुत्र! मैं तुझे ऐसी सम्पत्ति न दूंगा, जो नष्ट हो जाय। धन-भाण्डार मेरे अधिकारमें नहीं है। मैं तुम्हें चार शिष्य दूंगा। क्या तुम उन शिष्योंके साथ रह सकोगे, जिन्होंने अन्तःकरणकी शुद्धि और परमानन्दकी प्राप्तिका व्रत धारण किया है?"

राहुलने बड़ी दृढ़ताके साथ कहा,—हां, क्यों नहीं!"

पुत्रका यह उत्तर सुन बुद्धने प्रसन्न हो उसे पीले कपड़े पहना

दिये और बड़े होनेपर अपने पास आनेको कहा। जब राहुलकी अवस्था बीस वर्षकी हुई, तब वह उनके पास गया। बुद्धने उस समय उसे उपदेश देते हुए कहा—"राहुल! तुम अपने विश्वास बलसे गृहत्यागी हुए हो। अब तुम्हें सुन्दर और मनोहर विषय सुखोंका त्यागकर दुःखका अन्त करना होगा। साधुओंको बन्धु समझ उनके साथ रहना, परन्तु शय्या और अपना आसन पृथक रखना। मिताहारी रहना और पीत वस्त्र धारण करना। पुनः गृहस्थाश्रममें प्रवेश न करना। हृदयमें दुर्वासनाका उदय न होने देना। संघके नियमोंका पालन करना। मनको स्थिर और शान्त रखना। जीवन असार है अतः इन्द्रिय सुखोंमें लिप्त न होना। परिश्रमसे विमुख न होना और चिन्ता शील रहना।"

इस प्रकार उपदेश दे बुद्धने उसे संघमें सम्मिलित कर लिया और श्रावस्तीके विहारका प्रबन्ध भार दे वहां रक्खा। उसी बिहारमें त्रिपटकके मूल सूत्रपर बुद्धने व्याख्याकी, जो राहुलके नामसे विख्यात हुई।

शुद्धोदनका कोई उत्तराधिकारी न था। उनके अमृतोदन नामक एक भाई था। उसके महानाम नामक एक पुत्र था। शुद्धोदनके बाद वही सिंहासनारूढ़ हुआ। एक बार बुद्धने कपिलवस्तुमें चतुर्मास बिताना स्थिर किया। इस बार उन्होंने महानामको भी दीक्षा दे दी। अब शाक्यवंशमें कोई शेष न रहा। यहींसे उसका अन्त हो गया।

यशोधराके देवदत्त नामक एक भाई था। उसने यह समझकर कि मेरी भी बुद्धके समान प्रतिष्ठा और पूजा होगी, संन्यास दीक्षा ग्रहण की, परन्तु उसकी इच्छा पूरी न हुई। निराशाके कारण उसके हृदयमें द्वेषाग्नि प्रज्वलित हो उठी और वह बुद्ध तथा उनके सिद्धान्तोंकी निन्दा करने लगा।

राजा बिम्बिसार बुद्धके अनुयायी और सहायक थे। राजगृहमें बुद्धका बड़ा सम्मान होता था। देवदत्त वहीं जा कर उनकी निन्दा करने लगा। उसने अजातशत्रुको अपने पक्षमें कर लिया। अजातशत्रु राजा बिम्बिसारका पुत्र था। उसने देवदत्तकी कुटिल नीतिमें आकर अपने पिताको बन्दी बना लिया और कारावासमें भूखों मार डाला।

इसके बाद उसने राज-सिंहासनपर अधिकार जमा लिया। राजा बिम्बिसार बुद्धके अनन्य भक्त थे। वे सदा उनकी रक्षाके लिये प्रस्तुत रहते थे। उनके जीते जी कोई बुद्धका अनिष्ट न कर सकता था। अजातशत्रुने अब बुद्धको मार डालनेकी गुप्त आज्ञा दे दी। तीन बार चेष्टा की गयी, परन्तु वार खाली गया।

देवदत्तको कुछ पश्चात्ताप हुआ। वह बुद्धके पास गया। उन्हें उसने एक नियमावली दिखायी। वह चाहता था, कि बौद्धोंकी नित्यचर्याके नियम खूब कठोर कर दिये जायें। बुद्धने इसका विरोध किया। उन्होंने कहा—"मैंने शिष्योंको मध्यम मार्गपर चलनेकी शिक्षा दी है। बहुत

कठिन नियम उस मार्गके बाधक हैं। यदि कोई मनुष्य स्वेच्छा पूर्वक कठिन नियमोंका पालन करे तो मैं उसे मना भी नहीं करता, किन्तु सबको उनके अनुसार चलनेके लिये मैं बाध्य नहीं कर सकता।"

बुद्धकी यह बात उसे रुचिकर न हुई। उसने अजातशत्रु की सहायतासे एक विहारकी स्थापना की और साधुओंका दल सङ्गठित किया। वह बुद्धके समान प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहता था, परन्तु कृतकार्य्य न हो सका। कुछही दिन बाद उसकी मृत्यु हो गयी अतः उसके विचार कार्य्यरूपमें परिणत नहो सके। अजातशत्रु तथा बुद्धके अन्यान्य विरोधियोंने श्रावस्तीके विहारको अधिकृत कर लिया और शाक्यप्रदेशपर आक्रमण कर कपिलवस्तुको नष्ट कर दिया।

इस समय बुद्धकी अवस्था ७६ वर्षकी हो चुकी थी। तीस वर्षकी अवस्थामें गृहत्याग कर उन्होंने छः वर्ष तापस जीवन व्यतीत किया था। धर्म्म प्रचार करते हुए उन्हे ४३ वर्ष हुए थे। इतनी अवस्था हो जाने और इतने समय तक परिश्रम करते रहनेपर भी वे श्रान्त न हुए थे। अद्यापि उनका उत्साह ज्यों का त्यों बना हुआ था। उनके उद्योगहीके कारण विरोधियोंकी दाल न गलती थी और बौद्ध धर्म्म चारों और फूल फल रहा था।

बुद्धने अपने जीवनका अन्तिम वर्ष शिष्योंको एकत्र कर उन्हें उपदेश देनेमें व्यतीत किया। इस वर्ष वे व्याधि ग्रस्त

हो गये। उनके मुखपर अब वह लालिमा न थी। शरीर दिन प्रति दिन क्षीण होता चला जा रहा था। अन्तमें वे पावा गये। वहां चण्ड नामक एक सहृदय और श्रद्धालु ठठेर रहता था। उसने उन्हें निमन्त्रण दे अपना आतिथ्य ग्रहण करनेकी प्रार्थना की।

बुद्धने उसकी प्रार्थना स्वीकार करली। वे उसके यहां भोजन करने गये। भोजन कर लेनेके बाद उनके उदरमें अत्यन्त मार्मिक पीड़ा होने लगी। उन्होंने उसे बड़ी धीरता, गम्भीरता और शान्तिके साथ सहन किया। किसी प्रकार वे कुशी नगर पहुंचे। वहां वे एक वृक्षके नीचे ठहरकर विश्रान्ति लेने लगे।

जब कुछ कष्ट कम हुआ तब उन्होंने अपने आनन्द नामक प्रिय शिष्यको सम्बोधित कर कहा—"आनन्द! अब मेरा अन्तिम समय समीप है। सम्भव है लोग यह कहें, कि मेरी मृत्यु चण्डके यहां भोजन करनेके कारण हुई। देखो! ऐसी बात चण्ड सुनेगा तो उसे बड़ा दुःख होगा। तुम उसकी हार्दिक लज्जा और चिन्ताका निवारण करना और संसारको उसका तिरस्कार करनेका अवसर न देना। उससे कहना कि तेरा कल्याण होगा, क्योंकि अन्तिमबार बुद्धने तेरे यहां भोजन किया है। ऐसा करनेसे उसकी ग्लानि दूर हो जायगी।"

इसके बाद बुद्ध अपनी शिष्य-मण्डली सहित मल्लराजके

शालवन पहुंचे। यह स्थान हिरण्यवती नदीके तट पर था। यहां उनके आज्ञानुसार दो शाल वृक्षोंकी सघन छायामें शय्या तय्यार कर दी गयी। बुद्ध शान्ति पूर्वक उस पर लेट रहे।

आनन्द, बुद्धका प्रिय शिष्य था। वह अभी बहुत कुछ सीखना चाहता था। बुद्धका अन्तिम समय समीप देख वह रोने लगा। बुद्ध रात भर उसे सान्त्वना और उपदेश देते रहे।

अपनी मृत्युका समाचार सुनाते हुए उन्होंने अपने शिष्योंको उपदेश दिया कि—"संलग्न रहो, विचारशील रहो, पवित्राचारी बनो। अपनी चित्त वृत्तियों पर ध्यान रक्खो। जो धर्म और सदाचारका दृढ़ताके साथ पालन करता है और अधीर नहीं होता वह जीवनके समुद्रको पार कर लेता है—उसके दुःखोंका अन्त हो जाता है। अब मैं इस देहको छोड़ना चाहता हूं। मेरी मृत्युके पश्चात् तुम तुच्छ और अनावश्यक बातोंमें यथावसर परिवर्त्तन कर सकते हो, परन्तु मेरी शिक्षापर ध्यान रखना। संसारकी सब वस्तुयें परिवर्तित हो जायें, परन्तु वह परिवर्त्तित न हो।"

इसके बाद बुद्धकी दशा शोचनीय होती गयी। वे अन्त तक शिष्योंको उपदेश देते रहे और उनकी शंकाओंका समाधान करते रहे। जब उनकी आवाज धीमी पड़ने लगी और बोल बन्द होने लगा, तब उन्होंने आनन्द तथा अन्यान्य शिष्योंको सम्बोधित कर कहा—"भ्राताओ! संसार क्षण भंगुर और सत्य चिरस्थायी है। पुरुषार्थ और स्वावलम्बन द्वारा परिश्रम पूर्वक अपनी मुक्तिका मार्ग साफ करो।"

बुद्ध भगवानके यह अन्तिम शब्द थे। इसके बादही उनका बोल बन्द हो गया। चेतनता जाती रही और उन्होंने सदाके लिये अपने अनित्य शरीरको त्याग दिया। इस समय उनकी अवस्था ८० वर्षकी थी। उनके शिष्य गण, मोहवश विलाप करने लगे। चारों ओर रोने और चिल्लानेकी ध्वनि सुनाई पड़ने लगी।

प्रभात होतेही यह शोक समाचार सर्वत्र भेज दिया गया। चारों ओरसे बौद्ध भिक्षुक और गृहस्थ आ आकर एकत्र होने लगे। शुद्ध और सुगन्धित पदार्थोंका चिता तय्यार की गयी। शिष्योंने बड़ी श्रद्धा और गम्भीरतासे मृतक शरीरकी वन्दना कर उनका अग्नि संस्कार किया। उन्होंने उनकी चिता-भस्म और अस्थियोंको भिन्न भिन्न अनेक स्थानोंमें ले जाकर गाड़ा और उस पर समाधि मन्दिर (चैत्य) बनवाये। बौद्धगण उन चैत्योंको पवित्र मान उनकी पूजा करने लगे।

बौद्धयती—बौद्ध मतावलम्बी साधु भिक्षुक, सौगत, शाक्य, शुद्धोदत, श्रमण और शून्यवादी प्रभृति नामोंसे पुकारे जाते हैं। वे शिर मुड़ाये रहते हैं। पीले कपड़े पहनते हैं। भिक्षा पर निर्वाह और अहिंसा धर्मका पालन करते हैं। विघ्न विनाशिनी तारादेवी और भगवान बुद्धदेवको उपास्य देव मानते हैं। मन्दिर गोलाकार बनाते हैं और उनमें बुद्धकी मूर्त्ति स्थापित करते हैं। इनके मतमें प्रत्यक्ष और अनुमान यही दो प्रमाण हैं। शब्द प्रमाण

रूप वेदको यह नहीं मानते। श्रमणोंके निवासस्थानको विहार कहते हैं। बौद्ध मतावलम्बी गृहस्थ श्रमणोंको वन्दन करते हैं और उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखते हैं।

चारतत्त्व—बुद्ध चार महासत्योंके नामसे चार तत्वका उपदेश देते थे। पहला सत्य यह है कि संसारमें दुःख विद्यमान है। जन्म, मरण, व्याधि, वृद्धि, संयोग, वियोग और प्रत्येक प्रवृत्तिमें दुःख है। दूसरा सत्य यह है, कि दुःख आपही आप नहीं होता, बल्कि उसके होनेका कोई कारण होता है। जब तक कारणका यथार्थ ज्ञान न होगा, तब तक दुःखकी निवृत्ति न होगी। तीसरा सत्य यह है, कि दुःखोंका अन्त हो सकता है। दुःखके कारणोंको नष्ट कर दो, दुःख आपीआप नष्ट हो जायगा। चौथा सत्य यह है कि अष्टाङ्ग मार्ग है, जिनके अवलम्बनसे दुःखका अन्त हो जाता है। उनके नाम यह हैं—सद्ज्ञान, सद् वाणी, सद्कर्म, सद् आजीविका, सद्व्यायाम, सद्विचार और शान्त चित्तकी सद् अवस्था।

बुद्धने आत्माको क्षणिक और पुद्गल माना है। जिस वस्तुका एक ओर पोषण और दूसरी ओर क्षय हो उसे पुद्गल कहते हैं। जैन और वेदमतानुयायी आत्माको पुद्गल नहीं मानते। वे आत्माको नित्य मानते हैं। जिसका उत्पत्ति, नाश और क्षय नहीं होता उसे नित्य कहते हैं।

बुद्धकी शिक्षा—बुद्धने लोगोंको धार्मिक बन्धनों से मुक्त किया। उन्होंने बतलाया, कि मोक्षका द्वार सब

मनुष्योंके लिये एक समान खुला हुआ है और मोक्षकी प्राप्ति देवताओंके पूजनसे नहीं, किन्तु अपने कर्मसेही सम्भव हो सकती है। इस प्रकार उन्होंने उस समयके प्रचलित हिंसामय कर्मकाण्डका खण्डन किया और अग्नेदिकयाग यज्ञोंको अनावश्यक बतलाया।

सांख्य और बौद्धकी अनेक बातोंमें एकता है। दोनों दुःखका कारण जन्म, जन्मका कारण कर्म, कर्मका कारण प्रवृत्ति और प्रवृत्तिका कारण अज्ञान बतलाते हैं। किन्तु बुद्धका कथन है, कि जो जैसा करेगा, वह वैसा भरेगा। इस जीवनके सुख या दुःख गत जीवनके कर्मोंका अनिवार्य्य फल है और इस जीवनके कर्मोंपर हमारे भावी जीवनके सुख दुःख निर्भर करते हैं। मृत्युके पश्चात कर्मानुसार उच्च या नीच योनिमें जन्म होता है।

बुद्धकी शिक्षाके अनुसार, जीवन निरन्तर दुःखमय बना रहता है। प्रत्येक मनुष्यको आत्माको परमात्मामें विलय कर मुक्त होना चाहिये। मुक्तिको वे निर्वाण कहते हैं। निर्वाणका अभिप्राय है, आत्माका परमात्मामें विलय होना या उसका ज्योतिकी तरह बुझ जाना। बुद्धने बतलाया है कि इस उद्देश्यकी प्राप्ति केवल पवित्राचरणसे हो सकती है। उन्होंने यज्ञयागके स्थानमें तीन बड़े कर्त्तव्यकर्म निश्चित किये थे। आत्म संयम, भूतदया और अहिंसा। इन तीन कर्मोंको करता हुआ मनुष्य निर्वाण प्राप्त कर सकता है।

बुद्धका प्रचार कार्य्य—संसारमें शायदही किसी धर्मने बौद्ध धर्मकी भाँति उन्नति की हो। वह शीघ्रताके साथ देश देशान्तरोंमें फैल गया। इसका कारण बुद्धकी शिक्षा और उसका प्रचार है। उन्होंने शिष्योंको बतलाया कि उन्हें इस बातसे सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये, कि वे स्वयं सच्चे मार्गका अवलम्बन करें, किन्तु उन्हें मनुष्यमात्रको उस मार्गका उपदेश देना चाहिये। बुद्धका इस ओर सबसे पहला कार्य्य यह था, कि उन्होंने अपने साठ शिष्योंको प्रचारके लिये इधर उधर भेजा। उन्होंने ब्राह्मणोंकी भाँति, अपने धर्मको ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों तकही परिमित न रख, शूद्र, अन्त्यज और अछूत जातियोंमें भी उसका प्रचार किया। उनकी मृत्युके पश्चात्, शताब्दियोंतक उनके शिष्यगण इस आदेशका पालन करते रहे और उनके उद्योगसे यह धर्म्म समस्त एशियामें फैल गया।

बुद्धकी सफलताका रहस्य—बुद्धने उपदेश दिया था, कि सब मनुष्य एक समान हैं। जाति पाँतिका भेद झूठा है। मोक्ष प्राप्तिका सबको अधिकार है। पशुओंका बलिदान पाप है। मनुष्यको अपने जीवनमें सचाई, पवित्रता और धर्म्मभाव दिखलाना चाहिये। सबके साथ दयाका बर्ताव करना चाहिये और किसीको दुःख न देना चाहिये। बुद्धकी इस सीधी सादी शिक्षा और जीवनकी पवित्रताने लोगोंकी सहानुभूति प्राप्त कर ली। स्त्री, शूद्र और प्रत्येक मनुष्यको दीक्षा लेने और श्रमण बननेकी

धर्मका मूल मानते हैं और यहांके समान उनके अहिंसा धर्म-का पालन शायदही कहीं होता हो। संसारमें अनन्तकाल तक भगवान बुद्धदेवका नाम अमर रहेगा और साथही उनके समान अद्वितीय धर्माचार्य्य उत्पन्न करनेके लिये भारत साभिमान अपना मस्तक ऊंचा रक्खेगा। जिस देशमें ऐसे नर रत्न उत्पन्न हों उस देशको धन्य है!

कुमारिल भट्टाचार्य्य

कुमारिल भट्टाचार्य्यका जन्म जयमङ्गल नामक ग्राम में हुआ था। उनके पिताका नाम यज्ञेश्वर भट्ट और माताका नाम चन्द्रगुणा था। वे यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। उन्होंने गुरुके निकट वेद वेदाङ्ग और शास्त्रोंका अध्ययन किया था। वे अपनी धर्म्म प्रवृत्तिके कारण भट्टपाद और सुब्रह्मण्यके नामसे विख्यात थे।

कुमारिलके निकट अनेकानेक शिष्य विद्याध्ययन किया करते थे। विश्वरूप, प्रभाकर, पार्थ सारथि और मुरारिमिश्र यह चार उनके प्रधान शिष्य थे।

उन दिनों बौद्ध धर्म्म उन्नतिके सर्वोच्च शिखरपर आरूढ़ हो चुका था। साथही उसमें अनेक बुराइयां भी घुस पड़ी थीं। बौद्धोंने बुद्धकी पवित्र शिक्षा भुला दी थी। वे ईर्षावश वेदमतावलम्बियोंकी निन्दा करने लगे थे। स्पष्ट शब्दोंमें वे वेदका विरोध और अपने धर्म्मकी स्तुति करते थे। उनके उद्योगसे प्रजाकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। यज्ञादिक कर्म्म बन्द हो गये थे और वेद अपमानित हो रहे थे।

भट्टाचार्य्यने वेद तत्वोंकी मीमांसा कर उनके तात्पर्य्यको

भलीभांति समझा था। वेद धर्म्मकी हीनावस्था देख उनका खून उबल पड़ा। वे उसके उद्धारार्थ कटिबद्ध हुए।

कुमारिल वेदके कर्म्मकाण्डको प्रधान मानते थे। उन्होंने बौद्ध मतका खण्डन और वेदके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करनेका विचार किया। अपनी विद्वत्ताके कारण वे वेदके सूक्ष्म सिद्धान्तोंको भलीभांति लोगोंके हृदयगत कर सकते थे, परन्तु बौद्ध ग्रन्थोंसे अनभिज्ञ होनेके कारण वे उनका खण्डन रुचिभर न कर पाते थे। इस त्रुटिको पूर्ण करनेके लिये बौद्ध धर्म्माचार्य्य किन युक्ति और तर्कोंसे काम लेते हैं यह जाननेके लिये श्री निर्केतन नामक बौद्ध धर्म्माचार्य्यके निकट विद्यार्थी बन उनके धर्म्म सिद्धान्तोंका मनन करने लगे।

एक दिन श्रीनिर्केतनने वेदोंको दूषित बता कर वेदमार्गको कुमार्ग सिद्ध किया। कुमारिलसे वेदोंकी निन्दा न सुनी गयी। उनको बड़ा दुःख हुआ। वे अपने आपको न रोक सके। उनकी आंखोंमें जल भर आया। उनके सहपाठी उनका भाव ताड़ गये। निदान वे उस दिनसे सन्दिग्ध व्यक्ति माने जाने लगे।

कुमारिलके सहपाठियोंका सन्देह उत्तरोत्तर दृढ़ होता गया। वे पाठशालासे कुमारिलको निकाल देनेकी युक्तियां सोचने लगे। एक दिन कुमारिल, एक मन्दिरकी ऊंची दीवारपर बैठे हुए कुछ सोच रहे थे। उसी समय उन्हें कुछ विद्यार्थियोंने धक्का दे दिया। कुमारिल भूमिपर आ गिरे। गिरते समय अचानक

उनके मुखसे यह शब्द निकल पड़े—"यदि वेद सत्य होंगे, तो मेरी अवश्य रक्षा होगी।" कुमारिलकी रक्षा तो हुई—उनके प्राण तो बच गये। परन्तु चोट आनेके कारण एक आंख फूट गयी। कुमारिल इसे अपना कर्म्म फल बतलाने लगे। वे कहने लगे, कि वेदोंके विषयमें "यदि वेद सत्य होंगे—" यह संशयात्मक वाक्य कहनेके कारण ही मुझे यह दण्ड मिला है।

बौद्ध भूत दया और अहिंसा धर्म्मके उपदेशक थे। कुमारिलको उन्होंने ब्राह्मण और अपना विरोधी समझ, कहीं यह बौद्ध धर्म का खण्डन न करने लग जाय-इस भयसे धक्का दे दिया था। कुमारिलको उनकी यह धर्म्मपरायणता देख बड़ा आश्चर्य्य हुआ। वे मनही मन कहने लगे—"जब यह लोग अहिंसा और दयाका उपदेश देते हैं, तब ऐसा कार्य्य क्यों करते हैं? मान लिया, कि मैं ब्राह्मण और उनका शत्रु हूं, तो क्या दया और अहिंसाका भाव मित्रोंही तक परिमित रहना चाहिये? क्या ब्राह्मणोंमें जीव नहीं है? क्या शत्रु दया पात्र न होने चाहिये? यदि हां, तो फिर जीव हिंसाको पाप मानने और भूत दयाका पाठ पढ़ाने वाले इन बौद्धोंने मेरे प्रति ऐसा निन्दनीय व्यवहार क्यों किया? वास्तवमें यह उनका ढकोसला है। अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये, वह धर्म्मको ठुकराना पाप नहीं समझते। स्वार्थ उन्हें धर्म्मसे कहीं अधिक प्रिय है! वे स्वयं पाखण्डी हैं और पाखण्ड पारावारमें संसारको डुबोना

चाहते हैं। मुझे अब संसारको जितनीही जल्दी हो सके, उनकी ओरसे सावधान कर देना चाहिये।"

कुमारिल इस प्रकार सोच विचार और निश्चय कर कर्म-वादका प्रचार करने लगे। प्रचार करते हुए वह चम्पानगरी जा पहुंचे। चम्पानगरीमें सुधन्वा नामक राजा राज्य करता था, वह बौद्धमतावलम्बी और बौद्धोंका सहायक था, परन्तु उसकी रानी वेदके सिद्धान्तोंको मानती थी। सुधन्वा उसे भी बौद्ध मतमें दीक्षित करना चाहते थे, परन्तु उसके विचार इतने दृढ़ थे, वैदिक धर्म पर उसकी इतनी अधिक श्रद्धा थी, कि अद्यापि वह उससे विमुख न हुई थी।

भट्टाचार्य चम्पानगरीमें चारों ओर विचरण करने लगे। सर्व प्रथम वे बौद्धोंकी पाठशालामें गये। वहां बौद्ध धर्म्माचार्य्य शिष्योंको खण्डन विधि सिखा रहे थे। कुमारिल कुछ काल तक उनके कुतर्कोंको हृदयंगम करते रहे। इसके बाद, सुधन्वाके मालीसे उनकी भेट हो गयी। वह बागमें तुलसी-दल चुन रहा था। कुमारिलने बातही बातमें उससे अनेक बातें पूछ लीं। उन्हें ज्ञात हो गया, कि रानी वेद मतावलम्बिनी है और विष्णुकी पूजा करती है। उसीके लिये माली तुलसी पत्र चुन रहा है।

कुमारिलको यह बात जानकर बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने उसी माली द्वारा अपने आगमनका समाचार रानीको सूचित किया। रानी उनसे परिचित न थी। फिरभी, केवल यह जान कर, कि कोई वेदमतावलम्बी महात्मा यहां आये हुए हैं, वह

अतीव प्रसन्न हुई। वह कुमारिलके दर्शनार्थ भी व्याकुल हो उठी, परन्तु तत्काल उसकी यह इच्छा पूर्ण न हुई।

कुछ दिनोंके बाद, एक दिन कुमारिल कहीं जा रहे थे। ज्योंहीं वह राज-भवनके नीचे पहुंचे त्योंही उनके कानोंमें कुछ चौंकाने वाले शब्दोंकी ध्वनि आ पड़ी। उन्होंने शिर उठा कर देखा, तो महलके झरोखेमें रानी बैठी हुई दिखाई पड़ी। वह चिन्तातुर और उदास मालूम होती थी। उसीके मुखसे बार-बार यह शब्द निकल रहे थे:—

किंकरोमि क्वगच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति।

अर्थात्—"क्या करूं? कहां जाऊं? वेदोद्धार कौन करेगा?" रानीके यह शब्द उसके हृदयकी व्याकुलताका प्रकट कर रहे थे। कुमारिलके हृदयमें भी वेदाभिमान भरा हुआ था। वह बोल उठे:—

माविषीद वरारोहे भट्टाचार्योऽस्मि भूतले।

अर्थात्—"हे रानी! खेद न कर। मैं भट्टाचार्य्य अभी पृथ्वी पर विद्यमान हूं।" भट्टाचार्य्यके यह शब्द सुन, रानीने उनकी ओर दृष्टिपात किया। वह उनसे मिलनेको पहलेहीसे उत्सुक हो रही थी। आज इस प्रकार उन्हें सम्मुख उपस्थित देख, उसे बड़ा हर्ष हुआ। उसने तुरन्त दासीको भेज भट्टाचार्य्यको महलमें बुला लिया और उनकी अभ्यर्थना कर सारा हाल कहा। उसने बतलाया, कि महाराज मुझे बौद्ध धर्ममें दीक्षित करना चाहते हैं। अब तक मैं बची रही, परन्तु अब मुझे बाध्य हो

उनकी आज्ञाके अधीन होना पड़ेगा। मैं वैदिक धर्म्म नहीं त्यागना चाहती। यही धर्म्मसङ्कट मेरे आन्तरिक परितापका कारण है।"

रानीकी यह बातें सुन और उसकी धर्म्म-प्रियता देख, कुमारिल अतीव प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे बौद्ध धर्म्मकी अनेक पोलें दिखलायीं और उसे खण्डित करने की युक्तियां तथा तर्क बतलाये। साथही उन्होंने कहा, कि यह बातें प्रसंगवश महाराजको सुनाते रहना, जिससे उनका चित्त बौद्ध धर्म्मकी ओरसे मुड़कर वेद धर्म्मकी ओर आकर्षित हो।

रानी पण्डिता थी। उसने भट्टाचार्य्यकी बतलाई हुई बातोंको अच्छी तरह समझ लिया। उनके आदेशानुसार वह महाराजको भी वह बातें सुनाने लगी। आरम्भमें तो उन बातोंका कोई प्रभाव न पड़ा, परन्तु कुछ दिनोंके बाद सुधन्वाकी बुद्धि पलट गयी। वह बौद्ध धर्म के सिद्धान्तोंको सन्देह और अश्रद्धाकी दृष्टिसे देखने लगा। ज्यों ज्यों समय बीतता गया, त्यों त्यों रानीके उद्योगसे उसका सन्देह दृढ़ होता गया। अन्तमें वैदिक धर्म्म पर उसे कुछ कुछ श्रद्धा हुई और उसेभी वह आदरकी दृष्टिसे देखने लगा।

इतने दिनोंमें कुमारिलने बौद्ध धर्म्म खण्डनके सात ग्रन्थ तय्यार कर लिये। इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त उन्होंने अनेकानेक शिष्योंको भी तद् विषयक शिक्षा दी। अब उन्होंने पूर्णरूपेण प्रस्तुत हो शिष्यों सहित बौद्धमत खण्डन वैदिक धर्म्म मण्डनका

झण्डा उठाया। स्थान स्थान पर उन्होंने बौद्धोंके साथ शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया। बौद्ध अपनी पराजय और उनकी खण्डन कला देख, भीत चकित और स्तम्भित हो गये।

अवसर देख कुमारिलने सुधन्वासे भेंट की। उन्हें रानी ने बुला भेजा था। सुधन्वा उनका शास्त्रार्थ सुनना चाहता था। विशाल सभाका आयोजन हुआ। धुरन्धर बौद्ध धर्म्माचार्य्य निमन्त्रित कर बुलाये गये। विद्वान और धर्म निष्ट ब्राह्मण भी उपस्थित हुए। निर्दिष्ट समयमें सभा-भवन प्रेक्षक और सभा सदोंसे पूरित हो गया। सब लोग शास्त्रार्थ सुननेको आतुर हो रहे थे। दोनों दल एक दूसरेके सामने बैठे हुए थे। शान्ति और नीरवताका अखण्ड साम्राज्य छाया हुआ था। किसीको शान्ति-भङ्ग करनेका साहस न होता था। पासही एक आमका वृक्ष था। उसपर एक कोकिला बैठी हुई थी। उसने राज-सभाकी शान्ति भङ्ग कर दी। सभा-भवन उसकी मनोहारिणी कूकसे गूंज उठा। भट्टाचार्य्यने कहा—

मलिनैश्चेन्न संगस्ते नीचैः काक कुलैः पिक।
श्रुति दूषक निर्हादैः श्लाघनीय स्तदाभवे ः॥

अर्थात् हे कोयल! मलीन, नीच और श्रुति दूषक (कटु-शब्दसे कानोंको अपवित्र करने वाले) काक कुलसे तेरा सम्बन्ध न हो तो तू प्रशंशा पात्र है।

भट्टाचार्य्यका यह श्लोक विद्यार्थी था। उसका व्यंगार्थ राजा और बौद्धोंपर घटित होता था। अर्थात्, हे राजन्! म-

लीन नीच और श्रुति दूषक (वेद-निन्दक) लोगोंसे तेरा सम्ब-न्ध न हो तो तू प्रशंसा पात्र है।

चोरकी दाढ़ीमें तिनका वाली कहावतके अनुसार बौद्ध वेद निन्दक थे, अतः चिढ़ गये। शास्त्रार्थका श्रीगणेश हुआ। दोनों ओरसे खण्डन मण्डन होने लगा। सभी अपनी अपनी युक्तियां, तर्क और प्रमाण पेश करने लगे। अन्तमें बौद्धोंके तर्क निर्बल प्रमाणित हुए। उनको दलीलें थोथी सिद्ध हुईं। भट्टाचार्यने वेद धर्मको सत्य सिद्ध कर दिखलाया। चारों ओर उनकी प्रशंसा होने लगी। भट्टाचार्यकी विजय और बौद्धोंकी घोर पराजय हुई।

भट्टाचार्यने भरी सभामें बौद्धोंकी पोल खोल दी। हम पहले भी बतला चुके हैं, कि इस समय बौद्ध बुद्धकी शिक्षाको सर्वथा भूल गये थे। बुद्ध यद्यपि वेदका प्रमाण नहीं मानते थे, तथापि उन्होंने कभी उनकी निन्दा नहीं की थी। आत्म संयम, भूतदया और अहिंसा—इन्हीं तीन बातोंका उनकी शिक्षामें प्रा धान्य था। उनके अनुयायी शताब्दियोंके बाद उनकी यह शिक्षा तो भूल गये और ईर्षा द्वेषके वशीभूत हो वेदकी निन्दा कोही अपना कर्त्तव्य समझने लगे।

बुद्धने लोगोंको पवित्र जीवन व्यतीत करनेकी शिक्षा दी थी, परन्तु उन्होंने उसे भी भुला दिया था। अब वे बौद्ध यती पहलेकी तरह ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए भिक्षुओंकी भांति न रहते थे। उनका शरीर अब विषयोंका घर बन गया था।

केवल कहनेही भरको वे सदाचारका पालन करते थे। बुद्धने स्त्रियोंको जिस दृष्टिसे देखनेको कहा था, उस दृष्टिसे वे अब उन्हें न देखते थे। धर्मकी आड़ लेकर वे दुराचार भी करने लग गये थे। भट्टाचार्य्यने इन सब बातोंको प्रकाशित कर दिया। अपनेको सदाचारी बतलाते हुए बौद्ध कहां तक अनाचार करते हैं, यह उन्होंने स्पष्ट कर दिया। उन्होंने सिद्ध कर दिया, कि बौद्धके सिद्धान्त भ्रान्ति मूलक और वेदोंके प्रतिकूल हैं। उनका आचरण पाप पूर्ण और उन्हीकी शिक्षाके विरुद्ध है।

राज-सभामें जो बौद्ध उपस्थित थे, उनका मुख सूख गया। चारों ओरसे उनपर धिक्कारकी बौछार होने लगी। राजा सुधन्वा कुमारिलका शिष्य हो गया। उन्होंने सर्वत्र भ्रमण कर इसी प्रकार बौद्ध और जैनोंको पराजित किया। लोग पुनः वेद धर्म्मको मानने लगे। पुनः यज्ञादिक कर्म होने लगे और पुनः वेदमन्त्रों सहित स्वाहाकी सुमधुर ध्वनि सुनाई पड़ने लगी।

बौद्धोंका नाश करनेहीके लिये मानो कुमारिलने जन्म ग्रहण किया था। जब तक बौद्धोंकी शक्ति सर्वथा क्षीण न हो गयी, तब तक उन्होंने विश्रान्ति न ली। वे अपनी तिरसठ वर्षकी अवस्था तक अविश्राम परिश्रम करते रहे। उन्होंने अपने उठाये हुए कार्य्यको पूर्ण करके ही छोड़ा। उनके उद्योगसे लोग पुनः वेदोंका आदर करने लगे। बौद्धों-

को लोग इतनी निन्दा और भर्त्सना करने लगे, उनका इतना अपमान होने लगा, कि उन्हें अपना मुंह दिखाना और जीना दूभर हो गया। उनमेंसे अनेकानेक बौद्ध धर्मको जलाञ्जलि दे, वैदिक धर्म ग्रहण कर लिया और अनेक यह देश छोड़ चीन जापान, तिब्बत और लङ्का इत्यादि स्थानोंमें जा बसे। इस प्रकार कुमारिलने बौद्ध धर्मको निर्वापित कर वेदके कर्मकाण्डका उद्धार किया।

कुमारिलका जीवन परम पवित्र था। शास्त्र और वेदोंकी सच्चाईपर उन्हें पूर्ण विश्वास था। वे प्रत्येक कार्य उसी विश्वासके वशीभूत हो करते थे। उन्होंने अपने जीवनमें शास्त्रोंके कथनानुसार, एक भयङ्कर पाप किया था। वह था गुरु-द्रोह। उन्होंने बौद्ध धर्माचार्य्योंको धोखा देकर उनके शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया था। ज्ञान प्राप्त करनेके बाद उन्होंने उनका रुचिपर खण्डन और विरोध किया था। यही उनका पाप था। उन्होंने इसका प्रायश्चित करना स्थिर किया। शास्त्रोंकी दृष्टिमें यह भयङ्कर पाप है और इसका प्रायश्चित भी ऐसाही भयङ्कर बतलाया गया है। गुरु-द्रोहीको पापमुक्त होनेके लिये तुष (चावलके छिलके) की अग्निमें जल मरना चाहिये। इसके अतिरिक्त उसको मुक्तिका और कोई उपाय नहीं है।

जब कुमारिलका कार्य्य पूर्ण हो चुका, जब उन्होंने देखा कि बौद्धधर्म निर्वापित हो चुका है, तब वे शास्त्र विहित

प्रायश्चित करनेको प्रस्तुत हुए। वे तदर्थ प्रयाग गये। वहां उन्होंने पुण्योदका त्रिवेणीके तटपर तुषाग्निमें प्रवेश किया। ऐसा करनेमें उन्हें लेश-मात्र भी सङ्कोच न हुआ। जिस शान्ति, दृढ़ता और गम्भीरताके साथ वे धर्म्म प्रचार करते थे, उसी शांन्ति दृढ़ता, और गम्भीरताके साथ यह कार्य्य भी कर रहे थे। उनके मुखमण्डलपर विषादकी छाया भी न थी। वही शान्ति, कान्ति और तेज विराज रहा था।

जिस समय कुमारिल उत्तर भारतमें कर्म्मवादका प्रचारकर रहे थे, उसी समय दक्षिण भारतमें स्वनामधन्य स्वामी शङ्कराचार्य्यका प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने भी वेदोंके उद्धारार्थ संन्यस्त दीक्षा ग्रहण की थी। वेदोंके प्रति उनके हृदयमें भी कुमारिलके समान ही प्रेम और आदरके भाव भरे हुए थे। वे भी अद्वितीय पण्डित थे और उनके हृदयमें भी समस्त भारतको वेद धर्म्ममें दीक्षित करनेकी महत्वाकांक्षा छिपी हुई थी।

यह सब होते हुए भी कुमारिल और उनके विचारोंमें कुछ अन्तर था। कुमारिल वेदके कर्म्मकाण्डको मोक्षका साधन मानते थे और शङ्कराचार्य्य ज्ञानकाण्डको। वे कर्म्मकाण्डका उपदेश देते थे और यह ज्ञानकाण्डका।

शङ्कराचार्य्यने कुमारिलकी दिगन्तव्यापिनी कीर्ति सुनी थी। वे उनसे मिलकर शास्त्रार्थ करनेके लिये लालायित हो रहे थे। शायद वे उन्हें अपना सहायक बनाकर विशेष रूप-

से प्रचार करना चाहते थे। इस इच्छाके वशीभूत हो जिस समय वे प्रयाग पहुंचे, उस समय कुमारिल प्रायश्चित करने का निश्चय कर चुके थे। शङ्कराचार्य्यको यह जानकर बड़ा खेद हुआ। उनकी आशापर पानी फिर गया।

शङ्कराचार्य्य शीघ्रताके साथ उस ओर अग्रसर हुए जहां कुमारिलने अग्नि प्रवेश करना स्थिर किया था। उनके वहां पहुँचनेके पूर्वही तुषोंमें अग्नि दी जा चुकी थी। शङ्कराचार्य्य-ने वहां पहुंचकर देखा, कि अग्नि धीरे धीरे जल रही है और उसके बीचमें भट्टाचार्य्य बड़ी शान्तिके साथ बैठे हुए हैं। वे यह दृश्य देखकर चकित हो गये। बोल उठे—"धन्य है भट्टाचार्य्य! वेदोंका उद्धार करना तेराही काम था। शास्त्रोंपर ऐसी श्रद्धा, ऐसी कर्त्तव्य निष्ठा और ऐसी धर्म्मपरायणता तुम्हहीमें देखी गयी! तेरी पवित्रता और शुद्धताको धन्य है! तेरी जितनी ही प्रशंसा की जाय उतनी ही कम है।"

अधिक ठहरनेका समय न था। अग्नि धधकती ही जा रही थी। शङ्कराचार्य्यने, कुमारिलको शीघ्रताके साथ अपना परिचय दिया और कहा, कि मैं आपसे शास्त्रार्थ करना चाहता था। साथही उन्होंने उन्हें स्वरचित भाष्य भी दिखलाये।

कुमारिल शङ्कराचार्य्यको देख अतीव प्रसन्न हुए। उन्होंने शङ्कराचार्य्यसे अपने प्रायश्चितका कारण बतलाया और कहा, कि मैं अब शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। आपका उद्देश्य बड़ा

पवित्र है। मैं अपना काम कर चुका हूं। आप अपने उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त मेरे प्रधान शिष्य मण्डन मिश्रकी सहायता लीजिये। यदि उसे आप शास्त्रार्थ द्वारा पराजित कर अपने वश कर लेंगे, तो वह आपको बड़ी सहायता देगा और आपके भाष्यपर वार्त्तिक लिखेगा। साथ ही उन्होंने यह भी कहा, कि जब तक मेरा शरीर भस्म न हो जाय तब तक आप मेरे सामने खड़े रहें। मुझे आपसे बड़ी प्रीति है, क्योंकि आपने वेदोंके उद्धारका झण्डा उठाया है।

इतना कहकर भट्टाचार्य मौन हो गये। तुषाग्नि जोरोंके साथ धधक उठी और देखते ही देखते पुण्यात्मा कुमारिल भस्म हो गये। उनके विछोहसे शङ्कराचार्य बड़े दुःखी हुए। कर्मकाण्डपर कुमारिलको बड़ी श्रद्धा थी। उस श्रद्धाके वशीभूत हो कर ही उन्होंने अपने आपको जला डाला था। उनके बाद शंकराचार्य्यने इसी लिये कर्म वादका बड़ी तीव्रतासे खण्डन किया।

कुमारिल अपने समयके एक अद्वितीय विद्वान् थे। उन्हें वैदिक और बौद्ध धर्मके सिद्धान्त तथा दर्शन शास्त्रोंका यथेष्ट ज्ञान था। वेदोंकी सच्चाई पर उन्हें पूरा पूरा विश्वास था। मीमांसा शास्त्रके शावरभाष्य तथा आश्वलायनके गृह्य सूत्रपर उन्होंने वार्त्तिक रचे थे (न्यूनताको पूर्ण करना, त्रुटिको दिखाना और अयोग्य की अयोग्यता सिद्ध करना वार्त्तिक है) इस के अतिरिक्त उन्होंने रूपक और अलंकारिक कथाओंको विद्व-

-ताके साथ स्पष्ट किया था। उन्हें हुए प्राय: ११०० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। उन्होंने जिस परिश्रम और योग्यताके साथ वेद धर्मका पुन: प्रचार किया वह सराहनीय है। वेदोंकी शिक्षा रसातलको पहुंच चुकी थी। वे न हुए होते तो आज हमारी धार्मिक परिस्थिति अत्यन्त शोचनीय होती। जिस बौद्ध धर्मने समूचे भारत और प्राय: एशिया भरमें प्रचार पा लिया था, उसे इस प्रकार उच्छिन्न करना सामान्य काम न था। महाचार्य्यने यह सफलता पूर्वक कर दिखाया अत: उनका नाम अमर है और अनन्तकाल तक अमर रहेगा।
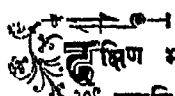
स्वामी शंकराचार्य्य

दक्षिण भारतके केरल प्रदेशमें पूर्णानदीके तट पर वृषाद्रि पर्वतके पास कालटो नामक एक ग्राम था। उसी ग्राममें शंकराचार्य्यका जन्म हुआ। उनके पिताका नाम शिवगुरु और माताका नाम सती था। शिव गुरु महा विद्वान और ज्ञान सम्पन्न थे। उन्होंने भट्टपाद, प्रभाकर, कणाद गौतम, कपिल और पतञ्जलि प्रभृति, दार्शनिक और विद्वानोंके ग्रन्थोंका अध्ययन किया था। उनके पिता भी अच्छे विद्वान थे। उन्होंने विद्याधिराजकी उपाधि प्राप्त की थी। विद्याधिराजके पिता भी शास्त्रोंके ज्ञाता और वेदोंकी कई शाखाओंके पण्डित थे। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि इस कुटुम्बमें पण्डिताई वंशपरंपरासे चली आती थी। इसी घरानेमें स्वामी शंकराचार्य्यका जन्म हुआ।

शिव गुरुने ज्योतिष शास्त्रके ज्ञाता और प्रवीण पण्डितोंसे अपने पुत्रका भविष्य पूछा। पण्डितोंने उसे होनहार और उसके भविष्यको उज्ज्वल बतलाया। उन्होंने बतलाया, कि यह बड़ा यशस्वी, विद्वान् और प्रतापी होगा। इसकी कीर्ति दिगन्त व्यापिनी होगी और नाम यावच्चन्द्र दिवा करौ अमर रहेगा।

पण्डितोंकी बात सुन, शिव गुरुको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने अपने प्रतापी पुत्रका नाम शंकर रक्खा शंकर वास्तवमें शंकर स्वरूप थे। उनका वर्ण शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल था। उनके मस्तक पर चन्द्र, ललाट पर नेत्र, कन्धोंपर त्रिशूल, हृदय पर नाग, चरण तलमें चमर और तलहत्थीमें चक्र, गदा, धनुष, डमरू प्रभृतिके चिन्ह थे। इन सामुद्रिक लक्षण और रेखाओंको देख कर लोग उन्हें भाग्यशाली, होनहार, प्रतापी और शंकर स्वरूप बतलाते थे।

शंकर मेधावी बालक थे। उनकी बुद्धि और स्मरण शक्ति तिव्र एवम् प्रखर थी। तीन वर्षकी अवस्थामें उनके पिताका देहान्त हो गया। शंकर अपने पिताके इकलौते पुत्र थे। उनकी माता विदुषी थी। पांच वर्षकी अवस्था पर्य्यन्त वे शंकरको घर परही पढ़ाती रहीं। पांचवे वर्ष उनका उपनयन संस्कार हुआ। उसी समय उनकी माताने उन्हें गुरुके पास भेज दिया।

शंकरकी विद्यामें बड़ी भक्ति थी। उनकी अलौकिक स्मरण शक्ति और विद्या-प्रेमको देख कर गुरु स्तम्भित रह गये। उन्होंने ऐसा प्रतिभाशाली शिष्य पहले कभी न देखा था। वे शंकरकी शिक्षा पर विशेष रूपसे ध्यान देने लगे। उनको कृपा और अपनी बुद्धिके कारण शंकर कुछही दिनोंमें वेद वेदाङ्ग और शास्त्रके ज्ञाता बन गये। उनकी गणना विख्यात पण्डितोंमे होने लगी।

गुरुकुलमें विद्याभ्यास करते समय एक दिन अपने सह

पाठियोंके साथ शंकर भिक्षा मांगने गये। मांगते हुए वह एक निर्धन ब्राह्मणके यहां जा पहुंचे। ब्रह्मचारीको घर पर आया देख, भिक्षा देनेमें असमर्थ होनेके कारण ब्राह्मणी विलाप करने लगी। उसके विलापको देखकर शंकरके हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। गार्हस्थ्य जीवनमें कैसी कैसी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, क्या क्या दुःख भोगने पड़ते हैं, यह सब उन्हें विदित हो गया। उनके हृदयमें यहींसे वैराग्य उत्पन्न हो चला।

वेद, वेदाङ्ग और शास्त्रोंमें प्रवीणता प्राप्त कर वे अपने घर लौट आये। यहां अनेकानेक विद्यार्थी उनके निकट विद्याध्ययन करने लगे। शङ्कर उन्हें पढ़ाने और माताकी सेवा करनेमें समय बिताने लगे। उनके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हो चुका था अतः उन्होंने अपना विवाह न किया। वे निरन्तर पण्डितोंसे धर्म चर्चा किया करते थे कुछही दिनोंमें चारो ओर उनकी ख्याति हो गयी।

केरलके राजाने भी उनका नाम और कीर्त्ति सुनी। उसने उन्हें अपनी सभाका पण्डित बनाना चाहा और अपने मन्त्रीको बुलाने भेजा। शंकराचार्य्यने सविनय जानेसे इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि मैं राजसम्मानित नहीं होना चाहता। मैं धनहीन रहकर लोगोंको धर्म्मोपदेश देना चाहता हूं।

शंकराचार्य्यका उत्तर सुन कर मन्त्री वापस चला गया। उनकी निस्पृहताका हाल सुन, राजा स्वयं उपस्थित हुआ। उसने

दश सहस्र मुहरें और अपने रचे हुए तीन नाटक शंकरको भेट किये। शंकरने उन नाटकोंको पढ़ प्रसन्नता प्रकट की और मुहरोंको लौटालते हुए कहा—"राजन्! इन्हें हम क्या करें? भोजनके लिये भिक्षा, पहननेके लिये मृगचर्म, और रहनेके लिये भूतल-यह सब होते हुए ब्रह्मचारियोंको हाथी घोड़े और धनादिक राजसी ठाटसे क्या प्रयोजन है। उनके लिये तो स्नान सन्ध्यादिक कष्ट साध्य कर्म्म ही सब कुछ है।"

शंकराचार्य्यकी यह निस्पृहता देख, मनही मन उनकी प्रशंसा करता हुआ राजा अपने स्थानको लौट गया। शंकराचार्य्य पुनः शिष्योंको पढ़ाने और धर्म्म चर्चा करनेमें लीन रहने लगे। वे संस्कृत, प्राकृत और मागधी भाषाके पूर्ण ज्ञानी थे, अतः अनेकानेक विद्वानोंसे उनकी भेट होती थी। वेदोंको पद दलित होते देख उन्हें बड़ा दुःख होता था। कईबार उन्होंने संन्यास लेनेका विचार किया और अपनी मातासे कहा, परन्तु माताने उन्हें आज्ञा न प्रदान की।

एक दिन माता और पुत्र-दोनों वेगमती नदीके प्रवाहमें जा फंसे। शङ्करने संसार पारावारमें डूबनेकी अपेक्षा इस जल-राशिमें डूब मरना कहीं अच्छा समझा। उन्होंने अपनी मातासे कहा—"यदि आप मुझे संन्यास लेनेकी आज्ञा प्रदान करें, तब तो मैं बचनेकी चेष्टा कर सकता हूं, अन्यथा जो ईश्वरकी इच्छा होगी वही होगा।"

इतना कह शङ्कर पानीमें डूबने उतराने लगे। अपने प्रिय

पुत्रकी यह दशा देख सती व्याकुल हो उठीं। उन्होंने घबड़ाकर उन्हें आज्ञा प्रदान कर दी। शङ्कर तत्काल बाहर निकल आये। घर पहुंचनेपर उन्होंने विदा मागी। माताको उनका वियोग असह्य प्रतीत होने लगा। उनकी आंखोंमें जल भर आया; फिर भी, उन्होंने आशीर्वाद दे संसारके कल्याणार्थ अपने इकलौते पुत्रको न्यौछावर कर दिया।

चलते समय माताने अपनी एक इच्छा व्यक्त की। उन्होंने कहा, कि मेरी उत्तर क्रिया तुम्हारे ही हाथसे होनी चाहिये। शङ्कर यह जानते थे, कि संन्यासीको ऐसा करनेका अधिकार नहीं है, फिर भी वे अपनी माताकी अन्तिम आज्ञा लोप न कर सके। उन्होंने तदर्थ माताको वचन दिया और उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—"मातेश्वरि! आप शोक न करें। संसार क्षण भङ्गुर है। पक्षीगण सायङ्काल वृक्षपर एकत्र होते हैं और सवेरा होतेही उड़ उड़ कर चले जाते हैं। ऐसाही संसार है। नियत समय पर लोग एक दूसरेको छोड़ कर चले जाते हैं। न कोई किसीके साथ आता है, न कोई किसीके साथ जाता है। सबका जाना अवश्यम्भावी है। कोई आज और कोई कल, कोई अभी और कोई थोड़े दिनोंके बाद—सभी एक न एक दिन अवश्य चले जायेंगे। यह स्नेह बन्धन—माता और पुत्रका सम्बन्ध चिरस्थायी नहीं है। वियोग होना अनिवार्य्य है; मृत्यु एक दिन इस स्नेह बन्धनको तोड़ही देती है। अतः शोक न करो। मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य करता हूं। मैं स्वयं उप-

स्थित हो आपका अग्नि संस्कार करूंगा। मुझे आज्ञा दीजिये। मैं संसारका हित करनेके लिये दीक्षा ग्रहण कर रहा हूं।"

इतना कह, शोकाकुला माताको प्रणाम कर शंकराचार्य्य घरसे निकल पड़े। उन्हें आज सीमातीत आनन्द हो रहा था। उन्होंने महात्मा गोविन्दनाथका नाम सुन रक्खा था। वे अपनी तपश्चर्याके कारण इतने विख्यात हो रहे थे, कि वह जिस वनमें तप करते थे, वह वन उस समय उनके नामसे विख्यात हो रहा था। गोविन्दवन नर्मदाके तट पर था। वहां शंकरने अनेक संन्यासियोंको देखा। पता पूछते हुए वह गोविन्दनाथके पास पहुंचे। गोविन्दनाथ एक गुफामें तप कर रहे थे। उस समय वे समाधिमें लीन थे। जब उनकी समाधि भङ्ग हुई तब शंकरने तीन बार प्रदक्षिणा कर उन्हें प्रणाम किया। बोले—"मैं आपके पास ब्रह्मनिष्ठाकी प्राप्तिके लिये आया हूं। कृपया मुझे संन्यासकी दीक्षा दे, आत्म विद्याका उपदेश दीजिये।"

गोविन्दाचार्य्योने शंकरसे उनका नाम, पता, गोत्र और संन्यासाश्रममें प्रविष्ट होनेका उद्देश्य पूछा। शंकरने अपनी योग्यताका परिचय देते हुए उनके प्रश्नोंका उत्तर दिया। उत्तर सुन कर गोन्दिाचार्य्य सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने सहर्ष उन्हें परमहंस की दीक्षा दी और वेदान्तके चार महा वाक्योंका उपदेश दे उनका नाम शंकराचार्य्य रक्खा।

शंकराचार्य्य दीक्षा ग्रहण कर गुरुके पास रहने और वेदान्त

तथा उपनिषदोंका विशेष रूपसे अध्ययन करने लगे। कुछ कालके उपरान्त, उन्होंने प्रचारकार्य्यके लिये अपने गुरुसे आज्ञा मांगी। गुरुने विदा करते समय उन्हें काशीसे कार्य्यारम्भ करनेका उपदेश दिया।

स्वामी शंकराचार्य्यने प्रचार करनेके पूर्व कुछ काल बद्रिकाश्रममें व्यतीत किया। वहां कई शिष्य उनके पास एकत्र हो गये। शंकराचार्य्य उन्हें पढ़ाते और वेदान्त सूत्र तथा उपनिषदों पर व्याख्यायें लिखते रहे। उनका सबसे पहला और सबसे अधिक प्रसिद्ध शिष्य सनन्दन था।

सनन्दन एक दिन गंगा नदीके उस पार था। शंकराचार्य्यने उसकी परीक्षा लेनेके लिये इस पारसे बुलाया। सनन्दनकी गुरुपर पूर्ण श्रद्धा और भक्ति थी। वह जलको थलकी भांति पार करता हुआ गुरुकी ओर अग्रसर हुआ। उसने यह भी न सोचा, कि मैं जलमें डूब जाऊंगा। कहते हैं, कि ईश्वरेच्छासे गंगामें कमल उत्पन्न हुए और उन पर पैर रखता हुआ सनन्दन गुरुके पास आ पहुंचा। शंकराचार्य्य उसकी यह श्रद्धा देख प्रसन्न हो उठे। उसके पैरोंतले कमल उत्पन्न हुए, अतः उन्होंने उसका नाम पद्मपाद रक्खा।

कार्य्य क्षेत्रमें अवतीर्ण होनेका विचार कर शङ्कराचार्य्य काशी आये। एक दिन वे मध्यान्हके समय आन्हिक कर्म्म करनेके लिये गंगाकी ओर जा रहे थे। मार्गमें एक चाण्डालसे भेट हो गयी। उसके साथ चार भयङ्कर कुत्ते भी थे।

मार्ग रुका हुआ था। शंकराचार्य्यने घृणित भावसे उसे एक और हट जानेको कहा। चाण्डाल ज्ञानी था। उसने कहा,—भगवन्! आप चाण्डाल किसे कहते हैं? ब्रह्म एक है, अद्वितीय है, असङ्ग, सत्य, अनन्त, निरवय, ज्ञान रूप ; और अखण्ड है। आत्मा भी अद्वितीय है। आप वेदान्त कुशल होने पर भी यह भेद क्यों रखते हैं? आप मेरे शरीरसे घृणा करते हैं या आत्मासे? यदि शरीरसे करते हों तो वह व्यर्थ है। मेरा शरीर भी अन्नमय और आपके शरीरके समान हैं। यदि आत्मासे आप घृणा करते हों तो भयङ्कर भूल हैं। आत्मा तो अभिन्न है ही। सूर्य्यके प्रतिबिम्ब मदिरा और गङ्गाजलमें पड़नेपर भी वह जिस प्रकार अभिन्न है, उसी प्रकार शरीरोंमें भिन्नता होनेपर भी आत्मा केवल एकही है। यदि आप लोकाचारके कारण ऐसा करते हों और यह चाण्डाल और मैं ब्राह्मण हूं— ऐसा मानते हों तब भी भूल है। आपके समान ज्ञानीको ऐसा भेद भाव न रखना चाहिये।"

चाण्डालकी यह बातें शङ्कराचार्य्यको उचित प्रतीत हुईं। उन्होंने उसे धन्यवाद दे कृतज्ञता प्रकट की। उनका भेदभाव जाता रहा और आजसे वे सबको समान समझने लगे। यहां उन्होंने सुना, कि प्रयागमें कुमारिल भट्टाचार्य्य प्रायश्चित्त करने जा रहे हैं। शङ्कराचार्य्य बहुत दिनोंसे उनका नाम सुन रहे थे। वे उनसे शास्त्रार्थ कर यशस्वी होना चाहते थे। अचानक उनके अग्नि प्रवेशका समाचार सुन उन्हें खेद हुआ। वे अपने

शिष्योंको साथ ले शीघ्रतासे प्रयागकी ओर प्रस्थित हुए। जिस समय वे वहां पहुंचे उस समय भट्टाचार्य्य तुषाग्निमें प्रवेश कर चुके थे। (देखो कुमारिल भट्टाचार्य्यकी जीवनी)

शङ्कराचार्य्यने कुमारिलको अपना परिचय दे भाष्य दिखाये और अपनी इच्छा व्यक्त की। कुमारिलने कहा—मैं गुरु-द्रोह के पापका प्रायश्चित कर रहा हूं। मेरा कार्य्य पूर्ण हो चुका है। मैं अब आपके साथ शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। माहिष्मतीमें मण्डन मिश्र नामक मेरा प्रधान शिष्य रहता है। उस से शास्त्रार्थ कर आप यश लाभ करें। उसकी सहायतासे नास्तिक मतका मूलोच्छेद करनेमें आप समर्थ हो सकेंगे। आप का उद्देश्य पवित्र है। ईश्वर आपको सफलता दे। मैं आपसे अतीव प्रसन्न हूं।"

इतना कह कुमारिलने मौन धारण कर लिया। उनका शरीर कुछही देरमें भस्म हो गया। शङ्कराचार्य्यको यह देख बड़ा दुःख हुआ। वे कुमारिलके आदेशानुसार माहिष्मती पहुंचे। माहिष्मती नगर नर्मदाके तटपर बसा हुआ था। नगरके बाहर कुछ औरतें एक कुएसे पानी भर रहीं थी। शङ्कराचार्य्यने उनसे मण्डन मिश्रके घरका पता पूछा। उन स्त्रियों ने उत्तर देते हुए कहा—

जगद्ध्रुवं स्यात् जगद्ध्रुवंस्यात्। कीरांगना यत्र गिरोगिरन्ति।
द्वारस्थ नीड़ान्तर सन्निरुद्धा। जानीहि तत् पंडित मण्डनौकः॥

अर्थात्, जहां दरवाजेपर पीजड़ोंमें बन्द सारिकायें भी आप

त नित्य है या अनित्य—ऐसे तत्वोंप वादाविवाद करती हों वहीं मण्डन मिश्रका निवास समझना।

पनिहारिनोंका यह उत्तर सुन, उनकी विद्वता देख शङ्कराचार्य अवाक् रह गये। जब वे मण्डन मिश्रके घर पहुंचे, तब वहां उनके कथनानुसारही ठाट देखा। द्वारपर अनेकानेक शिष्य विद्याध्ययन और शास्त्रार्थ कर रहे थे। सारिकायें भी निरन्तर चर्चा सुनते रहनेके कारण वैसीही बातें कह रहीं थीं।

उस दिन मण्डन मिश्रके यहां श्राद्ध था। वे पितरोंको पिण्डदान कर रहे थे। उसी समय वहां शङ्कराचार्य जा पहुंचे। उन्होंने शास्त्रार्थकी भिक्षा मांगी। असमय इस संन्यासीको आया देख, मण्डन मिश्रको कुछ क्रोध आ गया। बातही बात शङ्कराचार्य और उनमें वादाविवाद हो गया। बातोंसे मण्डन मिश्रने जान लिया, कि यह साधारण संन्यासी नहीं है। वे शान्त हुए। श्राद्धकर्मसे निवृत्त होनेके बाद उन्होंने शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया।

मण्डन मिश्रकी स्त्री सरस्वती महाविदुषी थी। वे मध्यस्थ नियत हुईं। यथा समय शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। पहले दोनों जनोंने प्रतिज्ञा की। शङ्कराचार्यने कहा—"मैं सिद्ध कर दूंगा, कि ब्रह्म सत्य है। यदि ऐसा न कर सका, तो गैरिक वसनों को त्याग, श्वेत वस्त्र धारण कर लूंगा और गृही होकर रहूंगा" मण्डन मिश्रने कहा—"मैं वेदके कर्मकाण्डको सत्य सिद्ध कर

दूँगा। यदि ऐसा न कर सका, तो संन्यास ग्रहणकर आप का शिष्य हो कर रहूंगा।"

यह शास्त्रार्थ कई दिन तक होता रहा। अन्तमें शङ्कराचार्य्य विजयी हुए। उन्होंने श्रुति, स्मृति और उपनिषदोंके अनेक प्रमाणों द्वारा ब्रह्मको सत्य सिद्ध कर दिया। पण्डिता सरस्वतीने निरपेक्ष भावसे उनका विजयी होना घोषित किया। मण्डन मिश्रने भी इस न्यायको मान्य रक्खा। मण्डन मिश्र अपने प्रतिज्ञानुसार शङ्कराचार्यके शिष्य हो गये। शङ्कराचार्य्यने संन्यस्त दीक्षा दे, उनका नाम सुरेश्वराचार्य्य रक्खा। कहते हैं, कि सरस्वतीने भी शङ्कराचार्य्यके साथ शास्त्रार्थ किया और कई दिनोंके बाद कठिनाईके साथ वे उसे पराजित कर सके।

इसके बाद शङ्कराचार्य्य कुछ काल तक वहीं नर्मदाके तट पर ठहरे रहे और सुरेश्वराचार्य्यको वेदान्त पढ़ाते रहे। तदनन्तर उन्होंने प्रचारका झण्डा उठाया और तिव्रताके साथ अद्वैत मतका मण्डन करने लगे। उन्होंने दक्षिणके महाराष्ट्र प्रभृति देशोंमें भ्रमण कर अनेकानेक मतोंका खण्डन किया। सुरेश्वरादि शिष्योंने भी पाशुपत, बौद्ध, वैष्णव, शैव, महेश्वर प्रभृति मतवादियोंको पराजित कर अपनी योग्यताका परिचय दिया। यहां एक कापालिकने शङ्कराचार्य्यको मार डालनेकी चेष्टा की, परन्तु पद्मपादकी सावधानीसे वह बच गये।

अनेक मत मतामतान्तरोंका खण्डन और अद्वैत वादका

मण्डन करते हुए शंकराचार्य्य गोकर्ण क्षेत्र पहुंचे। वहांसे देवस्थानोंको देखते हुए वे श्रीवली गये। श्रीवली एक सुन्दर ग्राम था। वहां दो हजार वेदज्ञ ब्राह्मण रहते थे। उन्हींमें एक प्रभाकर भी था।

प्रभाकरके एक पुत्र था। वह जड़ और उन्मत्त प्रतीत होता था। पढ़ना लिखना दूर रहा, वह ध्यान पूर्वक भोजन भी न करता था। न वह लड़कोंके साथ खेलता, न किसीसे बोलता। कोई तिरस्कार करे चाहे प्रेम, उसके हृदयपर कोई प्रभाव न पड़ता था। लोग उसे जड़ भरत कहते थे और समझते थे, कि भूत-प्रेतके प्रभावसे यह भ्रमित रहता है।

प्रभाकर सब तरहसे सुखी होनेपर भी पुत्रके इस दुःखसे दुःखी रहता था। वह उसे किसी महात्माको दिखाना चाहता था। सम्भवतः उसने भी उसकी विपन्नताका कारण भूत बाधाही समझ ली। शङ्कराचार्य्यके आगमनका समाचार सुन, वह प्रसन्न हो उठा। वे एक शिवमन्दिरमें ठहरे हुए थे। प्रभाकर अपने पुत्रको लेकर उनके पास गया। उसने उसे आचार्य्यके चरणोंपर डाल दिया। जड़की भांति वह चरणोंपर पड़ाही रहा, उठनेकी कौन कहे हिलातक नहीं।

उसकी यह दशा देख, सबको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। प्रभाकरने करुणापूर्ण शब्दोंमें उसका वृत्तान्त कह सुनाया। आचार्य्यको सुनकर दया आ गयी। उन्होंने उसके शिरपर हाथ रख पूछा—"वत्स! तू कौन है और ऐसा क्यों करता है?"

शंकराचार्य्यके यह शब्द सुन, वह बालक उठ बैठा। उस ने कहा,—"भगवन्! मैं जड़ नहीं हूं। शोक, मोह, क्षुधा, पिपासा, जरा, मृत्यु, वृद्धि, परिवर्तन, क्षीणता प्रभृति भाव और विकारोंसे रहित जो केवल सुखरूप परमपद है, वही मैं हूं। हे प्रभो! मैं चाहता हूं, कि मेरीही तरह सब लोग इस सुखको अनुभव करें।"

इतना कह उस बालकने बारह श्लोकों द्वारा प्रपञ्च रहित परमात्माके तत्वका निरूपण किया। उसका यह कार्य्य देख सब लोग अवाक् रह गये। प्रभाकरको भी सीमातीत आश्चर्य्य हुआ। शंकराचार्य्यने कहा—प्रभाकर! यह पूर्व जन्मका कोई योगी है। जब इसे अपने देहादिक पदार्थों पर ही प्रीति नहीं है, तब संसार पर इसकी आसक्ति कैसे हो सकती है? तुम इसका मोह न करो और यह जो करे वह इसे करने दो।

शंकराचार्य्यकी यह बात सुन, प्रभाकरने उसका मोह छोड़ दिया। साथही उसने शंकराचार्य्यसे उसे अपनी शरणमें रख-नेकी प्रार्थना की। शंकराचार्य्यने प्रभाकरकी प्रार्थना स्वीकार कर उसे अपना आश्रय प्रदान किया। उसने बारह श्लोंको द्वारा ब्रह्मको हस्तामलक वत् सिद्ध किया, अतः उन्होंने उसका नाम हस्तामलक रक्खा। शंकराचार्य्यकी शिक्षासे वह भी प्रतिभाशाली विद्वान बन गया और उनके प्रधान शिष्योंमें गिना जाने लगा।

इसके बाद वे शिष्यों सह शृंगेरी गये। वहां एक मठकी

स्थापना कर उन्होंने सुरेश्वराचार्य्यको उसका अधिकारी नियत किया। जितने दिनों तक वे वहां रहे, बराबर धर्म चर्चा होती रही। उनकी प्रेरणासे, सुरेश्वराचार्य्यने उपनिषदोंके भाष्य और पद्मपादने शारीरिक सूत्र पर वार्त्तिक लिखे। वहीं शंकराचार्य्यको माताकी रुग्नावस्थाका समाचार मिला अतः अपने प्रतिज्ञानुसार, वहांसे वह कालटी चले गये।

जिस समय शंकराचार्य्य अपने घर पहुंचे, उस समय उनकी माता मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई थीं। अपने प्रिय पुत्रको उपस्थित देख, वह प्रसन्न हो उठीं। उन्होंने फिर एक बार अपनी इच्छा व्यक्त की और शंकराचार्य्यको पूर्व प्रतिज्ञाका स्मरण दिलाया। शंकराचार्य्यने उन्हें विश्वास दिलाया और कहा, कि मैं अवश्य आपकी उत्तर क्रिया कर अपनी प्रतिज्ञा पालन करूंगा। इसके बाद उन्होंने ब्रह्म ज्ञानका उपदेश दिया, जिसे सुन बड़ी शान्तिके साथ उनकी माताने प्राण त्याग किया।

शंकराचार्य अपने प्रतिज्ञानुसार माताका अग्निसंस्कार करनेको प्रस्तुत हुए, परन्तु गांवके लोगोंने इसका विरोध किया। उन्होंने कहा कि संन्यासीको ऐसा करनेका अधिकार नहीं है। शंकराचार्य्यने बहुत कुछ समझाया और कहा, कि मैं माताकी आज्ञा और अपनी प्रतिज्ञा पालन करनेके लिये ही ऐसा कर रहा हूं, परन्तु लोगोंने अपना दुराग्रह न छोड़ा।

शंकराचार्य्य इससे लेशमात्र भी विचलित न हुए। लोगों

ने न उनके कार्य्यमें योग दिया, न उन्हें किसी प्रकारकी सहायताही दी। यहां तक, कि किसीने अग्नि भी न दी। शंकराचार्य्यने जैसे हो सका, इस कार्य्यको पूर्ण किया। उन्होंने चलते समय कहा—"यह ग्राम संन्यासियोंके रहने योग्य नहीं है। ऐसे दुराग्रही मनुष्योंके हाथकी भिक्षा भी न ग्रहण करनी चाहिये।"

कालटीके विषयमें शंकराचार्य्यने जैसा कहा वैसाही हुआ। संन्यासियोंने वहांका आवागमन त्याग दिया। फल यह हुआ, कि कुछही दिन बाद वहांके लोग बिना किसी प्रकारकी शिक्षाके वेद-भ्रष्ट हो गये। अभी संन्यासियोंका यह असहयोग बराबर चला जा रहा है। कोई भी उस ग्राममें भिक्षा नहीं ग्रहण करता।

इसके बाद शंकराचार्य्य शृंगेरी लौट आये। शृंगेरीसे शिष्योंके साथ वह दिग्विजय करने निकल पड़े। सर्व प्रथम वह रामेश्वरकी ओर गये। दक्षिण भारतमें उन दिनों शाक्त और भैरवोंका बड़ा प्राबल्य था। उन्होंने उनका बड़ी तीव्रताके साथ खण्डन किया। जंगम, शैव, लक्ष्मी, शारदा, विद्या प्रभृतिके उपासक तथा भक्त, भागवत, वैष्णव, पञ्चरात्रि, वैखानस और कर्म्महीन-यह छः प्रकारके वैष्णवोंको पराजित कर उन्हें अद्वैत ब्रह्मकी शिक्षा दे कर्म्म करनेकी आज्ञा प्रदानकी। इसी प्रकार उन्होंने हिरण्य गर्भ अग्नि, सूर्य, तथा गणपतिके उपासकोंको भी पराजित किया।

रामेश्वर पहुंच कर उन्होंने शिव-लिङ्गकी पूजाकी। वहांसे वह चोल और पाण्ड्य राज्योंमें गये। यहांके राजाओंने भी उनका मत ग्रहण किया। इसके बाद वे कांची गये। वहां अम्ब-रेश्वरके मन्दिरमें एक मास निवास किया। उन्होंने स्वयं भी वहां मन्दिर बनवा कर उनमें विष्णु और शिवकी मूर्त्तियां स्थापित कीं। आज भी दक्षिणमें वह स्थान शिवकांची और विष्णु कांचीके नामसे प्रसिद्ध है।

अनेक मत मतान्तरोंका खण्डन और अद्वैत वादका मण्डन करते हुए आचार्य्य पुरी गये। वहां उन्होंने गोवर्द्धन मठ स्थापित किया। वहांसे विदर्भ होते हुए वे उज्जैन पहुंचे। उज्जैन भी कापालिकोंका केन्द्र था। शंकराचार्यने सर्व प्रथम राजा सुध-न्वासे भेट की। उसने जैन और बौद्धोंसे शास्त्रार्थ करानेकी व्यवस्था की। दूर दूरसे जैन और बौद्ध पण्डित बुलाये गये। बड़े जोर तोड़का शास्त्रार्थ हुआ। शंकराचार्यकी विजय और उनके विरोधियोंकी पराजय हुई। राजा सुधन्वा उन पण्डितों सहित शंकराचार्यका शिष्य हो गया और तन, मन, धनसे उनकी सहायता करने लगा।

इसके बाद शंकराचार्यने कापालिक किंवा भैरवोंके विरुद्ध बड़ा आन्दोलन मचाया। क्रकच नामक मनुष्य उज्जैनके कापालिकोंका अग्रणी था। उसने शंकराचार्यसे वादविवाद किया। बुरी तरह पराजित और तिरस्कृत होनेके कारण वह क्रुद्ध हो गया। उसने कापालिकोंको भड़काया और उन्हें बल

प्रयोग करनेके लिये उत्साहित किया। दलके दल कापालिक शंकराचार्य्य पर आक्रमण करनेके लिये उमड़ पड़े। राजा सुधन्वाने इस प्रसङ्ग पर अपनी सेना द्वारा शंकराचार्य्यकी सहायता की। सेनाने कापालिकोंको नष्ट भ्रष्ट कर आचार्य्यकी रक्षा की।

वहांसे शंकराचार्य गुजरात गये। गुजरातमें भी अनेक मतमतान्तरोंका खण्डनकर उन्होंने अद्वैत वादका प्रचार किया। द्वारिकामें शारदा मठ स्थापित कर वह उत्तरकी ओर चले आये। वहां गंगाके किनारों पर कुछ काल तक वे शास्त्र चर्चा, धर्म्मप्रचार और भ्रमण करते रहे। अनेकानेक पण्डित और पाखण्डमत वादियोंको पराजित करते हुए, वहांसे वे काश्मीर गये। काश्मीरमें बौद्धोंका प्राधान्य था। शंकराचार्यने उन्हें भी पराजित कर अद्वैतवादी बनाया।

काश्मीरसे वे फिर उत्तर भारतमें प्रचार करते हुए बंग देशमें गये और वहां अपने मतकी स्थापनाकी। वहांसे वे आसाम पहुंचे। उन दिनों उसे कामरूप कहते थे। कामरूप शाक्तोंका केन्द्र था। शंकराचार्यने वहां अभिनव गुप्त नामक शाक्त धर्म्माचार्यको शास्त्रार्थमें पराजित किया।

अभिनव गुप्तने शंकराचार्यका मत स्वीकार कर लिया, परन्तु अपनी पराजयसे वह इतना क्षुब्ध हुआ, कि उसने आचार्य्यसे बदला लेनेकी ठानी। अवसर पाकर उसने शंकराचार्यको कोई ऐसी वस्तु खिला दी, कि उनका शरीर अस्वस्थ रहने लगा। ऐसी दशामें भी उन्होंने प्रचारका कार्य नहीं छोड़ा।

लोगोंको उपदेश देते हुए वह बदरिकाश्रम पहुंचे। वहां उन्होंने ज्योतिर्मठकी स्थापना की। फिर वे केदारनाथ चले गये। वहीं कुटिलकालने उन पर आक्रमण किया, अतः उन्होंने इहलोक लीला समाप्त कर दी।

शंकर दिग्विजय—शंकराचार्यने समस्त भारतमें भ्रमण कर स्थान स्थान पर शास्त्रार्थ किये। उस समय भारत वर्ष मत-मतान्तरोंका घर बन रहा था। कापालिक, गाणपत्य और शाक्त प्रभृति मतवादियोंके कर्म्म इतने घृणित थे, कि उनका लिखना भी उचित प्रतीत नहीं होता। उनकी भयङ्करताका इतनेहीसे अनुमान किया जा सकता है, कि वे अपने देवोंको प्रसन्न करने लिये मनुष्योंको भी बलि चढ़ा देते थे। शंकराचार्य्यने इनके विरुद्ध प्रबल आन्दोलन उठाया और उनकी शक्ति नष्ट कर दी। शंकराचार्यने कहां कहां किस किस मतका खण्डन किया, यह शंकर दिग्विजय नामक ग्रन्थ देखनेसे ज्ञात होता है।

शंकराचार्य्यके शिष्य—शंकराचार्यके अनेकानेक शिष्य थे। जिनमें पद्मपाद, सुरेश्वर, हस्तामलक और तोटक यह चार मुख्य थे। इनके अतिरिक्त ज्ञानधन, ज्ञानोत्तम, सिंह गिरीश्वर, ईश्वरतीर्थ, नृसिंह मूर्त्ति, वितरण, विद्याशंकर, विद्या-सैन्य, कृष्ण, चन्द्रशेखर, शंकर, पुरुषोत्तम, रामचन्द्र प्रभृति भी प्रसिद्ध और विद्वान थे। इनमेंसे अनेक धर्माचार्य्य हुए और अनेकोंने धर्म ग्रन्थोंपर वार्त्तिक, टीका, भाष्य प्रभृतिकी रचना कर कीर्त्ति प्राप्त की।

शंकराचार्य्यके सिद्धान्त—शंकराचार्य्य और प्राचीन ऋषिमुनियोंके सिद्धान्तोंमें साम्य है। वे वेदोंको निर्भ्रान्त और स्वतः प्रमाण मानते थे। वेदोंकी शिक्षाके विरुद्ध ऋषि मुनियोंकी जो सम्मति हो, उसे वे अप्रमाण मानते थे। परमात्माके विषयमें वे मानते थे, कि ब्रह्म एक है। वह ज्ञानमय आनन्दमय, और शुद्ध चैतन्य स्वरूप है। केवल ब्रह्मही सत्य है। उसके अतिरिक्त सभी कुछ मायामय और क्षण भंगुर एवम् असत् है। जीवात्मा और परमात्मा अभिन्न है। जीवात्मा तब तक पुनर्जन्मके चक्रमें फिरा करता है जब तक उसे पूरा पूरा ज्ञान नहीं प्राप्त हो जाता। ज्ञान अन्तःकरणकी पवित्रतासे प्राप्त होता है और अन्तःकरणकी पवित्रताके लिये कर्म्म और उपासना करनी चाहिये। फलकी कामनासे जो कर्म्म किये जाते हैं, वह जीवात्माको आवागमनके चक्रमें डालते हैं। पापके कारण मनुष्यको पशु, पक्षी और स्थावर योनिमें जन्म लेना पड़ता है—इत्यादि।

अनेक स्थानोंमें साम्य होने पर भी शंकराचार्य्य और प्राचीन ऋषिमुनियोंके एक सिद्धान्तमें भीषण मत भेद है। शंकराचार्य्य जीवात्मा और परमात्माको अभिन्न मानते थे। वे इस सिद्धान्तका बराबर प्रचार करते थे। जीवमात्र उनकी दृष्टिमें ईश्वर थे, परन्तु प्राचीन ऋषियोंने ऐसा नहीं माना। इन्होंने जीवात्मा और परमात्माको भिन्न बतलाया है।

मठोंकी स्थापना—शंकराचार्य्यने बौद्धोंके विहार मन्दिरोंकी भाँति चार मठोंकी स्थापना की। भारतको चारों ओर—उत्तरमें ज्योतिर्मठ, दक्षिणमें शृंगेरी मठ, पूर्वमें गोवर्द्धन मठ और पश्चिममें शारदामठ स्थापित कर उन्होंने ऐसी व्यवस्था कर दी, कि भारतके प्रत्येक प्रान्तमें उनके उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिये आन्दोलन होता रहे। बौद्ध मठोंमें स्त्रियोंको भी स्थान मिलता था, परन्तु शंकराचार्य्यने वैसा न किया। इस बातने मठोंको अनाचारसे बहुत कुछ बचाया और दीर्घ काल पर्य्यन्त मठाधीश जगद्गुरु की उपाधि धारणकर धर्मप्रचार करते रहे। यद्यपि, इस समय उनकी दशा शोचनीय है और प्रजाको उनसे कोई लाभ नहीं हो रहा तथापि, प्रायः एक हजार वर्ष तक उनके अधीश्वरोंने जो कार्य्य किया वह सराहनीय है।

शंकराचार्य्यका चरित्र—स्वामी शंकराचार्य्यके चरित्रमें हम देखते हैं, कि वे अपने संकल्पके बड़े पक्के थे। जिस कार्य्यको करनेका वह विचार करते, उसे करही डालते। उनकी बाल्यावस्थासेही हमें उनकी इस शक्तिका परिचय मिलता है। उन्होंने संन्यास लेनेका विचार किया, परन्तु माताने आज्ञा न दी। अन्तमें उन्होंने कौशलके साथ आज्ञा प्राप्तही कर ली।

शंकराचार्य्यमें मोहिनी शक्ति भी अपूर्व थी। जो उन्हें एक बार मिलता वह उन्हींका होकर रहता। कार्य्यारम्भ करनेके पूर्वही उन्होंने केरल-नरेशको अपना लिया था। राजा सुधन्वा

की भी यही दशा हुई। वह भी आजीवन उनका साथी रहा और उन्हें सहायता देता रहा। इसी प्रकार जिन्होंने उनका मत स्वीकार किया, जो उनके शिष्य हुए और जो उनके संसर्ग में आये, उनके हृदयमें उनकी भक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी और वे सब उन्हींके होकर रहें।

इसी प्रकार शंकराचार्य्यको अपने सिद्धान्तोंपर पूरा पूरा विश्वास था। उनका वह विश्वास इतना दृढ़ था, कि वे शास्त्रार्थ करते समय प्रतिज्ञा कर लेते थे, कि पराजित होनेपर मैं प्रतिवादीका मत ग्रहण कर लूंगा। वे प्रबल और अद्भुत युक्तियोंके साथ अपने सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते थे। यही कारण है, कि उन्हें कभी पराजित नहीं होना पड़ा।

इनके अतिरिक्त शंकराचार्य्यमें और भी अनेक गुण थे। केरल-नरेशका निमन्त्रण और उपहार अस्वीकार कर उन्होंने अपनी अद्भुत निस्पृहताका परिचय दिया था। वे कभी धन धाम और संसारके मोह जालमें नहीं फंसे।

शंकराचार्य्यकी स्मरण शक्ति भी अद्भुत थी। वे जो एक बार सुन या पढ़ लेते, वह सदैवके लिये उन्हें याद हो जाता। इसी धारणा शक्तिको देख उनके गुरु चकित हो गये थे और इसी शक्तिके कारण उन्होंने वेद वेदाङ्ग और शास्त्रोंका ज्ञान कुछही समयमें प्राप्त कर लिया था। अपने जीवन कालमें एक बार और भी इस शक्तिका परिचय दे, उन्होंने लोगोंको आश्चर्य्यमें डाल दिया था।

शंकराचार्य्यके भाष्यपर पद्मपादने टीका लिखी थी। एक बार वह तीर्थाटन करने जा रहे थे। मार्गमें उन्हें उनके मामा का घर मिला। उन्होंने अन्यान्य ग्रन्थोंके साथ वह टीका भी उनके पास रख दी। मामाने वह टीका पढ़ी। उस टीका में प्रभाकर, और भट्टपाद प्रभृति विद्वानोंके मतोंका खण्डन था। उसे यह अच्छा न लगा। उसने पद्मपादकी अनुपस्थितिमें उन ग्रन्थोंको जला दिया। जब पद्मपाद लौटे तब उन्होंने टीका के नष्ट हो जानेपर बड़ा खेद प्रकट किया। वे उसी क्षण पुनः लिखनेको प्रस्तुत हुए। मामाने यह जानकर उन्हें कोई ऐसी वस्तु खिला दी, कि उनकी बुद्धि मन्द हो गयी फलतः उद्योग करने पर भी वे पुनः टीका न लिख सके। दुःखित हो उन्होंने यह सारा हाल शङ्कराचार्यसे निवेदन किया आचार्य्यने उन्हें आश्वासन दिया और कहा,—तूने मुझे जो टीका ऋष्यश्रृंग पर्वतपर दिखायी थी, वह अद्यापि मुझे स्मरण है। तेरी इच्छा हो तो लिख ले, मैं लिखा दूँ।"

पद्मपादकी प्रसन्नताका वारापार न रहा। शंकराचार्य्यने उसे समूची टीका लिखा दी। पद्मपादने देखा, कि कहीं भी कुछ छूटने नहीं पाया। कहते हैं, कि यह संवाद सुन, राजा राजशेखर (केरल-नरेश) भी उनके पास दौड़ आया। उसके यह तीन नाटक, जो उसने आचार्य्यको बाल्यावस्थामें दिखाये थे, किसी प्रकार नष्ट हो गये थे। आचार्य्यने उन्हें भी ज्योंके त्यों लिखा कर अपनी अद्भुत धारणा शक्तिका परिचय दिया।

शंकराचार्य्यका बत्तीस ही वर्षकी अवस्थामें शरीरान्त हो गया था। फिरभी अपने जीवनकालमें उन्होंने बहुत काम किया। उन्होंने शाक्त और भैरवोंके समान सदाचार हीन मत वादियोंका मूलोच्छेद कर समाज पर बड़ाभारी उपकार किया। शाक्त मतका खण्डन करनेमें जहाँ उन्होंने तर्कका प्रयोग किया, वहां कापालिक और भैरवोंके विरुद्ध आवश्यक मालूम होने पर बल प्रयोग भी किया। कोई भी बुद्धिमान, शाक्त और भैरवोंकी भयङ्करताको जानता हुआ उनके इस कार्य्यको अनुचित नहीं कह सकता। इसके अतिरिक्त उन्होंने एक और भी सुधार कार्य्य किया। कितनेही मतवादी शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म प्रभृतिकी छापोंसे शरीरको दाग देना मुक्तिका साधन समझते थे। शंकराचार्य्यने इसका विरोध कर लोगोंको कायाकष्टसे बचानेकी चेष्टा की।

शंकराचार्य्यने छोटे बड़े अनेक ग्रन्थ लिखे थे। उनके इस कार्य्यका महत्व प्रचारके कामसे कुछ कम नहीं है। उनकी कृतियोंमें सर्व श्रेष्ठ प्रस्थानत्रय हैं, जिनमें उपनिषद भाष्य, सूत्रभाष्य और गीताभाष्य सम्मिलित हैं। उन्होंने दसों उपनिषद् पर भाष्य किये है। उनकी व्याख्या करते हुए ब्रह्मविद्या और जीवात्मा तथा परमात्माका स्वरूप वर्णन किया है। सूत्रभाष्यमें उपनिषदोंके विचारणीय विषयोंपर बिचार किया गया है। उसके पहले अध्यायमें बतलाया गया है, कि उपनिषद् ब्रह्मकोही जगतका कारण बताते हैं। दूसरे अध्यायमें बौद्ध

जैन और चार्वाक, प्रभृति नास्तिक मतोंका खण्डन है। तीसरे अध्यायमें वैराग्य, जीव ब्रह्मकी एकता, सगुण निर्गुण उपासना और ज्ञानके अन्तरङ्ग बहिरङ्ग साधनोंका वर्णन है। चौथे अध्यायमें जीवन मुक्त शरीरसे जीवके अलग होने, उत्तरायण गति, ब्रह्मप्राप्ति और ब्रह्मलोकका वर्णन है। गीता भाष्य श्रीकृष्ण की गीता पर एक सुन्दर व्याख्या है।

इस प्रकार शंकराचार्य्यने अनेकानेक मतोंका मूलोच्छेद कर अद्वैतवादका प्रचार किया। भारतवर्षके ब्राह्मण मात्र उन्हें अपना गुरु एवम् उद्धारक मानते हैं और उन्हें जगद्गुरुकी मानप्रद उपाधिसे सम्मानित करते हैं। उनके बाद और कोई उनका समकक्ष धर्म्माचार्य्य नहीं हुआ। उनके गौरवका इसीसे अनुमान किया जा सकता है, कि लोग उन्हें साक्षात् शंकर भगवानका अवतार मानते है और उनके सम्बन्धमें अनेक चमत्कार पूर्ण कथायें कहते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि वे महान व्यक्ति थे और उन्होंने जिस कामको उठाया, उसमें सफलता प्राप्त की। संसारमें उनका नाम यावच्चन्द्रदिवाकरौ अमर रहेगा।

रामानुज ।

रामानुजका जन्म मद्रासके पास पेरुम्बुदूर नामक ग्राममें हुआ था। उनके पिताका नाम केशवाचार्य और माताका नाम कान्तिमती था। आठ वर्षकी अवस्थामें उनका उपनयन संस्कार हुआ। फिर वे अपने मामाके पास विद्याध्ययन करने गये। उनका नाम यादवप्रकाश था। वे वेदज्ञ और विद्वान् ब्राह्मण थे। रामानुजने उनके द्वारा वेद वेदाङ्ग और शंकर मतकी शिक्षा प्राप्त की। वहांसे लौट कर, कुछकाल तक वे एक वृक्षके नीचे रामचन्द्रकी उपासना करते रहे। इसके बाद, लोकरुचिके अनुकूल एक धर्मकी स्थापनाका उन्होंने विचार किया। उन्होंने देखा, कि लोग तृष्णा और सांसारिक सुखोंके जालमें उलझे हुए हैं। सबके हृदयमें वैराग्य नहीं उत्पन्न किया जा सकता, न सब त्यागी बन मुक्तिको लाभ कर सकते हैं। धर्मके कठिन नियम सर्वसाधारणके लिये उपयुक्त नहीं। लोग धर्मके उन कठिन नियमोंको पालन नहीं करते। सांसारिक मनुष्योंके लिये ऐसे सहज नियम और ऐसा सहज धर्म चाहिये, जिसका वे अपने प्रवृत्तिमय जीवनके साथ साथ पालन कर सकें।

इन बातोंका विचार कर रामानुजने वेद और उपनिषदोंके सहारे विशिष्टाद्वैत नामक सम्प्रदाय स्थापित किया। उन्होंने न्यायदर्शनके अनुसार जीव और ईश्वरमें भेद दिखाया और अद्वैत वादके खण्डनकी चेष्टा की। उन्होंने भक्तिको प्रधान माना और विष्णुके राम तथा कृष्ण-इन दो अवतारोंकी पूजाका उपदेश दिया। उन्होंने बतलाया, कि ब्रह्म अद्वितीय है, परन्तु केवल नहीं। जीवात्मा और परमात्मामें भेद है। परमात्मा एक है, जिसका नाम व्यापक होनेके कारण विष्णु है। वही संसारको उत्पन्न करता है।

इस प्रकार कहते हुए रामानुजने शैवोंके विरुद्ध आन्दोलन मचाया। सर्व प्रथम उन्होंने मलुकेत नगरमें उपदेश दिया और कुछ शिष्य प्राप्त किये। कुछही दिनोंके बाद यह समाचार चोलनरेशने सुना। वह स्वयं शैव था और अपने राज्यमें शैव मतका प्रचार करना चाहता था। उसने वैष्णवोंको कष्ट देना आरम्भ किया। उसके अत्याचारसे संत्रस्त हो, रामानुज मैसूर चले गये। मैसूरका राजा जैन था। रामानुजने उसकी कन्याको व्याधि मुक्तकर उसे अपना शिष्य बना लिया। इसके बाद वे सुचारु रूपसे धर्म्म प्रचार करने लगे।

रामानुज अपने एक शिष्यको साथ ले जगन्नाथ, काशी और जयपुर प्रभृति स्थानोंमें गये और वहां वैष्णव धर्मका प्रचार कर मठोंकी स्थापना की। जयपुर-नरेश इनका उपदेश सुन अतीव प्रसन्न हुए। उन्होंने अनेक प्रकारसे इन्हें

सहायता पहुंचायी और जैनोंको परास्त किया। वहां एक मठ स्थापित कर, रामानुज बद्रीनारायण गये और वहांसे विचरण करते हुए अपने जन्म-स्थानको लौट गये।

पेनमुनूरमें पहुंच कर रामानुजने कई ग्रन्थोंकी रचना की। जब उनकी अवस्था पचास वर्षकी हुई तब उन्होंने संन्यास ग्रहण किया। इसके बाद उन्होंने भगवत् भजन और न्याय तथा वेदान्तके ग्रन्थोंका अनुशीलन करनेमें अपना जीवन व्यतीत किया। पेनमुनूरमेंही वे सद्गतिको प्राप्त हुए। उनके शिष्योंने वहांके मठमें उनकी प्रतिमा स्थापित की है, जो अभीतक विद्यमान है।

रामानुजके सिद्धान्त—ब्रह्म अद्वैत है, परन्तु केवल नहीं, विशिष्ट है। सभी कुछ ब्रह्ममय है, उस ब्रह्म मयताके भी दो भेद हैं। जीव और जड़। यह दोनों परस्पर और ब्रह्मसे विलक्षण हैं। प्राणी मात्रमें हरि (ब्रह्म) अन्तर्यामी रूपसे विद्यमान है, परन्तु चित्त (जीव) और अचित (जड़) यह दोनों उनसे भिन्न हैं। अर्थात् ब्रह्मके तीन अङ्ग हैं। हरि, चित और अचित। इन्हीं तीनोंके रूपमें विश्वमात्र ब्रह्ममय है। तीनों स्वयं अद्वैत हैं, परन्तु एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न हैं।

अद्वैत मतमें ब्रह्मको ज्ञान रूपी और जगतको मायामय किंवा अज्ञान रूपी गिना है। ज्ञानमयतामें अज्ञानका होना असम्भव मान, रामानुजने अद्वैतको विशिष्ट रूपमें स्वीकार किया है।

परमेश्वर पुरुष है और वह सगुण है। वही जगतका नियन्ता और मुक्ति दाता है। मनुष्यका जीव भी सगुण है और मुक्त होनेपर ईश्वरकी समानताको प्राप्त होता है। उसमें केवल इतनीही न्यूनता है, कि वह जगतको उत्पन्न नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त जीव और ब्रह्ममें और कोई अन्तर नहीं। मुक्त होनेपर जीव भी सगुण और ब्रह्म भी सगुण। दोनो समान है। सगुण जीव और सगुण ब्रह्म उनमें ऐक्य नहीं होता परन्तु जीवका यह समझना, कि मैं ब्रह्मसे भिन्न हूं:—अज्ञान है। इसेही अविद्या कहते हैं।

रामानुजने सानिध्य और सालोक्य प्रभृतिसे मोक्ष माना है। उन्होंने बतलाया है, कि जीव मुक्त होकर हरिके स्वर्गमें निरन्तर वास करता है। अवतारोंको उन्होंने ब्रह्मरूप गिना है। खास कर रामकी आराधनाका उपदेश दिया है और कृष्णको भी पूज्य माना है। उन्होंने बतलाया है, कि परम करुणाकर भक्त वत्सल परब्रह्म भक्तोंके उद्धारार्थ अवतार लेता है, अतः उसकी उपासना कर उसे प्रसन्न करना चाहिये।

उपासना पांच प्रकारकी है। (१) अभिगमन-देव स्थानमें मार्जनादिक करना (२) उपादान—गन्ध पुष्पादि पूजन सामग्री प्राप्त करना (३) इज्या—पूजन करना (४) स्वाध्याय-मन्त्र, जप और वैष्णव सूक्तादिका पाठ करना (५) योग—अन्तर्यामीका ध्यान करना। यह पांच प्रकारकी भक्ति है। योग होतेही भगवान अपने भक्तको मुक्त कर स्वधाममें स्थान देते हैं।

यह सम्प्रदाय भक्ति प्रधान है। परमात्माको नारायण और लक्ष्मीपति कहते हैं। राम और कृष्णको उसी नारायणके अवतार मान, उनकी मूर्तियां मन्दिरोंमें स्थापित करते हैं और नाना प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे उन्हें भूषित करते हैं। उनकी पूजा विधि भी मनोरञ्जक और सहज है। गन्ध, पुष्पादि विविध प्रकारके नैवेद्यों द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा की जाती है। इन सब बातोंका देख अनेक स्त्री पुरुषोंके चित्त उस ओर आकर्षित हुए और उन्होंने उसका स्वीकार किया।

रामानुजकी शिष्य परम्परामें आगे चलकर रामानन्द नामक एक आचार्य हुए। उन्होंने अपना एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय स्थापित किया। उसे आनन्द किंवा रामानन्दी सम्प्रदाय कहते हैं, इस मतके हजारों वैरागी भारतमें विद्यमान हैं। वैरागियोंमें भी संयोगी और निहंगी प्रभृति भेद हैं। महात्मा कबीर रामानन्दकेही शिष्य थे। उन्होंने अपना कबीर मत प्रचलित किया था। उसके भी अनेक भेद हो गये हैं। इन सबों का मूल रामानुजका विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय है, ऐसा कहनेमें कोई आपत्ति नहीं। गलताकी गद्दीपर एक रामचरण नामक साधु हुआ। उसने भी अपने नामका एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय स्थापित किया। उस सम्प्रदायसे भी निरञ्जन और रामस्नेही नामक दो उपसम्प्रदाय उत्पन्न हुए। इस प्रकार रामानुज सम्प्रदायका बड़ा प्रचार हुआ।

रामानुजने व्यास सूत्रपर भाष्य लिखा, जो उन्हींके नाम

से विख्यात है। उसके अतिरिक्त उन्होंने गीता भाष्य, न्याया-मृत, वेदान्त प्रदीप, तर्कभाष्य, वेदार्थ संग्रह, वेदान्त तत्वसार, श्रीतभाष्य, शतदूषणी, नारदीय पञ्चरात्र, त्रिंशतध्यान, चंडमारुती, विष्णु पूजा, विष्णुप्रबोधन, रङ्गनाथ स्तोत्र, त्रिगद्य, सिद्धान्त, विष्णु सहस्रनाम, विशिष्टाद्वैत प्रभृति अनेक छोटे बड़े ग्रन्थोंकी रचनाकर अपने सम्प्रदायके साहित्यमें वृद्धि की थी।

विष्णु प्रबोधनमें विष्णुकी स्तुति किंवा प्रातःस्मरण है। रङ्गनाथ स्तोत्रमें श्रीरङ्गपट्टनकी विष्णुमूर्त्तिका स्तवन है। त्रिगद्यमें तीन गद्योंका संग्रह है। प्रथम विष्णुलोक गद्यमें वैकुंठ लोककी रचना, पदार्थ और ऐश्वर्यका वर्णन है। द्वितीय श्रीरङ्गगद्यमें विष्णुकी स्तुति है। तृतीय शरणगद्यमें विष्णुकी प्रार्थना और उनकी शरण जानेके प्रकार वर्णित हैं। सिद्धान्त नामक ग्रन्थमें उनके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन है।
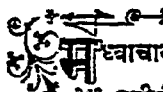
रामानुजकी चार गद्दियां हैं (१) ताटोद्रीमें, जिसे तिङ्गल कहते हैं (२) अहोवंलीमें, जिसे बड़गल कहते हैं (३) गलता और (४) रेवामें है। बड़गल और तिङ्गल गद्दीके आचार्योंमें परस्पर धार्म्मिक मत भेद है अतः झगड़ा हुआ करता है। इस सम्प्रदायमें गृहस्थियोंके अतिरिक्त साधु भी होते हैं। वे ब्रह्मचर्य पालते हैं और ललाटमें तिलक करते हैं। एक दूसरेको मिलनेपर वे परस्पर "दासोस्म्यहम्" कह कर नमस्कार करते हैं।

वैष्णव धर्म रामानुजके पूर्वसेही प्रचलित था, परन्तु

इस प्रकार उन्नतावस्थामें न था। रामानुज उस सम्प्रदायके प्रसिद्ध आचार्योंमें चतुर्थ आचार्य्य माने जाते हैं। वैष्णवों की विष्णु पूजाका प्रकार सर्वथा अहिंसामय है। विष्णु एक दयालु देव हैं और वे किसी प्राणीका बलिदान ग्रहण नहीं करते। उनकी पूजामें रक्त बहाना पाप है। समय समयपर अवतार ग्रहण कर वे अपने भक्त-जनोंका दुःख दूर करते हैं। उन्हें प्रसन्न रखनेके लिये उनकी उपासना करनी चाहिये। इस सम्प्रदायको श्री सम्प्रदाय भी कहते हैं।

श्रीमध्वाचार्य्य ।

मध्वाचार्य्यका जन्म चौदहवीं शताब्दिके अन्तमें उडीपी नामक ग्राममें हुआ था । वे वेदशास्त्र सम्पन्न महा विद्वान, बुद्धिमान और उदार ब्राह्मण थे । उनके माता पिताके नामोंका पता नहीं चलता, परन्तु उनके भाईका नाम सेनाचार्य्य था । वे दोनों पहले हरिहर, कम्मर और बुक्कराय नामक राजाओंके मन्त्री और धर्म्मोपदेशक थे ।

कुछ दिनोंके बाद मध्वाचार्य्य शंकर मतके संन्यासी हो गये । उस समय उन्होंने आनन्दतीर्थ नाम धारण किया था । फिर वे उससे पृथक हो गये । उन्हें रामनुजाचार्य्यका त्रिधातत्व युक्त श्री सम्प्रदाय ही पसन्द आया, न शंकराचा-र्य्यका अद्वैतवाद। उन्होंने सरल और लोक रुचिके अनुकूल द्विधातत्वयुक्त द्वैतमतका प्रतिपादन किया ।

मध्वाचार्य्यने स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र, इन दो तत्वोंको मान्य रक्खा । मुक्ति उन्होंने चार प्रकारसे बतलायी (१) सारूप्य (२) सालोक्य (३) सान्निध्य और (४) सार्ष्टि । अशेष सद्गुण युक्त श्रीविष्णुभगवान स्वतन्त्र और जीवादि अस्व-तन्त्र तत्व हैं । अस्वतन्त्र तत्व विष्णुकी इच्छाके अधीन रहते

हैं और उन्हींकी इच्छासे उनकी प्रवृत्ति होती है। परब्रह्म स्वरूप विष्णुकी सेवा और भक्ति द्वारा वैकुंठ प्राप्त करना यही मुक्ति है।

मध्वाचार्य्यने बतलाया, कि जगत्‌ नियन्ता विष्णु हैं। उसी मूल तत्वसे ब्रह्मादिक देव और यह सृष्टि उत्पन्न हुई है। विष्णु जिस प्रकार सृष्टिकी रक्षा करते हैं उसी प्रकार जीवों को दण्ड भी देते हैं। वे उसके कर्मानुसार जन्म मरणके बन्धनमें डालते हैं और कष्ट देते हैं। सब पदार्थोंका मूल कारण परमात्मा है। परमात्मा और जीवात्मा यह दोनों अनादि हैं। फिर भी उन दोनोंमें भिन्नता है। परमात्मा स्वतन्त्र और जीवात्मा परतन्त्र है।

इस प्रकार जीवात्मा, परमात्मामें भेद है और जीवात्मा परमात्माके अधीन किंवा आश्रयभूत है। जीवात्मा परमात्मासे पृथक होनेपर भी पृथक नहीं हो सकता। यह रहस्य ज्ञानी जनही समझ सकते हैं। जीव विष्णुका दास है। वह उनकी समताको कदापि नहीं पा सकता। इसीलिये विष्णु सर्वथा पूजनीय हैं। कैवल्यके समय समस्त जीव परमात्माके मूल चैतन्य स्वरूपमें लीन हो जाते हैं। उस समय जीवात्मा का चैतन्य परमात्माके महा चैतन्यके सन्मुख नहीं दिखाई देता। इस प्रकार जीवात्मा परमात्मा एक दूसरेसे भिन्न होने पर भी उस समय अभिन्न प्रतीत होते हैं।

यही मध्वाचार्य्यके सिद्धान्त और यही उनकी शिक्षा है।

यह सम्प्रदाय भी भक्ति प्रधान है। रामानुजके समानही उन्हों ने राम कृष्णादिको प्रतिमाओंका पूजन और उनकी उपासना करनेका आदेश दिया है। मध्वाचार्य्यने निरीश्वरवादी जैन धर्म्मका खण्डन कर अपने मतका सर्वत्र प्रचार किया। गुजरातका कुमारपाल नामक राजा जैन मतावलम्बी था। मध्वाचार्य उसे अपना शिष्य बनानेमें समर्थ हुए।

मध्वाचार्य्यके सम्प्रदायको पूर्णमज्ञ किंवा ब्रह्म सम्प्रदाय भी कहते हैं। उनकी गद्दी उडोपीमें है। वहां इस मतका प्राबल्य पाया जाता है। इस मतमें त्यागी किंवा साधु भी होते हैं। सभी गोपीचन्दनका तिलक और उसके बीचमें काली लकीर करते हैं। मध्वाचार्य्यने अनेक धार्म्मिक ग्रन्थोंपर टीकायें लिखी हैं। उनका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ नाममाला विस्तार है। मीमांसा शास्त्रका ज्ञान प्राप्त करनेवालोंके लिये वह अत्यन्त उपयोगी है।

वल्लभाचार्य ।

शुद्धाद्वैत किंवा पुष्टिमार्ग प्रवर्त्तक महात्मा वल्लभाचार्य्यका जन्म चम्पारण्यमें हुआ था। उनके पिताका नाम लक्ष्मण भट्ट और माताका नाम अलमगिर था। लक्ष्मण भट्ट यजुर्वेद तैत्तरीय शाखाके भरद्वाज गोत्री तैलंगी ब्राह्मण थे। वे दक्षिण भारतके कांकरव नामक ग्रामके निवासी थे। उनके ज्येष्ठ पुत्रका नाम कृष्ण भट्ट था। लक्ष्मण भट्ट कृष्ण-भक्त थे। जिस समय वे सकुटुम्ब तीर्थाटन करते हुए बनारस पहुंचे, उस समय वहांके हिन्दु मुसलमानोंमें झगड़ा हो गया। अतः लक्ष्मण भट्ट सपरिवार चम्पारण्य चले गये। वहीं संवत १५३५ के वैशाख मासमें उन्हें एक पुत्र रत्न प्राप्त हुआ। उन्होंने उसका नाम वल्लभ रक्खा। आगे चल कर वही वल्लभाचार्य्यके नामसे विख्यात हुआ।

वल्लभाचार्य्य बाल्यावस्थासेही बुद्धिमान, चञ्चल और उत्साही थे। पांचवे वर्ष उनका उपनयन संस्कार हुआ। इसके बाद वे नारायण भट्ट नामक एक विद्वान पण्डितके पास विद्योपार्जनार्थ भेज दिये गये। वहां उन्होंने वेद, न्याय और पुराणादि शास्त्रोंमें निपुणता प्राप्त की।

कुछ वर्षोंके बाद लक्ष्मण भट्टके एक और पुत्र हुआ। उन्होंने उसका नाम केशव रक्खा। इसके बाद जब वल्लभाचार्य्यकी अवस्था ग्यारह वर्षकी हुई तब उनका देहान्त हो गया। वल्लभाचार्य्य अब पितृ-हीन हो गये। उन्हें केवल अपनी माताका ही सहारा रह गया। परन्तु वे विचलित न हुए। उन्होंने अपने पिताके साथ तीर्थाटन करते हुए अनेक कठिनाइयोंका सामना किया था और कष्ट सहे थे। उन कष्टोंने उन्हें सहनशील बना दिया था। वह दृढ़ चित्त हो काशी गये। वहां उन्होंने विशेष रूपसे ब्रह्मज्ञान और रसायन शास्त्रका अध्ययन किया। इसके बाद वे अपनी माताके पास लौट आये और उनकी आज्ञा प्राप्त कर तीर्थाटन करने निकल पड़े।

जिस समय वल्लभाचार्य्य दक्षिण भारतमें भ्रमण कर रहे थे, उस समय दामोदरदास नामक एक युवक उनका शिष्य हो गया। वह किसी धनी मानी मनुष्यका पुत्र था। वल्लभाचार्य्य उसे अपने साथ ले विजय नगर गये। विजय-नगरमें कृष्ण रायलु नामक राजा राज करते थे। उन दिनों उनकी राज-सभामें स्मार्त्त और वैष्णव मतके आचार्य्योंमें शास्त्रार्थ हो रहा था। रामानुज, मध्वाचार्य्य, निम्बार्क और विष्णु स्वामी इन चारों द्वारा प्रचलित मत पंथोंके विद्वान एक ओर थे और स्मार्त्त मतके पण्डित एक ओर थे। मध्वाचार्य्यके व्यास तीर्थ नामक प्रसिद्ध शिष्य भी वहां उपस्थित थे और स्मार्त्त मतका खण्डन कर रहे थे। वल्लभाचार्यने वहां पहुंच

कर वैष्णव पण्डितोंका पक्ष ग्रहण किया और स्मार्तोंको परा-जित करनेमें बड़ी सहायता पहुंचायी। सम्प्रदाय प्रदीप नामक ग्रन्थ देखनेसे ज्ञात होता है, कि उसी समय वह वैष्णव मतके आचार्य नियुक्त हुए और वल्लभाचार्यके नामसे विख्यात हुए।

वैष्णव सम्प्रदाय भारतमें बहुत दिनोंसे प्रचलित था। इस मतके ज्ञानदेव, नामदेव, त्रिलोचन विल्व मङ्गल, रामानुज प्रभृति अनेक आचार्य हुए और उन्होंने उसका प्रचार किया। स्वामी शंक-राचार्यके बाद अद्वैत मतके किसी धर्म्माचार्यने उनके परमा-त्मासाकार मतका खण्डन कर उन्हें नष्ट भ्रष्ट कर दिया। नष्ट भ्रष्ट हो जाने पर भी वह निर्वापित न हुआ। अनेक विद्वान उत्पन्न हो होकर उसका प्रचार करते रहे। अन्तमें वल्लभाचार्य सर्वसम्मतिसे उसके आचार्य नियुक्त हुए। उन्होंने परम्परागत धर्म्म-सिद्धान्तोंमें अपने सिद्धान्त सम्मिलित कर पुष्टिमार्गकी स्थापनाकी और अपनी गद्दी गोकुलमें रखी। जन साधारण उन्हें गोस्वामी किंवा गोसांईके नामसे सम्बोधित करने लगे।

वल्लभाचार्यने रामानुज और मध्वाचार्य प्रभृति वैष्णव धर्म्माचार्योंके सिद्धान्तोंको उपेक्षा कर अद्वैत वादियोंका पक्ष ग्रहण किया। कहते हैं, कि वैष्णव मतके आदि प्रचारक-विष्णु स्वामीने ब्रह्मको अद्वैतही माना था। अन्तर केवल इतनाही था कि वे उसे साकार मानते थे। उन्होंने भी संन्यासको इष्ट गिना था। कहते हैं, कि इस प्रकार ब्रह्मको अद्वैत मान कर वल्लभाचार्यने कोई विरुद्धाचरण नहीं किया था बल्कि उन्होंने

विष्णुस्वामीकाही अनुकरण किया था। कुछ भी हो, यह सर्वथा निष्पन्न है, कि वल्लभाचार्यने रामानुज और मध्वाचार्यके सिद्धान्तोंको अमान्य कर ब्रह्मको अद्वितीय मान लिया और स्वतन्त्र रूपसे पुष्टि मार्गकी स्थापना की। जो शुद्धाद्वैतके नामसे भी विख्यात है।

वल्लभाचार्यने अपने सिद्धान्तोंको स्पष्ट करते हुए बतलाया है, कि यह सृष्टि दो प्रकारकी है। जीवात्मक और जड़ात्मक। इन्हीं दो तत्वोंके सम्मिश्रणसे सृष्टि उत्पन्न हुई है। हम जो कुछ देखते हैं वह चैतन्य, जड़ किंवा प्रकृति और उनदोनोंका सम्मिश्रण—इन तीनके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इन्हीं तीनोंके द्वारा संसारमें अनेक दृश्य दिखाई देते हैं और लोप हो जाते हैं। वस्तुओंका दिखाई देना और लोप हो जाना, यह केवल आविर्भाव और तिरोभाव है। कोई वस्तु वास्तवमें नष्ट नहीं हो जाती। ब्रह्माण्डमें जो परमाणु हैं उनका नाश नहीं होता। जिसे लोग नाश समझते हैं, वह रुपान्तर होना है। परमाणुमें रूपान्तर होनेसे वस्तुओंका नाश होता हुआ दिखाई देता है। वस्तुओंका एक रूपसे दूसरे रूपमें परिणत हो जाना यही तिरोभाव और आविर्भाव है।"

वल्लभाचार्यने इन बातोंको प्रमाणित करनेके लिये वेद और उपनिषद्‌के वाक्योंका अपने सिद्धान्तोंके अनुकूल अर्थ किया उनके सिद्धान्तको हम अद्वैत कह सकते हैं, परन्तु यह नहीं समझ पड़ता, कि उन्होंने विषयोत्तेजक पूजा, सेवा और दर्श-

नका प्रचार क्यों किया ? उनका ज्ञानमय सिद्धान्त समझ नेके लिये मनुष्यको विषय वासनासे मुक्त होना चाहिये, पर्य्याप्त विद्या और बुद्धि चाहिये, परन्तु इसके विपरीत कुवासनाओंमें जकड़ने वाला रसिक और मनोरञ्जक सम्प्रदाय उन्होंने क्यों प्रचलित किया ?

प्रतीत होता है, कि उन दिनों लोग धर्म्मके कठिन नियमोंका पालन करते करते ऊब उठे थे और अधिक धर्म्म बन्धनमें आबद्ध होनेको तय्यार न थे। वे धर्म्मके नाम पर कष्ट उठाना न चाहते थे। वे सांसारिक सुखोंमें तन्मय हो रहे थे और उन्हें तनिक भी त्याग करना पसन्द न था। शायद यही देख सुन कर विषयासक्त मनुष्योंको अपने धर्म्ममें दीक्षित करनेके लियेही, वल्लभाचार्य्यने विष्णुस्वामी, रामानुज, मध्वाचार्य्य और निम्बार्क इन आचार्य्यों द्वारा प्रचारित धर्म्मसे भी, अधिक सरल, अधिक रसिक और अधिक मनोरञ्जक सम्प्रदाय प्रचलित किया। उन्होंने राधाकृष्णकी क्रीड़ा और प्रेमपूर्ण भक्तिका उपदेश दे, विषयासक्त लोगोंको अपने धर्म्ममें दीक्षित कर लिया। उन विषय लोलुप मनुष्योंके लिये उनके धर्म्ममें किसी बातका अभाव न था। वे प्रसादके नाम पर मिष्टान्न उड़ा सकते थे और राधाकृष्णकी लीला देख कर अपना यथेच्छ मनोरञ्जन कर सकते थे।

यद्यपि विष्णुस्वामीने जिनकी शिष्य परम्परामें वल्लभाचार्य्य हुए थे—संन्यासकोही इष्ट गिना था, परन्तु वल्लभाचार्य्य द्वारा

प्रचलित धर्म्ममें वैराग्यके लिये कोई स्थान न रह गया। उनके धर्ममें वैराग्यके बदले विषय वासना और निवृत्तिके बदले प्रवृत्ति ही दिखाई देती है। उन्होंने बतलाया, कि शरीरको अनावश्यक कष्ट देनेसे मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। परमात्माकी खोज उपवास करते हुए वनोंमें नहीं की जा सकती, किन्तु इस जीवनके आनन्दोंको भोगते हुए इन आनन्दोंमेंही उसे प्राप्त करना चाहिये।

वल्लभाचार्य्यका यह उपदेश और उनके आचार, सुघड़ता तथा मन्दिरोंका ठाट देख कर धनवान और ऐश्वर्य्यशाली लोगोंका चित्त उस धर्म्मकी ओर आकर्षित हुआ। वल्लभाचार्य्यने राधाकृष्णमें ईश्वरत्व आरोपण कर उनकी भक्तिका उपदेश दिया। जो धर्म्मके नाम पर तनिक भी त्याग नहीं करना चाहते थे, उन्होंने सानन्द उसका स्वीकार किया। अनेक वणिक, वैश्य और शूद्रोंने जैन मतका परित्याग कर उसके सम्मुख शिर झुकाया। केवल ब्राह्मणही ऐसे निकले, जो इसमें सम्मिलित न हुए। धार्म्मिक विषयमें ब्राह्मणोंके समान दृढ़ और कोई नहीं देखा गया। न उन्हें अत्याचारियोंका अत्याचारही पथभ्रष्ट कर सका, न वे एेस धर्मोंकी सरलता और प्रलोभनोंको देखकरही विचलित हुए।

वल्लभाचार्य्य यद्यपि विषयोत्तेजक पुष्टिमार्गके उपदेशक थे, किन्तु वे स्वयं महाज्ञानी, निर्लेप और जितेन्द्रिय थे। सांसारिक सुखोंकी ओर उनको विशेष रुचि न थी। व्यासतीर्थने

उन्हें संन्यस्त ग्रहण कर धर्म्मप्रचार करनेको कहा, परन्तु वे उनकी बातसे सम्मत न हुए। राजा कृष्णरायलुके वे परम कृपापात्र थे। उन्होंने परिश्रम पूर्वक सर्वत्र धर्मप्रचार किया, परन्तु अपने जीवनकालमें केवल ८४ ही शिष्य प्राप्त कर सके जो चौरासी वैष्णवके नामसे प्रसिद्ध हैं। उनकी इस असफलतासे ज्ञात होता है, कि उनकी धारणा भ्रमपूर्ण थी और लोग उतना सरल और प्रवृत्तिमय धर्म ग्रहण करनेको तय्यार न थे, जितना उन्होंने समझ रक्खा था।

वल्लभाचार्य्य नव वर्ष पर्य्यन्त भ्रमण कर काशीमें रहने लगे थे। वहां उन्होंने लक्ष्मी नामक स्त्रीके साथ विवाह करलिया था। उसके उदरसे उन्हें गोपीनाथ और विट्ठलनाथ नामक दो पुत्र हुए थे। श्रीनाथजीकी मूर्त्ति पहले उन्होंने गोवर्द्धन पर्वतपर स्थापित की थी। वहांसे उसे उठाकर संवत् १५७६ में मेवाड़में स्थापित की। वहांसे वे पुनः काशी लौट आये और वहीं संवत् १५८७ में संन्यास ग्रहण कर ५२ वर्षकी अवस्थामें सद्गतिको प्राप्त हुए।

वल्लभाचार्य्यने व्यास सूत्रभाष्य, जैमिनिसूत्र भाष्य, तत्व दीप निबन्ध, पुष्टिप्रवाह मर्य्यादा, सिद्धान्त रहस्य और नवरत्न प्रभृति ग्रन्थोंकी रचना की थी।

वल्लभाचार्य्यकी गद्दीके लिये उनके पुत्रोंमें झगड़ा हो गया था। दोनों न्याय करानेके लिये दिल्ली गये थे और वहां मुगलसम्राटके पास कुछ दिन रहे थे। न्याय प्राप्त करनेके

पूर्वही गोपीनाथकी मृत्यु हो गयी अतः गद्दी विट्ठलनाथ ही को मिली। विट्ठलनाथ बुद्धिमान, विद्वान और चञ्चल थे। वे निरन्तर शिष्य प्राप्त करनेकीही चिन्तामें मग्न रहते थे। जिस प्रकार कोई अपने पुत्रका लालन पालन करता है और जिस प्रकार तरुण स्त्री पुरुष वस्त्रालङ्कार भूषित हो ऐश्वर्य्य भोग करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने बालकृष्ण और राधाकृष्णकी लीला दिखानी आरम्भ की। ऐसा करनेपर उन्हे २५२ शिष्य प्राप्त हुए जो दोसौ बावन वैष्णवके नामसे विख्यात हैं।

विट्ठलनाथने अपने सम्प्रदायकी उन्नतिके अनेक उपाय सोचे। उन्होंने अनेक प्रकारके मनोरञ्जक व्रत और उत्सवोंकी योजना की और लोगोंको प्रेम-भक्तिकी शिक्षा दी। इतनाही नहीं, उन्होंने रसिक और विषयी मनुष्योंको प्रिय प्रतीत हो, ऐसे भजनोंकी रचना करायी और मन्दिरोंमें गायन वादनकी व्यवस्था की। उन्होंने काशी मथुरा, कच्छ, द्वारिका, मारवाड़, मेवाड़, पंढरपुर और बम्बई प्रभृति प्रदेशोंमें भ्रमण भी किया। उनका यह उद्योग निष्फल न हुआ। अनेकानेक लोगोंने उनका मत स्वीकार किया और उन्हें—उनके आदेशानुसार ईश्वर मानने लगे।

विट्ठलनाथके रुक्मिणी और पद्मावती नामक दो स्त्रियां थी। उनके गर्भसे उन्हें शोभा, कमला, यमुना, और देवकी नामक चार कन्यायें तथा गिरिधर, गोविन्दराय, बालकृष्ण, गोकुलनाथ, घनश्याम, रघुनाथ और यदुनाथ यह सात पुत्र उत्पन्न हुए। संवत १६४७ के माह मासमें उनका भी शरीरान्त हो

गया। उनके पुत्रोंने पृथक पृथक स्थानोंमें सात गद्दियां स्थापित कीं और अपना अपना काम स्वतन्त्र रूपसे चलाने लगे। कोई बालकृष्ण कोई राधाकृष्ण और कोई कृष्णके अन्यान्य रूपोंकी प्रतिमा स्थापितकर उसकी सेवा पूजाका आदेश देने लगे। यही उन सबोंमें अन्तर है।

वैष्णवोंका मुख्य सिद्धान्त सगुण भक्ति है। सगुणका अर्थ उन्होंने मनमाना और अपने सम्प्रदायके अनुकूल किया है। वे बतलाते हैं, कि ईश्वर सगुण अर्थात् मनुष्याकार पुरुषके समान है। वह गोलोक किंवा वैकुण्ठमें निवास करता है। राधा और लक्ष्मी प्रभृति उसकी स्त्रियां हैं। पत्नी सह वे वहां नाना प्रकारके सुख भोग किया करते हैं। मनुष्योंके कल्याण किंवा किसी महत्वपूर्ण कार्य्यके लिये वे पृथ्वीपर अवतार लेते हैं और जबतक कार्य्य पूर्ण नहीं होता तब तक नाना प्रकारके सुख भोग करते हुए अपना समय व्यतीत करते हैं।

वे कहते हैं, कि ईश्वर जो सुखभोग करता है वह दोष रहित और निर्गुण है। जिस प्रकार अग्नि मुखमें डाले हुए [illegible] उसे भ्रष्ट नहीं कर सकते उसी प्रकार परमात्मा निर्लेप और कर्म्मादिसे वह पतित नहीं होता। अपनी इन बातों को सिद्ध करनेके लिये वे भागवत और विष्णुपुराणादिको प्रमाण स्वरूप उपस्थित करते हैं।

यद्यपि वैष्णव विष्णुको परब्रह्म मानते हैं और अवतारोंको भी वैसाही बतलाते हैं। परन्तु प्रधानतया वे कृष्णावता-

रको ही परब्रह्मके रूपमें पूजते हैं और उसीको मर्य्यादा पुरुषोत्तम कहते हैं। गो लोकही स्वर्ग है। यहां श्रीकृष्ण सखियों सहित निवास करते हैं। सखी भावको प्राप्त कर भगवानके निकट रहना यही मोक्ष है। इन बातोंको प्रमाणित करनेके लिये भी वे भागवत और विष्णुपुराणादिके प्रमाण उपस्थित करते हैं। श्रीकृष्णकी बाललीलाका अनुकरण करना ही उनका धर्म है। प्रेम लक्षणा भक्तिकोही वे मोक्ष मानते हैं।

इस सम्प्रदायका गुजरातमें विशेष प्रचार है। वहांके धनी मानी और साधारण वणिक वैश्य इसमें सम्मिलित हैं। वे संन्यासको नहीं मानते। आचार्य्य और शिष्य सभी गृहस्थ होते हैं और सांसारिक सुख भोग करते हैं। तिलक छाप और उर्ध्व पुण्ड्र करते हैं। गलेमें तुलसीकी कण्ठी धारण करते हैं। गुरुको ईश्वर मानते हैं। और उन्हींकी सेवाको मोक्ष प्राप्तिका साधन समझते हैं। परस्पर एक दूसरेको जय श्रीकृष्ण, जयगोपाल इत्यादि कह कर नमस्कार करते हैं।

आचार्य्य अपने शिष्योंको "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" किंवा "श्रीकृष्ण शरणं मम" इस अष्टाक्षरी मन्त्रका उपदेश देते है। शिष्यगण उसका स्मरण करते हुए प्रति दिन माला फेरते हैं।

वैष्णव मात्र अपना सर्वस्व श्रीकृष्णको अर्पण कर ब्रह्म-सम्बन्ध करते हैं। उनकी यह धार्मिक क्रिया आचार्य्य द्वारा सम्पादित होती है। प्रत्येक वैष्णव अपने पुत्रको ग्यारहवें वर्ष

और पुत्रीको विवाहके समय गुरुके पास ले जाता है और समर्पण कार्य्य समाप्त करता है। उस प्रसङ्ग पर धर्म्माचार्य्य धन ग्रहण कर मन्त्रोपदेश देते हैं। उस दिनसे वह मनुष्य कण्ठी धारण करनेका अधिकारी हो जाता है और नियमानुसार प्रतिदिन एकान्तमें बैठ गुरु-दत्त महामन्त्रका जप करता है।

वैष्णवोंमें भी मर्य्यादा प्रभृति भेद हैं। मन्दिरोंमें विषयोत्तेजक उत्सव मना कर नीतिका खून किया जाता है। श्रीकृष्णकी बाल लीला और राधाकृष्णकी यौवन क्रीड़ाका अनुकरण करनेमेंही इस मतवाले मोक्ष मानते हैं।

मनुष्योंको सदाचारी बनाना और विषय वासनाओंसे मुक्त कर मोक्षमार्ग दिखलाना—यही धर्मका उद्देश होना चाहिये। वल्लभ सम्प्रदाय न इस उद्देश्यकी पूर्त्ति कर सका है न कर सकता है। उन्होंने श्रीकृष्णके जीवनको एक विषयासक्त पुरुषके जीवनके समान मान कर चीरहरण और रासविहारकी और सोलह सहस्र रानियोंके पति होनेकी कथाको धर्म्मका आदर्श माना है। वास्तवमें उन्होंने जितना अन्याय श्रीकृष्णके साथ किया है उतना और किसीने किसी महापुरुषके साथ नहीं किया। उन्होंने उनके जीवनके साथ अनेक ऐसी अवास्तविक घटनायें सम्बद्ध बतलाई हैं, जिनका श्रवण, मनन और पठन पाठन विषयानन्द और भोग प्रवृत्तिको बढ़ाने वाला है। पाठक स्वयं विचार करें कि ऐसी दशामें वे मोक्षके अधिकारी कहां तक हो सकते हैं।

चैतन्य स्वामी।

महात्मा चैतन्यका जन्म वङ्गप्र देशके नवद्वीप नामक ग्राममें हुआ था। उनके पिताका नाम जगन्नाथ मिश्र और माताका नाम शची था। वे जातिके ब्राह्मण थे। पहले श्रीहट्ट नामक ग्राममें रहते थे, बादको गङ्गातटपर रहनेकी इच्छासे नवद्वीप चले गये थे।

चैतन्य स्वामीका दूसरा नाम निमाई था। उनका वर्ण गौर था अतः लोग गौराङ्ग भी कहते थे। वे असाधारण बुद्धिमान थे। उन्होंने पण्डित वासुदेव सार्वभौमके निकट विद्याभ्यास किया था। कुछही दिनोंके उद्योगसे न्याय शास्त्र में उन्हें विलक्षण निपुणता प्राप्त हो गयी थी। वासुदेव उस शास्त्रके प्रसिद्ध अध्यापक थे। मिथिलासे आकर उन्होंने नवद्वीपके समीपवर्ती विद्यानगरमें विद्यालय स्थापित किया था।

नवद्वीप बङ्ग देशका एक प्रसिद्ध स्थान है। जिस समय मुसलमानोंने यहां पदार्पण किया, उस समय नवद्वीप बङ्ग देशकी राजधानी था। इसके अतिरिक्त उन दिनों वह एक शिक्षा—केन्द्र भी था। समूचे भारतके विद्यार्थी वहां विद्या-

ध्ययन करनेके लिये उपस्थित रहते थे। वहां जो पण्डित हो गये हैं, उनके कारण आज भी वङ्गाल आदरकी दृष्टिसे देखा जाता है। स्मृति शास्त्रके रघुनन्दन नामक विख्यात अध्यापक वहीं हुए थे। अब भी वङ्गदेशमें अनेक क्रिया-कर्म उन्हींके व्यवस्थानुसार किये जाते हैं। रघुनन्दनके समानही एक और विद्वान थे। उनका नाम था रघुनाथ। रघुनाथका पाण्डित्य देखकर काशीके धुरन्धर पण्डित भी विस्मय चकित हो जाते थे। वे एक श्रद्धेय और पूजनीय विद्वान माने जाते थे। वे, वासुदेव सार्वभौम और चैतन्य प्रभृतिके समकालीन व्यक्ति थे।

चैतन्यका बाल्यकाल इसी प्रसिद्ध स्थानमें व्यतीत हुआ। वे एक मेधावी बालक थे। छोटी अवस्थामें ही पढ़ना लिखना सीखकर उन्होंने अपनी अद्भुत शक्तिका परिचय दिया था। वे सदा एकाग्र चित्तसे भागवतका पाठ किया करते थे। उसकी बातें उनके अन्तरपटपर इस प्रकार अङ्कित हो गयी थीं, कि वे उन्हें आजन्म भूल न सके।

बड़े होनेपर चैतन्यका लक्ष्मी नामकी एक सुन्दर कन्याके साथ विवाह हुआ, परन्तु कुछही दिनोंके बाद उसे सर्पने डस लिया अतः उसकी मृत्यु हो गयी। पुनः विष्णुप्रिया नामक कन्याके साथ विवाह हुआ, और वे गार्हस्थ्य धर्मका पालन करनेको बाध्य हुए। उनके पिताका देहान्त हो गया। ज्येष्ठ बन्धु विश्वरूपने संन्यास ग्रहणकर लिया

था, अतः माताके पालन पोषणका भार भी उन्हींके शिर आ पड़ा था।

गृहस्थाश्रमी होनेपर भी चैतन्य कृष्णकी उपासनामें निरन्तर लीन रहते थे। उनके श्रीराम नामक एक मित्रके यहां रात्रिके समय नियमित रूपसे हरिकीर्त्तन होता था। चैतन्य प्रतिदिन वहां उपस्थित हो उसमें भाग लेते थे। ऐसा करते करते कुछही दिनोंके बाद उन्हे वैराग्य आ गया और वे संन्यासी हो धर्म्मप्रचार करने लगे।

महात्मा चैतन्य जातिभेदको न मानते थे। उन्होंने सब लोगोंको एक समान धर्म्मोपदेश देना आरम्भ किया। सर्व प्रथम शमकाला नामक स्थानके कितनेही मुसलमान उनके धर्म्ममें दीक्षित हुए। इसके बाद अन्य वर्णोंके मनुष्योंने भी उनका उपदेश सुना और उनके शिष्य हुए।

शान्तिपुरमें अद्वैत नामक उनका एक शिष्य था। उसके यहां पहुंचनेपर उनको माताने उनसे साक्षात् किया। महात्मा चैतन्य परम मातृभक्त थे। माताको वे देवताके समानही पूजनीया समझते थे। वृद्धा शची अपने प्रिय पुत्रको संन्यासीकी दशामें देख क्रन्दन करने लगीं। उन्होंने कहा—"पुत्र! संन्यासी होकर अपने भाईकी तरह दुःखिनी माताको भुला न देना।"

माताके करुणापूर्ण शब्दोंको सुन चैतन्यकी आंखोंमें जल भर आया। उन्होंने कहा—"मातेश्वरि! मैं आजन्म आपके

ऋणसे मुक्त नहीं हो सकता। यह शरीर आपहीका है। आप मुझे जो आज्ञा देंगी, उसे मैं सादर शिरोधार्य्य करूंगा। संन्यस्त ग्रहण कर मैंने संसारके समस्त पदार्थोंको छोड़ दिया है, परन्तु आप विश्वास रक्खें, आपको छोड़ना मेरे लिये सर्वथा असम्भव है।"

माताकी आज्ञा प्राप्त कर चैतन्य श्रीक्षेत्र गये। वहां जगन्नाथकी आराधना करनेमें उन्होंने अपना कुछ समय व्यतीत किया। वहीं सार्वभौम नामक एक विद्वान पुरुषसे उनकी भेंट हुई। गीता शास्त्रपर उनसे तर्क कर चैतन्यने अपनी बुद्धिमत्ता का उन्हें परिचय दिया।

महात्मा चैतन्यने अपने शिष्योंको हरिकीर्त्तन करनेका उपदेश दिया था। एक दिन उनके आदेशानुसार नवद्वीपमें नगर कीर्त्तन हो रहा था। लोग मृदङ्ग, करताल और झांझ बजा बजाकर नगरमें ईश्वर भजन कर रहे थे। वहांका काजी यह समाचार सुनकर क्रुद्ध हो उठा। उसके अनुचरोंने उपस्थित हो उनके कार्य्यमें बाधा दी। उन्होंने मृदङ्ग तोड़ फोड़ दिये, झांझ छीन लिये और लोगोंको अपमानित कर छोड़ दिया।

काजीके इस असद् व्यवहारसे असन्तुष्ट एवं दुःखित हो लोग चैतन्यके पास गये और उनसे सारा हाल कहा। चैतन्य ईश्वर भक्त थे। ईश्वरकी शक्ति पर उन्हें पूर्णश्रद्धा और विश्वास था। संसारमें जो दुर्बल हृदय लेकर कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण होते हैं, उन्हें विरुद्ध शक्तियोंके सम्मुख

नत मस्तक होना पड़ता है। महात्मा चैतन्य ऐसे न थे। उनका हृदय दुर्बल न था। उनका ईश्वर पर अटल विश्वास था। उनकी नस नसमें धर्म्म बल भरा हुआ था। वे उत्साहित हो उठे। उन्होंने अपने शिष्योंको पुनः उसी प्रकार, उसी सज-धजके साथ, दूने उत्साहसे नगरकीर्त्तन करनेका आदेश दिया।

शिष्योंने गुरुदेवकी आज्ञा शिरोधार्य की। गाते बजाते उसी प्रकार दलके दल काजीके निवास स्थानकी ओर अग्रसर हुए। काजी साहबका अधिकार वर्तमान समयके डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेटके अधिकारोंसे किसी प्रकार कम न था। फिर भी, हरिभक्तोंकी यह चेष्टा देख वे कांप उठे। जब उन्हें विश्वास हो गया कि यह दल मेरे घरकोही ओर आ रहा है। तब उन्होंने पलायन करनाही श्रेयस्कर समझा।

हरिभक्त काजीसाहबकी शक्ति और अधिकारोंको जानते हुए भी विचलित न हुए। वे बराबर हरिकीर्त्तन करते हुए बढ़ते चले गये। जब काजीसाहबके निवासस्थानमें पहुंचे तब उन्होंने उसे जन शून्य पाया। कुछ लोगोंके हृदयमें प्रतिहिंसा-वृत्ति जागरित हो उठी। वे काजीसाहबका उद्यान नष्ट भ्रष्ट करने लगे। चैतन्यका क्षमाशील हृदय यह देख कर दुःखित हो उठा। उन्होंने इस व्यवहारको निन्दा और उसके करनेवालोंका तिरस्कार किया। इसके बाद उन्होंने काजीसाहबको बुला भेजा। काजीसाहब-इस बातका विश्वास दिलाने पर, कि उनके साथ किसी प्रकारका अनुचित व्यवहार न किया जायगा

उपस्थित हुए। महात्मा चैतन्यने नम्रता पूर्वक उनके साथ प्रेमालाप किया। काजीसाहब उनके व्यवहारसे प्रसन्न हो उठे। उन्होने वचन दिया, कि अब मैं वैष्णवोंपर कभी अत्याचार न करूंगा। सत्याग्रहका कैसा उदाहरण है! आत्म बलकी कैसी विजय है! ईश्वर पर विश्वास रख, क्षमाकी ढाल और शान्तिकी तलवार ले, इसी प्रकार सबलोगोंको पशुबल चूर्ण करना चाहिये।

महात्मा चैतन्यने मृत्युका भय छोड़ दिया था। परमात्मा पर उनका अटल विश्वास था। राज दण्डके भयसे धर्म्मको जलाञ्जलि दे चुपचाप घरमें बैठ रहना उनके लिये असम्भव था। धर्मको वह प्राणसे अधिक समझते थे। धर्मही उनका प्राण था। वास्तवमें धर्म्म बलके सम्मुख संसारकी समस्त शक्तियां व्यर्थ हैं। जिसके हृदयमें धर्म्म बल होगा, उसे सर्वत्र विजय प्राप्त होगी। धर्म्मवीर मृत्यु-भयसे पथभ्रष्ट नहीं होता। वह ध्रुवकी भाँति चित्तको स्थिर कर परमात्माके ध्यानमें लीन रहता है। आवश्यकता पड़ने पर मन्त्र-मुग्ध सर्पकी भाँति वह कर्त्तव्य पथकी ओर अग्रसर होता है। वह कभी अवसर नहीं चूकता। समय समय पर वह अपनी धर्म्मपरायणताका परिचय दे, संसारको चकित कर देता है। ऐसा साहस, ऐसी धर्म्म परायणता और ऐसा आत्मबल सर्वदा और सर्वथा सराहनीय गिना जाता है।

जगाई और माधाई नामक दो ब्राह्मण पुत्र बाल्यावस्थासेही

मदिरा और मांसका सेवन करने लग गये थे। महात्मा चैतन्यने उनके कुकर्मोंकी कथा सुन उन्हें दुर्व्यसनोंसे मुक्त करनेका विचार किया। उन्होंने अपने नित्यानन्द और हरि-दास नामक शिष्योंद्वारा उन्हें उपदेश दिला कर हरिभक्त बना दिया। इसीप्रकार अनेक धर्म भ्रष्ट, पतित और अज्ञान मनु-ष्योंको कर्त्तव्य परायण बनाया।

श्रीक्षेत्रमें कुछकाल व्यतीत कर इन्होंने दक्षिण भारतकी यात्रा करनेका विचार किया। श्रीरङ्ग पट्टण और दण्डकारण्य होते हुए वह ठेठ रामेश्वर पर्यन्त गये। मार्गमें इन्होंने अनेका-नेक स्थान देखे। अनेक पण्डितोंसे उनकी भेट हुई। सभी उनकी उदारता, सरलता, और पाण्डित्य पर मुग्ध हो गये। सर्व साधारणकी ही यह दशा हुई हो; सो नहीं। धनी मानी और राजे महाराजे भी उन्हें देख प्रसन्न हो उठे। वे किसी राज दरबारमें न जाते थे। फिर भी जहां वे गये वहीं उनका सम्मान हुआ और लोगोंने अपना प्रेम प्रकट किया।

महात्मा चैतन्य प्रतिज्ञानुसार आजन्म अपनी माताको न भूले। एकबार श्रीनिवास नामक मनुष्य नवद्वीप जा रहा था। चैतन्यने उसे जगन्नाथका कुछ प्रसाद और एक वस्त्र दे कहा—"भाई श्रीनिवास! इसे मेरी माताको दे देना। मेरी ओरसे क्षमा प्रार्थना भी करना। कहना चैतन्य संन्यासी हो गया है अतः घरमें रहकर आपकी सेवा नहीं कर सकता, किन्तु इसके लिये वह दुःखी है। श्रीनिवास! वास्तवमें

दुःखी हूं। मैंने मूर्ख सन्तानोंकी भांति यह कार्य्य किया है। मातासे कहना, वे मेरा यह अपराध क्षमा करें। मूर्ख सर्वथा क्षमाके अधिकारी होते हैं।"

चैतन्य स्वामीका हृदय कितना सरल था और वे कैसे मातृभक्त थे, यह उनकी इन बातोंसे जाना जा सकता है।

दक्षिणसे लौटते समय कटकके पास उन्होंने एक मुसलमान जमीन्दारको अपना शिष्य बनाया। वहांसे बलभद्र भट्टाचार्य्य नामक हरिभक्तको साथ ले वह वृन्दावनके लिये प्रस्थित हुए। काशीमें अनेक मनुष्य उनके दर्शनार्थ उपस्थित थे। वहां विद्वान ब्राह्मणोंसे कुछ धर्म्म चर्चाकर वे प्रयाग पहुंचे। प्रयागमें रूप नामक पण्डितसे भेंट हुई। वहां उन्होंने पांच पठानोंको अपने धर्ममें दीक्षित किया। उनका यह कार्य्य देख उत्तर भारतके लोग उन्हें "पठान गोसाईं" के नाम से पुकारने लगे।

महात्मा चैतन्यने अपना अधिकांश जीवन धर्म्म प्रचार करते हुए जगन्नाथपुरीमें व्यतीत किया। वे निरन्तर हरि कीर्तन और ईश्वरोपासनामें लीन रहते थे। वे अपने कार्यमें इस प्रकार तन्मय हो जाते थे, कि उन्हे सांसारिक वस्तुओं का कुछ भी ज्ञान न रहता था। जीवनके अन्तिम समयमें उनकी यह दशा चरम सीमाको पहुंच गयी थी। वे प्रायः उन्मत्तसे दिखाई देते थे। उनका ब्रह्मज्ञान बिलकुल ही लोप हो गया था। ऐसीही दशामें एक दिन उन्होंने एक अद्भुत

दृश्य देखा। रात्रिका समय था। आकाशमें निर्मल चन्द्रमा विराज रहा था। उसकी उज्ज्वल किरणें समुद्रकी सुन्दर तरङ्गोंपर अठखेलियां कर रहीं थीं। महात्मा चैतन्यकी तबियत यह देखकर मस्त हो गयी। उन्हें प्रतीत हुआ, मानों यमुनाके नीले जलमें श्रीकृष्णचन्द्र जलक्रीड़ा कर रहे हैं। हृदयमें यह विचार आतेही वह उस अगाध जलराशिमें कूद पड़े। बस यहीं उनके जीवनका अन्त हुआ। मानो साक्षात् वे परब्रह्मकी ज्योतिमें लीन हो गये। इस समय उनकी अवस्था ८० वर्षकी थी।

महात्मा चैतन्य लोगोंको बतलाते थे, कि सब लोग ईश्वर भक्ति कर सकते हैं। भक्ति द्वारा समस्त जातियां एक समान शुद्ध हो सकती हैं। असीम विश्वास और अनवरत श्रद्धा यही उनके प्रचारका मूलमन्त्र था। ध्यानको वे बुद्धिका साधन बतलाते थे। आचार्य्यकी आज्ञाका पालन उनके सम्प्रदायका एक मुख्य चिन्ह है, परन्तु उन्होंने अपने शिष्योंको ताकीद की है, कि वे अपने गुरुओंको पिताके समान सम्मानित करें, न कि उनकी पूजा करें, अन्यान्य धर्माचारियोंकी भांति उनके प्रचारका उद्देश्य भी आत्माको मुक्ति दिलाना था। वे मुक्तिका अर्थ करते थे निर्वाण। अर्थात शरीरके कलङ्क और दोषोंसे मुक्त होना, न कि आत्माका अस्तित्व मिटाना।

चैतन्यके अनुयायी प्रत्येक जातिमें पाये जाते हैं, परन्तु वे चैतन्यके आरम्भिक शिष्योंकी सन्तानका, जो गोसाईं नामसे

परिचित हैं—आधिपत्य स्वीकार करते हैं। इस सम्प्रदायमें विवाहित और अविवाहित एक समान सम्मिलित हो सकते हैं इसमें अविवाहित मनुष्य भी सम्मिलित हैं, जो अपने आपको ब्रह्मचारी नामसे पुकारते हैं और घूमनेवाले साधु भी। लेकिन उनके धर्म्म गुरु प्रायः विवाहित गुसाईं होते हैं। वे अपनी स्त्री और बच्चों सहित कृष्णमन्दिरके आस पास छोटे छोटे घरोंमें रहा करते है। महात्मा चैतन्यकी पूजा उड़ीसामें एक गार्हस्थ्य पूजाके समान हो गयी है। धनी लोग प्रतिदिन पूजा करते समय अपने घरोंमें बने हुए छोटे छोटे मन्दिरोंमें उनकी अर्चना करते हैं।

महात्मा चैतन्यको उनके शिष्य विष्णुका अवतार मानते हैं और इसी श्रद्धा और भक्तिके साथ उनकी पूजा करते हैं। उनकी मृत्युके बाद उनके शिष्योंने एक उपसम्प्रदाय प्रचलित किया। उनका सिद्धान्त है कि धर्म्म विषयमें स्त्रियां भी स्वतन्त्र हैं। उनके आश्रमोंमें स्त्री और पुरुष एक साथ ब्रह्मचर्य्य पूर्वक धार्म्मिक जीवन व्यतीत करते हैं। स्त्रियां एक छोटे से गुच्छेको छोड़कर, शिरके शेष बालोंको मुड़वा देती हैं। स्त्री पुरुष दोनो मिलकर विष्णु और चैतन्यकी प्रशंसाके गीत गाते हैं और नृत्य करते है। इस सम्प्रदायसे कोई लाभ हुआ हो.तो वह यह है, कि उन स्त्री प्रचारिकाओं द्वारा बङ्गालके नारी समूहमें कुछ कुछ शिक्षाका प्रचार होता रहा।

महात्मा चैतन्यने भारतके भिन्न भिन्न भागोंमें भ्रमणकर

लोगोंको धार्म्मिक शिक्षा दी और सदाचारी बनाया। वे सर्वदा दुःख पीडितोंका कष्ट दूर करनेकी चेष्टामें लगे रहते थे। रोगमें औषधि और शोकमें सान्त्वना देकर लोगोंको वे शान्त किया करते थे। उन्होंने सब प्रकारके इन्द्रिय सुखोंको जलाञ्जलि दे दी थी। अच्छे वस्त्र और अच्छे अन्नके लिये उन्होंने कभी याचना नहीं की थी। वे एक साधारण संन्यासी और भिक्षुककी भांति दीनतापूर्ण रूपसे चारोंओर विचरण किया करते थे। धर्म्म प्रचार और परोपकार यही उनके प्रधान कर्म्म थे। लोगोंको वे जगन्नाथके नामसे विष्णुपूजाका उपदेश दिया करते थे, अतः उनके सम्प्रदायकी गणना भी वैष्णव सम्प्रदायोंमें ही की जाती है। उनकी परोपकार वृत्ति और धर्म्मपरायणताके कारण भारतवासी उन्हें चिरकाल तक स्मरण करते रहेंगे।

नानकशाह ।

सिक्ख सम्प्रदायके संस्थापक, सिक्खोंके आदिगुरु बाबा नानकका जन्म लाहोरके दश मील दक्षिणवर्त्ती काना कुचान नामक ग्राममें हुआ था। उनके पिताका नाम कालू-बेदी था। वे जातिके क्षत्रिय (खत्री) थे। क्षत्रिय होने पर भी वे वेदी क्यों कहलाये, इसके विषयमें एक दन्तकथा प्रचलित है।

कहते हैं, कि रामचन्द्रके पुत्र कुशने कुशावती और लवने लवपुर—यह दो नगर बसाये थे। वहां उन दोनोंके वंशज राज्य करते थे। लवपुरको इस समय लाहोर कहते हैं। कुछ दिनोंके बाद उन दोनोंमें वैमनस्य हो गया। कुशावतीके शासकने लाहो-रपर आक्रमण कर उसे हस्तगत कर लिया और वहांके लव-कुलोत्पन्न शासकको भागकर अपना प्राण बचाना पड़ा।

वह भाग कर अमृत नामक राजाका आश्रय-प्रार्थी हुआ। अमृतने शरणागत समझ, उसे आश्रय दिया और उसके उत्तम गुणोंको देख अपनी कन्याका विवाह भी उसीके साथ कर दिया। कुछ दिनोंके बाद उस कन्याके सदीराव नामक पुत्र हुआ। राजा अमृतके और सन्तान न थी, अतः वही उनके विस्तृत राज्यका अधिकारी हुआ।

सदीराव बुद्धिमान और बहादुर था। उसने सिंहासनारूढ़ होने पर अनेक राजाओंको पराजित कर अपने राज्यका विस्तार बढ़ाया। बादको उसके मन्त्रियोंने उसे बतलाया, कि आप विस्तृत राज्यके अधीश्वर होनेपर भी अपने पूर्वजोंका राज्य हस्तगत नहीं कर सके। आपके पिता पञ्जाबमें राज करते थे। लाहोर उनकी राजधानी थी। अपने भाई द्वारा पराजित होनेके कारण उन्हें पलायन-परायण होना पड़ा था।

सदीरावने यह वृत्तान्त सुन, लाहोर पर प्रबल सैन्य ले आक्रमण किया। कुशवंशी कुलपुत्र उसका वेग सहन न कर सका। उसने राज्य भ्रष्ट हो संन्यास धारण किया और काशी पहुंच उसे पुण्य भूमि समझ वहीं कालक्षेप करने लगा।

काशीमें रहते हुए उसने वेदोंका अध्ययन करना आरम्भ किया। एक दिन उसने पढ़ा—"अत्याचार करना महापाप है। अत्याचारी मनुष्य दयाका अधिकारी नहीं।"

इन शब्दोंने कुलपुत्रको मर्माहत कर दिया। उसने अपने भाई पर अत्याचार कर उसका राज्य छीन लिया था। उसके हृदयमें तदर्थ बड़ा परिताप हुआ। अन्तमें, सदीरावके निकट उसने क्षमाप्रार्थना करना स्थिर किया। वह काशीसे लाहोर पहुंचा। वहां सदीरावको वह वेदवाक्य सुना कर उसने पश्चाताप प्रकट किया और क्षमा प्रार्थना की। सदीराव अपने पितृव्यके नम्र वचन सुन प्रसन्न हो उठा। उसने उसके समस्त अपराध क्षमा कर दिये। साथही, उसने उसका राज्य भी

लौटा दिया। कुल पुत्र पुनः सिंहासनारूढ़ हो, अपने राज्यका शासन करने लगा। उसने वेदोंका अध्ययन किया अतः वह और उसके वंशज वेदी कहलाये। नानकके पिता भी उसी वंशके थे, अतः क्षत्रिय होने पर भी वेदी कहलाते थे।

कालू वेदी तलवण्डी नामक ग्राममें निवास करते थे। काना कुचानमें उनकी ससुराल थी। वहीं नानकका जन्म हुआ था। कालूवेदी निर्द्धन परन्तु प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उनके पिताका नाम शिवराम और माताका नाम बनाशी था। नानकके अतिरिक्त उनके एक कन्या भी थी। उसका नाम था नानकी। कालूने सुलतानपुर निवासी जयराम नामक एक व्यवसायी मनुष्यके साथ उसका विवाह कर दिया था।

नानकके विषयमें भी अन्यान्य धर्माचार्य्योंकी भांति अलौकिक और आश्चर्यप्रद कथायें प्रचलित हैं। उनका जन्मस्थान इस समय नानकानाके नामसे विख्यात है। वहां एक तालाव और मन्दिर बना हुआ है। जहां वे बालकोंके साथ खेलते थे, वह स्थान बालक विद्याके नामसे प्रसिद्ध है। वहीं एक स्थान कियोरा साहबके नामसे पुकारा जाता है। वहां भी एक भव्य मन्दिर बना हुआ है। कहते हैं, कि वहां उन दिनो खेत था नानक एक दिन गायें चरा रहे थे। उन्हें निद्रा आ गयी अतः गायें खेतमें चली गयीं और उन्होंने फसल नष्ट कर दी। कहते हैं, कि वह उसीका स्मृति-चिन्ह है।

नानकने फारसी और गणितकी शिक्षा प्राप्त की थी। आरम्भ

सेही उनमें वैराग्यका प्राबल्य था। किसी काममें उनका जी न लगता था। उनकी यह निस्पृहता देख कालूको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने उन्हें किसी व्यवसायमें लगा देना स्थिर किया।

बाला नामक एक व्यवसायी जाट था। कालूने नानकको चालिस रुपये दे उसके साथ व्यापार करनेके लिये परदेश भेजा। नानक उसके साथ तो गये, परन्तु कालूकी इच्छा अपूर्णही रह,गयी। नानकको मार्गमें संन्यासियोंका एक दल मिल गया। संन्यासियोंने उसे बतलाया, कि गृहस्थोंसे त्यागी अधिक सुखी होते हैं। उन्हें अन्न वस्त्र और धन धामकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। गृहस्थाश्रममें अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। अनेक प्रकारके कष्ट उठाने पड़ते हैं और जीव बन्धनमें पड़ता है।"

संन्यासियोंकी यह बातें सुन नानक उन पर मुग्ध हो गये। उन्होंने अपने रुपये उन्हें दे देने चाहे, परन्तु संन्यासियोंने लेनेसे इनकार कर दिया। उन्होंने केवल अन्न लेना स्वीकार किया। नानक बाजारसे उन रुपयोंका अन्न ले आये और उन संन्यासियोंको खिला दिया। जब उनके पास कुछ भी न रह गया, तब वे अपने घर लौट आये।

नानक लौट तो आये, परन्तु पिताके सम्मुख उपस्थित होनेका उन्हें साहस न पड़ा। वे एक वृक्षकी सघन डालियोंमें छिप कर बैठ रहे।

किसी प्रकार उनके आगमनका समाचार कालूने सुन लिया।

थे उन्हें घर लिवा ले गये। वहां उन्होंने उनसे रुपयोंके विषयमें प्रश्न किया। नानकने कहा—"आपने रुपये दे किसी अच्छे काममें लगाने और लाभ करनेकी आज्ञा दी थी। मैंने धर्मकार्य्यमें लगा कर उनके द्वारा पुण्य लाभ किया है।"

नानकका यह उत्तर सुन उनके पिता क्रुद्ध हो उन्हें मारने दौड़े। आज अवश्य अनर्थ हो जाता, किन्तु रायभोलार भट्टीने बीचमें पड़ नानककी रक्षा की। रायभोलार भट्टी उस ग्रामका जमीन्दार था। उसने नानकके विषयमें बहुत कुछ सुन रखा था। वह उनके सद्गुणोंको देख मनही मन उनसे प्रेम करने लगा था। उसने कालूको चालीस रुपये दे दिये और साथही ताकीद की, कि नानकको कभी किसी प्रकारका कष्ट न दिया जाय। *

नानक कोई काम न कर इधर उधर घूमा करते थे। उनकी यह दशा देख कालू बड़े चिन्तित रहते थे। नानककी माता वर्तमान थी। कालू जब नानकको कुछ कहते, तब वे पुत्रका पक्ष ग्रहण कर उन्हें शान्त रहनेके लिये समझातीं। अन्तमें नानकको कालूने उसकी बहिनके पास सुलतानपुर भेज दिया।

सुलतानपुर दिल्ली और लाहोरके बीचमें था। वहां एक मुसलमान शासक रहता था। जयरामने कह सुन कर उसके

---

* नानकने जिस स्थान पर संन्यासियोंको भोजन कराया था, वह स्थान "खरा सौदा" के नामसे और जहां वे वृक्षकी डालियोंमें छिप रहे थे वह स्थान "मालसाहब" के नामसे इस समय प्रसिद्ध है।

यहां नानकको नौकरी दिला दी। इसके बाद उसने नानकको ब्याह करनेके लिये भी बाध्य किया। इच्छा न होने पर भी लाखोकी ग्राम निवासी मौला नामक क्षत्रियकी सुलक्षणी नामक कन्याके साथ उनका विवाह हो गया। उसके उदरसे श्रीचन्द और लक्ष्मीदास नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए।

श्रीचन्दने आगे चलकर उदासी पंथकी स्थापना की। पंजाबमें आज भी उदासी साधुओंके अनेक अखाड़े हैं। लक्ष्मीदास द्वारा वेदियोंका वंशविस्तार हुआ। यद्यपि उनके वंशजोंमें आज सद्गुणोंका अभाव है, किन्तु अब भी वे अपने वंशकी पवित्रताके लिये साभिमान शिर ऊँचा रखते हैं।

गृहस्थी पर नानककी आरम्भसेही प्रीति न थी। अब उन्होंने संन्यास लेनेका निश्चय किया। वे निरन्तर एक वट वृक्षके नीचे बैठ कर अपना कर्त्तव्य-पथ निर्धारित किया करते थे। आज भी वह वृक्ष "बाबाका वट" कहलाता है। एक दिन वे नदीमें स्नान करने गये। वहां उन्हें कुछ ऐसा आनन्द आया, कि वे सारा दिन जलमें खड़े रहे। वह स्थान इस समय सन्तघाटके नामसे विख्यात है। इसी प्रकार वे जहां बैठ कर व्यवसाय करते थे, वह स्थान हाट साहबके नामसे पुकारा जाता है। उनके भावुक शिष्योंने वहां उनके स्मृति-चिन्ह नियत किये हैं। हाट साहबमें अद्यापि वह बटखरे सुरक्षित हैं, जिनसे वह सौदा तौल कर ग्राहकोंको देते थे।

जब नानकने गृहत्याग करना स्थिर किया और उनके

मित्रोंने सुना, तब उन्होंने उन्हें ऐसा न करनेके लिये बहुत समझाया। अपनी पुत्री और दौहित्रोंको निराधार होते देख उनके श्वसुरने भी उन्हें रोकनेकी यथा साध्य चेष्टा की। कहना व्यर्थ है, कि नानकके विचारोंमें किसी प्रकारका परिवर्तन न हुआ। वे उसी अटल भावसे गृहत्याग करनेकी तय्यारी करने लगे।

नानकके श्वसुरने जब देखा, कि नानक किसी प्रकार नहीं मानते तब उसने उन्हें रोकनेकी और एक युक्ति सोची। हम पहलेही बतला चुके हैं, कि नानक सरकारी नौकरी करते थे। मौला—नानकके श्वसुर-उस मुसलमान शासकके पास गये। उसने एक आज्ञा पत्र प्रकाशित कर नानकको नौकरी पर तुरन्त उपस्थित होनेकी आज्ञा दी।

किसमें सामर्थ्य है, जो त्यागी पुरुष पर अधिकार रख सके? ऐसा कौन शक्तिशाली है जो त्यागीको वश कर सके? त्यागी किसीके सेवक नहीं होते। उनका मालिक वही एक परमात्मा होता है। वे किसीकी परवाह नहीं रखते, जिसने उसकी सेवा स्वीकार करली, उसे कौन संसारके बन्धनोंमें जकड़ सकता हैं? नानकको रोकनेकी सभी चेष्टायें व्यर्थ प्रमाणित हुई। उन्होंने उस आज्ञा-पत्रका उत्तर देते हुए कहा—"मैं परमात्माका सेवक हूं। इसके अतिरिक्त मैं किसी अन्य मालिकको नहीं पहचानता।"

नानकने स्त्री और पुत्रोंको अपनी ससुराल भेज दिया।

इसके बाद बहिनकी आज्ञा प्राप्त कर उन्होंने संन्यास ग्रहण किया। गृहत्यागी हो वह चारों ओर भ्रमण करने लगे। बाला और मर्दाना नामक दो मनुष्य उनकी साधुता देख मुग्ध हो गये। उन्होंने भी उनका साथ दिया।

मर्दाना जातिका मुसलमान था। सङ्गीत शास्त्रमें उसकी अच्छी गति थी। जब नानक ईश्वर भजन करते तब वह सारङ्गी बजाकर उनका साथ देता। वह कितनीही बार लालचमें पड़ जाता, परन्तु नानक उसे उपदेश दे उससे दूर रखते। मर्दाना मुसलमान होनेपर भी उसका अन्तरात्मा हिन्दुत्वसे रङ्गा हुआ था। वह ईश्वर भजनको छोड़ और किसी प्रकारके गीत न गाता था। सिक्ख संसारमें अद्यापि उसका और बालाका नाम आदरके साथ स्मरण किया जाता है और उनके पद प्रेम पूर्वक गाये जाते हैं।

विचरण करते हुए नानक अमीनाबाद पहुंचे। उस नगरमें लाला ठाकुर नामक एक सद्गुणी और प्रमाणिक गृहस्थ रहता था। नानकने उसका आतिथ्य ग्रहण करना स्वीकार किया। वहीं वजीर मलेक भागू नामक एक धनी मानी मनुष्य भी रहते थे। उन्होंने नानकसे अपने यहां ठहरनेके लिये बड़ा आग्रह किया, परन्तु यह सुनकर कि वे अत्याचारी हैं और प्रजाको कष्ट देकर धन एकत्र करते हैं, नानकने उनके यहां पदार्पण करना भी स्वीकार न किया।

नानकने शय्यापर न सोकर अमीनाबादमें रोड़ोंपर आराम

किया था। आज भी वह स्थान उनके स्मृति स्वरूप रोड़ी साह-बके नामसे प्रसिद्ध है। इसी समय अमीनाबादपर मुगलोंका आक्रमण हुआ। उन्होंने नगरको अधिकृतकर अन्यान्य लोगोंके साथ नानक, वाला और मर्दानाको भी बेगार ढोनेके लिये पकड़ लिया। शिरपर बोझ रख वे तीनों गाते, बजाते और ईश्वर भजन करते हुए उच्च पदाधिकारीके पास पहुंचे। इस विचित्र मण्डलीको देख उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। साथही नानककी शिक्षाप्रद बातें सुन प्रसन्नताका भी वारापार न रहा। उसने उन का बड़ा आदर किया और कर्मचारियोंके अनुचित व्यवहार पर खेद प्रकट किया।

नानकने चारों ओर भ्रमणकर अनेक धर्म्म और अनेक शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया। कर्म्मकाण्डसे उन्हें घृणा हो गयी। वेदके ज्ञानकाण्डको उन्होंने मान्य रक्खा। धर्म्मोंमें अनेक प्रकारकी त्रुटियां देख उन्हें आश्चर्य हुआ। भारतके प्रत्येक भाग-में भ्रमणकर उन्होंने साधु, सन्त और वैरागियोंकी बातें सुनीं। फिर अरबस्थान जाकर उन्होंने फकीरोंके कार्य्य हृदयंगम किये, परन्तु उनके आत्माको शान्ति न मिली। वे जिस तत्वकी खोज कर रहे थे, वह न तो उन्हें हिन्दू धर्म्ममें ही दिखाई दिया न मुसलमान धर्म्ममेंही। वे सर्वत्र कर्म्मकाण्डका शोचनीय विकार और भ्रमकी भयङ्कर मूर्त्तियां देख वापस लौट आये।

अब उन्होंने जाति, सम्प्रदाय और धर्म्म शासनमें परिवर्तन करना आरम्भ किया। कीर्तिपुर नामक नगरमें एक धर्म्मशाला

प्रतिष्ठित कर वहीं वे अपने जीवनका शेष भाग अतिवाहित करनेमें प्रवृत्त हुए। उन्होंने संन्यास धर्म्म और संन्यासी वेशको जलाञ्जलि दे दी। अपने परिवारको बुला लिया और धर्म्मोपदेश देते हुए कालयापन करने लगे।

नानकके मतानुसार नाना जाति और नाना सम्प्रदायोंमें विभक्त होकर रहना ठीक नहीं। देवालयोंमें जाकर यज्ञ करना और उसके उपलक्षमें ब्राह्मणोंको भोजन कराना भी कर्तव्य नहीं। इन्द्रियदमन और चित्त संयमकोही वे सर्वापेक्षा श्रेयस्कर बतलाते थे। आत्मशुद्धि उनका मूलमन्त्र था। वे कहते थे, कि आत्मा ईश्वरका अंश है। सत्य बोलना, वेदके ज्ञानकाण्ड को मानना और मांस मदिरासे दूर रहना चाहिये। गुरुकी आज्ञाको ईश्वराज्ञा समझो। मूर्त्तिपूजा असत्य है। ईश्वर अवतार नहीं लेता। स्मृति और पुराण अप्रमाणिक हैं, गुरु लिखित ग्रन्थ ही वेद रूप हैं उसकी और गौ ब्राह्मण तथा साधु संतोंकी पूजा करनी चाहिये।

"अधर्म्मियोंका नाश करनेसे ईश्वर प्रसन्न होता है। विवाह बड़ी उम्रमें करना चाहिये। व्यभिचारीको चाण्डाल समझो। अन्तरात्माही ईश्वर है। उसीको गोविन्द कहते हैं। गोविन्दका दूसरा नाम "सोहं" है। ध्यान धारण और समाधिसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। शरीर गोविन्दका निवासस्थान है अतः जीव हिंसा न करो। उपवास और मिताहारसे शारीरिक विकार नष्ट होकर गोविन्दकी ज्योति प्रकाशित होती है। विशुद्ध हृदय

से एकमात्र अद्वितीय ईश्वरकी उपासना करनी चाहिये। ईश्वर एक है, अनेक नहीं। उसी एक पर प्रकृत विश्वास रखना चाहिये। भिन्न भिन्न जातियोंमें जो नाना प्रकारका धर्म्म देखा जाता है, वह केवल मनुष्यकी कल्पना है। आत्मज्ञानसे ईश्वरीय तत्वों-का बोध होता है अतः उसे प्राप्त करना चाहिये। सदुद्योग और सदाचारसे सर्वशक्तिमान परमात्मा प्रसन्न होता है। वैरा-ग्य और संन्यास धर्म्म अनावश्यक है। परमात्माके निकट त्यागी और गृहस्थ दोनों समान हैं।

महात्मा नानकने मुल्ला और पण्डित, संन्यासी और दर्वेश सबको समभावसे उपदेश दिया। हिन्दू और मुसलमान दोनोंने इनका उपदेश सुना और दोनोंही उनके शिष्य हुए। आदि ग्रन्थोंमें लिखा है, कि सर्व प्रथम पञ्जाबके हृष्टपुष्ट और बलिष्ट किन्तु सरल स्वभावके मनुष्योंने उसे अपनाया।

नानकने ईश्वरोपासनाकी कोई नवीन विधि नहीं बत-लायी। वे अपनेको ईश्वरका एक विनीत दास बतलाते थे। कभी किसीने उनके मुखसे आत्म प्रशंसा नहीं सुनी। क्रिया काण्डके अनुष्ठान और जातिभेदोंका उन्होंने मूलोच्छेद कर डाला। अपने शिष्योंको परस्पर समभावसे प्रेम पूर्वक रहने का उन्होंने आदेश दिया।

नानक द्वारा प्रवर्त्तित सम्प्रदायको सिक्ख सम्प्रदाय किंवा नानक पंथ कहते थे। उनके अनुयायी सिक्ख नामसे सम्बो-धित किये जाते हैं। "सिक्ख" शब्द शिष्य शब्दका अपभ्रंश

है। इस सम्प्रादायमें जाति भेद नहीं माना जाता। प्रत्येक जातिका मनुष्य इसमें सम्मिलित हो सकता है।

नानकने अपने सम्प्रदायका गुरुपद योग्य व्यक्तियोंकोही ग्रहण करनेकी आज्ञा दी थी। योग्यताका अभाव देख उन्होंने अपने पुत्रको गद्दी न दे, अङ्गद नामक प्रधान शिष्यको दी थी। अङ्गदके बाद अमरदास, रामदास, अर्जुनदास, हरगोविन्द, हरराय, हरकिशन, और तेग बहादुर प्रभृति धर्म्माचार्य्योंने शिक्ख सम्प्रदायकी अधिनायकता ग्रहण की। अन्तिम गुरु स्वनामधन्य गोविन्दसिंह हुए। गोविन्दसिंहने मुसलमानोंसे युद्ध कर सिक्ख सम्प्रदायकी जड़ मजबूत कर दी। सिक्ख जातिमें जो वीरता और शौर्य्य दिखाई देता है, वह उनकी धर्म्म शिक्षाकाही प्रभाव है।

महात्मा नानक दोहा, चौपाई और पदोंको रचना भी करते थे। उनकी कृति नानक विलास है। उसमें उनकी रचनाये संग्रहीत हैं।

जब नानककी मृत्यु हुई, तब उनका शव प्राप्त करनेके लिये हिन्दू और मुसलमान शिष्योंमें झगड़ा हो गया। उसे निपटानेके उद्देश्यसे किसीने चुपचाप उसे स्थानान्तरित कर दिया। लोगोंने उस पर पड़े हुए वस्त्रको उठा कर देखा तो शव नदारद! अन्तमें, उस वस्त्रके दो टुकड़े कर दोनोंने बांट लिये। हिन्दुओंने उसका अग्नि संस्कार किया और मुसलमानोंने उसीको दफनाया।

कबीरदास ।

महात्मा कबीरका जन्म कहां, कब और किस जातिमें हुआ इस विषयमें मतभेद है। कोई उन्हें ब्राह्मण पुत्र, कोई विधवा पुत्र और कोई जुलाहेका पुत्र बतलाते हैं। कबीर पंथी कहते हैं, कि काशीमें भागीरथीके तट पर कोई उन्हें नव-जात शिशुकी अवस्थामें छोड़ गया था। नीमा नामक जुलाहा उन्हें निराधार देख अपने घर उठा लेगया। उसकी स्त्रीका नाम नूरी था। उसने बड़े प्रेमसे अपने पुत्रकी भाँति उनका प्रति पालन किया। आगे चलकर यही कबीरके नामसे विख्यात हुए।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि कबीरके प्रकृत माता पिता जुलाहे न थे। वे सम्भवतः किसी ब्राह्मणके पुत्र थे और वे निरा-धार अवस्थामें जुलाहे द्वारा प्रतिपालित हुए थे! बड़े होने पर पालक पिताने उनका विवाह कर दिया और कुछ दिन बाद उनके कमाल नामक एक पुत्र भी हुआ।

कबीरका हृदय बाल्यावस्थासेही वैराग्यशील था। वे जीव-नको जल बुदबुदवत् क्षणस्थायी, चपला समान चपल समझते थे। किसी सद्गुरु द्वारा ज्ञान प्राप्त कर जीवन मुक्त होनेकी उन्हें परम लालसा थी। जांच करने पर उन्होंने स्वामी रामानन्द का नाम सुना।

रामानन्द वैष्णव सम्प्रदायके उपदेशक थे। उन दिनों वे काशीमें रह कर जोरोंके साथ धर्म प्रचार करते थे। कबीरने उन्हें अपना गुरु बनाना स्थिर किया। उन्होंने अपनी यह इच्छा वैष्णव साधुओं पर प्रकट की। साधुओंने यह जान कर, कि यह जातिके जुलाहे हैं, उनका तिरस्कार किया और कहा, कि रामानन्द तुम्हें शिष्य बनाना कदापि स्वीकार नहीं करेंगे।

कबीर निराश हो लौट आये और नगरमें भ्रमण करने लगे। उन्होंने लोगोंसे रामानन्दके निवासस्थानका पता लगाया। कहा, कि मैं उनके दर्शन करना चाहता हूं। लोगोंने बतलाया, कि वे प्रति दिन प्रातःकाल गंगास्नान करने जाते हैं। उस समय उनके दरवाजे पर उपस्थित रहनेसे अनायासही उनके दर्शन किये जा सकते हैं।

कबीर यह सुन कर प्रसन्न हो उठे। वह दूसरेही दिन मार्गमें बैठ उनकी प्रतीक्षा करने लगे। अन्धकारमें रामानन्दको कुछ दिखायी न पड़ा। ज्योंही वे उधरसे निकले त्योंही कबीर पर उनका पैर पड़ गया। कबीरने मनही मन उन्हें प्रणाम किया। रामानन्द उन्हें देख चौंक पड़े। कबीरको उन्होंने सान्त्वना देते हुए कहा—"बेटा! राम राम कह।"

कबीर यही चाहते थे। रामनामका जप करते हुए अपनेको वह रामानन्दका शिष्य बतलाने लगे। वैष्णवोंकी भांति उन्होंने माला और तिलक भी धारण कर लिया। लोग यह देख विस्मित हुए। कबीर प्रतिदिन हरिकीर्त्तन करते और छुत

शतः प्रकाशित करते हुए लोगोंके सम्मुख रामानन्दका नामलेते।

स्वामी रामानन्दने भी यह बात सुनी। उन्होंने कहा, कि मैंने कबीरको दीक्षा नहीं दी। वह मुझे अपना गुरु नहीं कह सकता। यदि वास्तवमें यह बात ठीक है, तो उसके कीर्त्तन करते समय मुझे सूचना दी जाय, मैं स्वयं सुनूंगा, कि वह मेरे विषयमें क्या कहता है।

एक दिन कबीर बाजारमें हरिकीर्त्तन कर रहे थे। रामानन्द-के आदेशानुसार उनके शिष्योंने उन्हें सूचना दी। रामानन्द चुप चाप वहां गये और कबीरकी बातें सुनने लगे। ज्योंही कबीरने उनका नाम ले कीर्त्तन आरम्भ किया, त्योंही रामानन्दने क्रुद्ध हो अपनी पादुका उनकी ओर फेंकी। पादुका कबीरके कपाल में जा लगी। कबीरने फेंकनेवालेको देख लिया। उनके आनन्द-का वारापार न रहा। उन्हें प्रणामकर वह दूने उत्साह और प्रेमसे हरिकीर्त्तन करने लगे।

अब रामानन्दका धैर्य जाता रहा। एक जुलाहेकी इस धृष्टतामें वह अपना अपमान अनुभव करने लगे। उन्होंने कबीर से कहा,—मैंने तुझे दीक्षा नहीं दी। व्यर्थही तू मेरा नाम क्यों लेता है?

कबीरने हाथ जोड़कर कहा—"भगवन्! मैं आपहीका शिष्य हूं। सम्भव है आपको स्मरण न हो। आपने मुझे रामनामका उपदेश दिया था। मैं उसी महामन्त्रका जप करता हूं। यदि कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा करिये।"

इतना कह कबीरने उस दिनकी घटनाका स्मरण दिलाया। बात झूठ न थी, रामानन्दको कबीरकी युक्तिपर हंसी आ गई। रामानन्दने आशीर्वाद दे, उनको अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। महात्मा कबीर अब निश्चिन्त हो ईश्वर भजन करने लगे।

महात्मा कबीर महादयालु, शान्त, परोपकारी, ज्ञानी, वैराग्य शील, उपासक निस्पृही और भक्त थे। किसीको कष्टित देख उन्हें बड़ा दुःख होता। निर्द्धन होनेपर भी शक्तिभर परमार्थ करनेमें वे कभी न चूकते।

एक दिन घरमें अन्न न था। उन्होंने एक वस्त्र बुन कर तय्यार किया था। उसे बेचकर अन्न लानेके लिये वह बाजार चले। शीतकालका समय था। कड़ाकेका जाड़ा पड़ रहा था। मार्गमें एक वृद्ध मिल गया। कबीरने देखा, कि वह जाड़ेसे कांप रहा है। उन्हें उसपर दया आ गयी। मानो वृद्धको भी उनका भाव विदित हो गया। उसने उनसे वस्त्रकी याचना की। कबीरने उसे तुरन्त वह प्रदान कर दिया।

वस्त्र दे देनेके बाद कबीरको अपने कर्त्तव्यका स्मरण हुआ। वह मनहीमन कहने लगे—"अहो! मैंने यह क्या कर डाला! घरमें अन्न नहीं है। माता मेरी राह देख रही होंगी।" दूसरेही क्षण उन्हें विचार हुआ—मैं यह क्या सोच रहा हूं! अन्नकी चिन्ता तो रोजही लगी रहती है। भाग्यमें जो बदा होगा वही होगा। मैंने वृद्धको वस्त्र दे दिया, यह अच्छाही

किया। यह कार्य्य करनेसे मुझे आज जो आनन्द मिल रहा है, वह अपूर्व और अद्भुत है। पहले कभी मैंने ऐसा सुख अनुभव नहीं किया। अन्न लानेपर ऐसा आनन्द नहीं मिल सकता था। अतः जो हुआ सो ठीकही हुआ।"

कबीर खाली हाथ घर लौट आये। देखा, कि भोजन तय्यार है। माता बैठी हुई राह देख रही है। कबीरने विस्मित हो पूछा—यह क्या? आप तो कहती थीं, कि घरमें कुछ है ही नहीं। यह सब कहांसे आ गया?"

कबीरका यह प्रश्न सुन माताको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे बोलीं—"पुत्र! ऐसा क्यों कहते हो? तुम्हींने तो एक मनुष्य द्वारा यह सब भेजा था!"

माताका यह उत्तर सुन कबीर गद् गद् हो गये। बोले—"माता! मैंने कुछ भी नहीं भेजा। भेजता भी कहांसे? वह वस्त्र तो मैंने एक वृद्धको दे दिया था। प्रतीत होता है, कि साक्षात् भगवान् यह सामग्री दे गये हैं। उनके बिना और कौन ऐसा कर सकता है? अवश्य यही बात है। अब हमें धनकी चिन्ता न कर दुःखियोंको अन्न देना चाहिये।"

दूसरे दिनसे कबीरकी माता अन्नदान करने लगी। कुछही दिनोंमें कबीरकी उदारता प्रसिद्ध होगयी। जो उनके यहां आता वह खाली हाथ न लौटने पाता। कबीर जो कुछ उपार्जन करते वह इसी प्रकार दान कर देते। कभी कभी उन्हें कठिनाईका भी सामना करना पड़ता। घरमें कुछ न होनें पर जब

कोई याचक आजाता तब वे किसी न किसी प्रकार कहींसे अन्न ले आते और उसे सन्तुष्ट कर प्रसन्न होते।

कबीरकी कीर्त्ति सुन एक राजा उनका भक्त बन गया। उसने कबीरको कुछ धन देना चाहा। कबीरने कहा—"राजन्! मैं धन लेकर क्या करूं? मेरे लिये जीवन और मरण दोनों समान हैं। उदर पूर्त्तिके निमित्त मैं धन एकत्र नहीं करना चाहता। जो दीन हीन भिक्षुक हों, जो क्षुधार्त्त हों, जो धनके लिये लालायित रहते हों, उन्हें धन देकर सन्तुष्ट करिये। ऐसा करनेसे बड़ा पुण्य होगा। लोक परलोक दोनों बनेंगे।"

कबीरकी यह बातें सुन राजा वैसाही करने लगा। वे जो जो उपदेश देते, जो बातें बतलाते, वह मनुष्यके हृदयमें घर कर लेतीं। एक दिन किसीने उनसे प्रश्न किया, कि लोग कहते हैं कि सांसारिक प्रपञ्चोंमें रहते हुए परमार्थ नहीं किया जा सकता—यह सत्य है किंवा असत्य?

कबीरने कहा—"आपके इस प्रश्नका उत्तर कल दो पहरको दूंगा। तब तक आप यहीं ठहरिये।"

आगन्तुक ठहर गया। दूसरे दिन दोपहरके समय कबीर धूपमें बैठ उलझे हुए तानेको सुलझाने लगे। प्रकाशका अभाव न था, फिर भी उन्होंने अपनी पत्नीको दीपक ले आनेकी आज्ञा दी। पत्नी दीपक ले आयी। कबीरने उसके प्रकाशमें गुत्थियोंको सुलझाया। सुलझानेके बाद, उनके कहने पर पत्नी दीपक ले कर चली गयी।

आगन्तुक कबीरकी यह लीला देख चकित हो गया। वह सोचने लगा, कि कबीर पागल तो नहीं हो गये ? क्या कोई बुद्धिमान ऐसा काम कर सकता है ?

अन्तमें उससे न रहा गया। अवसर देख उसने कबीरसे शंका-समाधानकी प्रार्थना की। कबीरने कहा—"भाई ! आप मेरे कार्य्यका तात्पर्य नहीं समझ सके। मैंने आपके प्रश्नका यह उत्तर दिया है। दोपहरके समय दीपककी आवश्यकता न थी। उसके प्रकाशसे मेरे कार्यमें सहायता भी न पहुँच सकती थी। फिर भी, मैंने अपनी स्त्रीको दीपक ले आनेकी आज्ञा दी और वह निर्विकार भावसे चुपचाप ले भी आयी। शंका तक न की, कि इस समय दीपककी क्या आवश्यकता है ? संसारमें जिसे ऐसी अनुकूलता हो, जिसे ऐसी सरला पत्नी प्राप्त हो वह प्रपञ्चोंमें रहते हुए भी परमार्थ कर सकता है, अन्यथा असम्भव है।"

कबीरका यह उत्तर सुन आगन्तुक सन्तुष्ट हो अपने घर चला गया। उनकी शिक्षा-प्रणाली ऐसीही विचित्र और अद्भुत थी। लोगों पर ऐसे उपदेशोंका गहरा प्रभाव पड़ता था। ऐसीही युक्तियों द्वारा वे गूढ़से गूढ़ विषयको भी सरल बना देते थे। लोग उनकी यह बुद्धिमत्ता देख अवाक् रह जाते थे।

कबीरकी गणना सिद्ध पुरुषोंमें की जाती है। उनके अलौकिक कार्य्योंकी अनेक कथायें प्रचलित हैं। कहते हैं, कि जब वे तीर्थाटन करते हुए दिल्ली पहुंचे, तब किसीने वहांके

यवन शासकसे कह दिया, कि यह पाखण्डी है और लोगोंको ठगता फिरता है।

बादशाहने उसकी बात सच मान ली और कबीरको अनेक अनुचरों द्वारा पकड़ मंगाया। अनुचरोंने कबीरको दरबारमें उपस्थित कर उन्हें बादशाहको सलाम करनेकी आज्ञा दी। कबीरने सलाम न की और कहा—"मैं नहीं समझता, कि संसारमें कोई मुझे मार सकता है।"

बादशाहने यह सुन उन्हें यमुनामें डुबो देनेकी आज्ञा दी। सिपाहियोंने उनके हाथ पैर बांध यमुनाके प्रवाहमें फेंक दिया। तत्काल तो वे जलराशिमें विलीन हो गये, परन्तु कुछही क्षण बाद लोगोंने देखा, कि वे नदीके उस पार विचरण कर रहे हैं। बादशाहके अनुचर उन्हें फिर पकड़ लाये। इस बार एक चिता तय्यार की गयी। जब उससे भयङ्कर लपटें निकलने लगीं, तब वे उसपर फेंक दिये गये। लोगोंने देखा, कि इस बार भी उनकी रक्षा हुई है। प्रहलादकी भांति उनका भी बाल बाँका नहीं हुआ। चिता जलकर भस्मके रूपमें परिणत हो गयी और वे उसपर उसी प्रकार बैठे हुए हैं, जैसे स्वच्छ शिलाखण्ड पर बैठ कर तपस्वी समाधिमें लीन हो जाते हैं।

अब भी बादशाह उन्हें पाखण्डीही समझ रहा था। उसने उन्हें हाथीसे कुचलवाकर मार डालनेकी आज्ञा दी। कबीरपर मदोन्मत्त हाथी छोड़ा गया, परन्तु उन्हें देख वह उसी प्रकार भागा, जैसे मृगराजको देख प्राण बचानेके लिये मृग भागते हैं।

अब लोगोंके आश्चर्यका वारापार न रहा। सभी उन्हें सिद्ध पुरुष मानने लगे। बादशाहको भी अपने अनिष्टकी शङ्का हुई। उसने अधिक छेड़ करना अनुचित समझ क्षमा प्रार्थना की और उनके गुणोंकी प्रशंसा कर विदा किया।

दिल्लीसे कबीर काशी लौट आये। काशीमें वे लोगोंको उपदेश देते हुए अपना समय व्यतीत करने लगे। जो लोग अब तक उन्हें पाखण्डी समझते थे, वे भी अब उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखने लगे। जब उनका अन्तिम समय समीप आया, तब उन्होंने अपने काशीके शिष्योंको एकत्रकर कहा,—"आज मेरी जीवन-अवधि समाप्त होती है। अब मैं परलोक जाऊंगा। एक जुलाहेके यहां रहकर मैंने कर्मबलसे वैष्णव पद प्राप्त किया। अब इस मिथ्या और अपवित्र शरीरको त्यागनाही उचित है।"

इतना कह कबीरने शोकातुर शिष्योंको सान्त्वना दे शान्त किया। इसके बाद उन्होंने मणिकर्णिका घाटपर शिरसे पैरतक एक चद्दर ओढ़ अनन्त निद्राकी गोदमें आत्मसमर्पण कर दिया।

कबीरके शिष्य हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। दोनों उनका शव अधिकृत करनेके लिये दौड़ पड़े। हिन्दू उसे जलाना और मुसलमान दफनाना चाहते थे। दोनोंमें झगड़ा होने लगा। किसीने चद्दर उठाकर देखा तो शवके बदले वहां कुछ पुष्प दिखाई पड़े। काशी नरेशने आधे पुष्प ले उनका अग्निसंस्कार किया और भस्मको एक स्थानमें गाड़ कर वहां कबीर चौरा बनवाया। मुसलमान शिष्य आधे पुष्प मगहर ले गये और वहां

उन्हें दफनाकर एक समाधिस्तंभ बनाया। मगहर गोरखपुरके पास है। कबीर पंथी कबीर चौरा और मगहरकी समाधि दोनों को पवित्र मान उन्हें अपना तीर्थस्थान बतलाते हैं।

कबीर एक महापुरुष थे। वे चाहे जिस जातिके हों, परन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि वे हिन्दू और मुसलमानोंको समान मानते थे और उन्हें एकही धर्मकी छत्र छायामें एकत्र करना चाहते थे। वे जप तप निरर्थक मानते थे। बहुधा कहा करते थे, कि:—

मनका फेरत दिन गये, गया न मनका फेर।
करका मनका छोड़कर, मनका मनका फेर॥

कबीरने छोटे बड़े कई ग्रन्थ लिखे थे। उनमें सुख निधान नामक ग्रन्थ प्रधान है। उसमें उनके सिद्धान्तोंका उल्लेख है। प्राय: सभी छन्दोबद्ध हैं। कहा जाता है, कि चौबड़ा ग्राममें उनकी समस्त रचनायें संग्रहीत हैं। कबीर पूजा पाठको बाल-चेष्टा समझ एक अद्वितीय ईश्वरकी उपासनाका उपदेश देते थे।

कबीरपंथी परस्पर बन्दगीसाहब किंवा सतसाहब कहकर नमस्कार करते हैं। सतगोपाल और धर्मदास यह दो उनके प्रधान शिष्य थे। उन दोनोंने गोरखनाथ कथा, आनन्दसार शब्दावली, मङ्गल बसन्त, होली, रेखता, कहार, हिंडोला प्रभृति अनेक छोटे बड़े ग्रन्थोंकी रचना की थी। भागूदास नामक किसी कबीर पंथीने बीजक नामक ग्रन्थ लिखा था। इसके अतिरिक्त उनके और पांच शिष्य प्रसिद्ध हैं-कमाल, जमाल, वि-मल, बुद्धन और दादू। इन्होंने अपना अपना प्रथक सम्प्रदाय

प्रचलित किया था, किन्तु विद्वान सञ्चालकोंके अभाव और धन प्राप्त करनेकी लोलुपताके कारण उनका प्रचार पाना कठिन हो गया।

कबीर पंथके मठोंमें हड्डियोंकी तरह शुतुर्मुर्गके अण्डे टंगे रहते हैं। उन्हें देखनेसे सिद्ध होता है, कि यह कबीर पन्थियोंके मठ हैं। कबीरपन्थी साधु जब किसी मैदानमें कीर्त्तन करना चाहते हैं, तब अपने आसपास सफेद झण्डे खड़े कर देते हैं।

रामानुजके सम्प्रदायसे रामानन्दका और रामानन्दके सम्प्रदायसे कबीरका सम्प्रदाय निकला। रामानन्दी और कबीर पंथी एक समान तिलक करते हैं। रामानुजी और इनके तिलकमें केवल इतनाही अन्तर है, कि रामानुजी मध्यस्थ रेखा पीली और यह दोनों लाल रखते हैं।

कबीर हिन्दू और मुसलमानोंमें भेद न मानते थे। वे कहते थे, कि हिन्दुओंके राम और मुसलमानोंके रहीम अभिन्न हैं। हिन्दू जिसे ईश्वर कहते हैं, उसीको मुसलमान अल्ला कहते हैं। न अल्ला मक्केमें रहता है न ईश्वर काशीमें। वह सर्वत्र है। प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें उसकी अखण्ड ज्योति प्रकाशित हो रही है। उसे जाननेके लिये योगाभ्यास, कायाकष्ट और पवित्रता होनी चाहिये। धर्मशास्त्रोंके पढ़नेसे ज्ञानोदय होता है। पाप पुण्य भी है और पुनर्जन्म भी होता है। ईश्वरका ध्यान करना यही महान् धर्म है। सत्यज्ञान

द्वारा ईश्वर जाना जाता है। गौ ब्राह्मणकी सेवा करनी, मांस, मदिरा और व्यभिचारसे दूर रहना तथा अहिंसाका पालन करना चाहिये। सत्य, दया, दान, क्षमा, अहिंसा, भक्ति तथा वैराग्य प्रभृतिसे मुक्ति होती है। उच्च नीचका भेद नहीं है। केवल कर्म भेदसे लोगोंमें भिन्नता प्रतीत होती है।

यही कबीरके सिद्धान्त हैं। उनकी रुचि वेदान्तकी ओर थी। उनके भजन और साखियोंमें मार्मिक उपदेश भरा हुआ है। उनके पढ़नसे महात्मा कबीरके विचार भी जाने जा सकते हैं। पाठकोंके ज्ञानार्थ कुछ साखियां नीचे दी जाती हैं।

पत्थर पूजे हरिमिलैं, तो मैं पूजूं पहार।
इससे तो चक्की भली, पीस खाय संसार॥
माला मुझसे लड़ पड़ी, काहे फिरावे मोहिं।
जो दिल फेरे आपनो, तो राम मिलाऊं तोहिं॥
राम झरोखे बैठकर, सबका मुजरा लेय।
जाकी जैसी चाकरी, ताको तैसा देत॥
जो तोकूं कांटा बुवे, ताहि बोइतू फूल।
तोकों फूलके फूल हैं, बाको हैं तिरशूल॥
साहब तेरी साहबी, सब घट रही समाय।
ज्यों मेहंदीके पातमें, लाली लखी न जाय॥
कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूंढ़ै बन माहिं।
ऐसे घट घट राम हैं, पै जग देखै नाहिं॥

काट काट माला करी, तामे डारे सूत।
माल विचारी क्या करे, फेरनहार कपूत॥
कबिरा या संसारमें, फूले सो कुम्हिलाय।
जो चुनिये सो ढहि परे, आमे सो मरि जाय॥
सांईका घर दूर है, जैसा लम्ब खजूर।
चढ़ै तो चाखे प्रेमरस नाहिं त चकनाचूर॥
सांई सबको देत है, ठाढ़े खड़े हजूर।
जैसे घोड़ा राजको, भरि भरि देत मजूर॥

स्वामी सहजानन्द।

स्वामी सहजानन्दका जन्म चैत्र सुदी नवमी संवत् १८१७ के रोज हुआ था। उनका नाम हरिकृष्ण किंवा घनश्याम रक्खा गया था। उनके पिताका नाम धर्म्मदेव और माताका नाम भक्तिदेवी था। धर्म्मदेव सामवेदी सरवरिया ब्राह्मण थे। पहले अयोध्याके पास छपैया नामक ग्राममें रहते थे, किन्तु बादको अयोध्यामें रहने लगे थे। हरिकृष्णके दो भाई और थे। एक बड़ा था और एक छोटा। बड़ेका नाम रामप्रताप और छोटेका नाम इच्छाराम था।

आठवें वर्ष हरिकृष्णका उपनयन संस्कार हुआ। इसके बाद वे विद्याभ्यासमें प्रवृत्त हुए। बाल्यावस्थासेही उन्हें वेद, दर्शन, तीर्थाटन, और जपतप तथा व्रतादिसे बड़ा प्रेम था। जब हरिकृष्णकी अवस्था ग्यारह वर्षकी हुई, तब उनके माता पिताका शरीरान्त हो गया। उसी समय उन्हें वैराग्यसा आ गया और वे तीर्थाटन करने निकल पड़े। बद्रीनारायणका दर्शन कर उन्होंने हिमालयकी यात्रा की। वहीं गोपाळ योगीसे उनकी भेंट हुई। गोपाळ द्वारा उन्होंने अष्टाङ्ग योगकी शिक्षा प्राप्त की।

इसके बाद वे रामेश्वर गये। लौटते समय पंढरपुरमें विट्ठलनाथके दर्शन किये। वहांसे तापी, नर्मदा, मही और साबरमती इन नदियोंको पार कर भीमनाथ और गोपनाथके दर्शन करते हुए वे मांगरोल पहुंचे। मांगरोलके पास लोज नामक एक ग्राम था। वहां रामानन्द स्वामीका अखाड़ा था। हरिकृष्ण उनका नाम सुन वहां गये।

लोजमें उस समय रामानन्द न थे। वे कच्छ-भुज गये हुए थे। अखाड़ेमें उनके मुक्तानन्द प्रभृति पचास शिष्य रहते थे। हरिकृष्ण भी वहीं ब्रह्मचारीकी भांति रहने लगे।

स्वामी रामानन्द, रामानुजके अनुयायी थे। रामानन्दके सिद्धान्तोंमें कुछ सुधार और परिवर्तन कर वे लोगोंको उपदेश दिया करते थे। उन्होंने यात्री और साधु सन्तोंके लिये छत्तीस ग्रामोंमें सदाव्रत स्थापित किये थे। लोग तीर्थाटन करते हुए वहां आते और उनका उपदेश सुनते। जिनके हृदयपर अधिक प्रभाव पड़ जाता, किंवा जो दुःखी अथवा मुमुक्षु होते, वे दीक्षा ग्रहण कर सदैवके लिये वहीं रह जाते। रामानन्द यद्यपि परम्परागत वैष्णव सम्प्रदायकाही प्रचार करना चाहते थे, किन्तु उसमें कुछ नवीनता होनेके कारण लोग उसे भिन्न और नवीन समझते थे। अहमदाबादसे कच्छ पर्यन्त उनके सदाव्रत फैले हुए थे और वहीं उनके शिष्योंका प्राधान्य पाया जाता था।

रामानन्द जब कच्छसे लौटकर लोज आये, तब हरिकृष्णने

भेट हुई। हरिकृष्णको भागवती दीक्षा दे उन्होंने उनका नाम सहजानन्द रखा। सहजानन्दने अपने गुणों द्वारा शीघ्रही सबका प्रेम सम्पादन कर लिया। लोग उनसे प्रसन्न रहने लगे। रामानन्द उनकी योग्यतापर इतने मुग्ध हुए, कि उन्होंने मरते समय उनको अपना उत्तराधिकारी नियत किया।

स्वामी सहजानन्द, रामानन्दकी गद्दीपर अधिरूढ़ हो धर्म-प्रचार करने लगे। इस समय उनकी अवस्था केवल २१ वर्षकी थी। लोग उन्हें स्वामी नारायणके नामसे भी पुकारते थे। रामानन्दके मुक्तानन्द प्रभृति प्रधान शिष्य उनके चमत्कारोंको देख उन्हें साक्षात ईश्वर स्वरूप मानने लगे। रामानन्दका रघुवीरदास ही केवल ऐसा शिष्य था। जिसने स्वामी नारायणका आधिपत्य स्वीकार करनेसे इनकार किया। उसने पृथक हो अहमदाबादमें अपनी गद्दी स्थापित की और स्वतन्त्ररूप से धर्म प्रचार करने लगा।

स्वामी सहजानन्दने लोगोंको समाधिका चमत्कार दिखलाया। समाधि दो प्रकारकी होती है—हठयोगकी और राजयोगकी। आसन और प्राणायाम द्वारा प्राणको नियममें लाकर योगीजन जिस समाधिमें लीन होते हैं, उसे हठयोगकी समाधि कहते हैं। ईश्वरका ध्यान और उसकी महिमापर विचार करते समय आश्चर्य्यवश रोमाञ्च होना, आंखोंसे आंसू निकल पड़ना और अन्तमें सीमातीत प्रेमके प्रभावसे नाड़ी और प्राणकी गतिका रुद्ध हो जाना—राजयोगकी समाधि है।

समाधिमें मनुष्यको, अन्तःकरणमें जो भाव होता है, वही दिखाई देता है। स्वामीनारायणके शिष्य हठ योगकी समाधि न कर राजयोगकी समाधिमें लीन हो जाते थे। कहते हैं, कि सहजानन्दके कितनेही शिष्य उनके सम्मुख देखतेही प्रेमातुर हो समाधिमें लीन हो जाते थे। जब वे कहीं अन्यत्र जाते और वहां सहजानन्दका ध्यान करते तब भी उनकी वही दशा होती थी। उस समय उनकी नाड़ी बन्द हो ज़ाती थी और उन्हें इच्छित वस्तुका दर्शन होता था। यह भी कहते हैं, कि शिष्य न होनेपर भी, सहजानन्दकी आंखसे आंख मिलानेवाला मनुष्य समाधिमें लीन हो इच्छित वस्तुको देख सकता था।

समाधिके चमत्कारोंको देख स्वामीनारायणके शिष्योंकी संख्या शीघ्रताके साथ बढ़ती गयी। कच्छ, काठियावाड़ और गुजरातमें जहां वे गये, वहीं उनके धर्मको लोगोंने अपनाया। काठियावाड़में गढड़ा नामक एक राज्य था। वहां दादाखा-चर नामक राजा राज्य करते थे। स्वामीनारायणका उपदेश सुन, वे उनके शिष्य हो गये और तन मन धनसे उनकी सहा-यता करने लगे।

स्वामीनारायण जब गढड़ा जाते तब दादाखाचरके दरबारमेंही ठहरते। अयोध्यासे रामगलोला नामक एक खाखी साधु बड़े ठाटसे द्वारिका की यात्रा करने जा रहे थे। उनके साथ शिष्योंका एक बड़ा भारी भुण्ड था। निशानोंसहित नौबत और रणसिंहा बजाते हुए वे जिधरसे निकलते उधरही धूम मच जाती।

स्वामीनारायणका नाम सुन द्वारिकासे लौटते समय वह उनसे भेट करने गये। गढ़ड़ा-नरेशने उनके ठहरनेका प्रबन्ध कर दिया अतः वे कई दिन तक स्वामी नारायणका उपदेशामृत पान करते रहे। उनके हृदय पर उस उपदेशका ऐसा प्रभाव पड़ा, कि स्वामीनारायणके शिष्य हो उन्हींके निकट रहनेका उन्होंने निश्चय किया। स्वामीनारायणने दीक्षा दे उनका नाम आनन्दानन्द रक्खा। उनके शिष्य निराश हो अयोध्या लौट गये और वे वहीं रह गये।

स्वामी सहजानन्दने इसी प्रकार उपदेश दे अनेक संन्यासी, वैरागी, वेदान्ती और जैन साधुओंको अपना शिष्य बनाया। वे वैराग्यका ऐसा प्रभावोत्पादक उपदेश देते थे, कि लोग सुनते ही गृहत्याग करनेको तय्यार हो जाते थे। अनेक युवक अपनी नव विवाहिता पत्नियोंको छोड़ उनके शिष्य हो गये थे और कई राजकन्यायें बाल्यावस्थासेही विषय-भोगको हराम समझ, ईश्वर भक्तिमें लीन रहने लगी थीं।

स्वामीनारायणके उपदेशका प्रभाव नीच और निन्द्य व्यवसाय करनेवाले मनुष्यों पर भी पड़ा। काठियावाड़के काठी लोग प्रायः जङ्गली थे। वे मांस खाते, मदिरा पीते और चोरी डकैती कर जीवन निर्वाह करते थे। स्वामीनारायणने उन्हें उपदेश दे सत्संगी बना दिया। वे भी ब्राह्मणोंकी भाँति सदाचारका पालन करने और हिंसाको पाप समझने लगे। इसी प्रकार एक ज्ञानी और नामी कवि भी स्वामीनारायण

के शिष्य हो गये। स्वामीनारायणने उनका नाम ब्रह्मानन्द रक्खा।

स्वामीनारायण पर लोगोंका इतना अधिक विश्वास था, कि वे उनकी बात माननेको सदैव प्रस्तुत रहते थे। एक बार उन्होंने परीक्षा लेनेके लिये कच्छसे काठियावाड़के लोगोंके पास कितनेही पत्र भेजे। पत्रोंमें उन्होंने लिखा, कि यदि तुम्हें आत्मकल्याणकी इच्छा और मेरी बात पर विश्वास हो, तो इसी समय दाढ़ी मूँछ मुड़ा कर साधु हो मेरे पास चले आओ

कहते हैं, कि केवल दो मनुष्योंको छोड़ शेष सभी, जिन्हें पत्र मिले थे, साधु बन स्वामीनारायणके पास जा पहुंचे। स्वामीनारायण उनकी श्रद्धा और विश्वास देख प्रसन्न हो उठे। उन्होंने सबको अपने पास रख, कुछ दिन उपदेश दिया और फिर समझा बुझा कर उनके घर भेज दिया। लोग इस घटनाको देख कहने लगे, कि स्वामीनारायणने किसी भूतको वश कर रक्खा है और उसके द्वारा वे लोगोंके चित्त भ्रमित कर देते हैं।

एक ओर स्वामीनारायण इस प्रकार उन्नति कर रहे थे और दूसरी ओर उनके शत्रुओंकी संख्या बढ़ रही थी। ऐसा कोई मत न था, जिसके अनुयायियोंको स्वामीनारायणने अपना शिष्य न बनाया हो। फल यह हुआ, कि प्रत्येक मतके आचार्य्य उनसे द्वेष रखने और उनके विषयमें भ्रम उत्पन्न करने वाली बातोंका प्रचार करने लगे।

शत्रुओंका यह उद्योग धीरे धीरे सफल हो चला। स्वामी नारायणके विषयमें अनेक प्रकारकी भ्रमोत्पादक बातें कही जाने लगीं। शनैः शनैः उनका अपमान भी होने लगा। मामला यहां तक बढ गया, कि लोग पत्थर फेंकने, कुशब्द कहने और तिरस्कार करने लगे।

स्वामीनारायण मान और अपमानको समान समझते थे। वह तो यह सब शान्तिपूर्वक सहन करते रहे, परन्तु जब उनके शिष्यों पर अत्याचार होने लगा—वैरागी उन्हें लूटने, उनकी कंठियां तोड़ने और देव मूर्त्तियां छीन लेने लगे, तब उन्होंने शिष्योंको आदेश दिया, कि जब तक गुजरातमें कोई न्यायी राजा न हो, जो इन वैरागियोंसे तुम्हारी रक्षा कर सके, तब तक तिलक कण्ठी और शिखाका धारण करना छोड़ दो। केवल कौपीन पहन पर महंतकी तरह विचरण करो और जो कुछ मधुकरीमें मिले उसी पर निर्वाह करो।

स्वामीनारायणके शिष्य ऐसाही करने लगे। अपने पास वे एक पात्र तक न रखते। जो कुछ मधुकरीमें मिलता वह एक हाथमें रख दूसरे हाथसे उसी क्षण खा लेते। वैरागियोंकी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। वे स्वामीनारायणको मार डालना चाहते थे। स्वामीनारायणसे यह बात छिपी हुई न थी। अनेक सशस्त्र काठी और राजपूत उनकी रक्षार्थ प्रस्तुत रहते थे। फिर भी, कभी भाग कर और कभी छिप कर उन्हें प्राणरक्षा करनी पड़ती थी।

अहमदाबादमें लोलंगर बाबाका अखाड़ा था। वहां अनेक सशस्त्र वैरागी रहते थे। एक दिन उन्होंने स्वामीनारायणके शिष्योंको पकड़ कर खूब पीटा। अहमदाबादमें उन दिनों पेशवाका अधिकार था। उसकी ओरसे वहां एक सूबा रहता था। सत्संगियोंने उसके पास जाकर फरियाद की। उसने कहा—"यह तो आपसकी लड़ाई है, इसमें मैं क्या कर सकता हूं।"

स्वामीनारायण यह समाचार सुन अहमदाबाद गये। वहां लोलंगरने अपने शिष्यों सहित उन पर आक्रमण किया। स्वामी-नारायणके साथ भी अनेक काठी, राजपूत और ठाकुर थे। दोनों दलोंमें मार पीट हुई और दोनों दलोंको क्षतिग्रस्त होना पड़ा।

अहमदाबादमें कुछ वाममार्गी रहते थे। स्वामीनारायणने वाम मार्गका खण्डन किया था, अतः वे भी उनसे शत्रुता रखते थे। उन्होंने सूबाको जाकर समझाया, कि स्वामीनारायण पाखण्डी साधु है अतः उसे यहां न रहने देना चाहिये। सूबाने उनकी बात मान ली। उसने एक अनुचरको स्वामीनारायणके पास भेज कर कहलाया, कि जब तक पेशवाका राज्य रहे, तब तक अहमदाबादमें पैर न रखना। इस समय तुम्हें यहांसे चले जानेकी आज्ञा दी जाती है, अतः तुरन्त चले जाओ।"

स्वामीनारायण नगरके बाहर ठहरे हुए थे। सूबाकी आज्ञा प्राप्त कर वे वहींसे लौट गये और गढड़ामें कालयापन करने लगे। उनके शिष्योंपर अत्याचार बढ़ताही गया। यहां तक

कि पिता पुत्र, पतिपत्नी और स्वामी तथा सेवकोंमें भी विरोध भाव दिखाई पड़ने लगा।

स्वामीनारायण पर उनके शिष्योका ऐसा दृढ़ विश्वास था, कि लाख विघ्न बाधायें उपस्थित होने पर भी वह विचलित न हुए। उन्होंने विपत्तियां सहीं, कठिनाइयोंका सामना किया, किन्तु धर्म्म न छोड़ा। प्रत्येक गृह कलहका आगार बन गया। किसीने दीक्षा लेली, तो उसकी स्त्री असन्तुष्ट हो अपने मायके चली गयी और फिर लौटीही नहीं। किसी स्त्रीने दीक्षा लेली तो उसकी ससुराल वाले अप्रसन्न हो गये। उन्होंने उसे बुलाया नहीं, तो उसने भी चुड़ियां फोड़ विधवा वेश धारण करलिया। अनेक व्यवसायियोंने अपने गुमाशतोंको छुट्टी दे दी, परन्तु उन्होंने सत्संग न छोड़ा। पिता और पुत्रमें शत्रुता हो गयी। भाई भाईसे अलग हो गये, परन्तु अपने विचारोंमें अन्तर न आने दिया। पारस्परिक घृणा और तिरस्कारकी मात्रा यहां तक बढ़ गयी, कि लोग सत्संगीके मरने पर उसका शव उठानेसे भी इनकार करने लगे।

इतना सब होते हुए भी सत्संगी विचलित न हुए। अवनतिके बदले उनकी और अधिक उन्नति हुई। स्वामीनारायणके सम्प्रदायको प्रतिपक्षियोंने जितनाही दबाना चाहा, उतनाही उसका अधिक प्रचार हुआ। उसे अन्त्यज और शूद्रोंनेही अपनाया हो सो नहीं। अनेक कुलीन ब्राह्मण और विद्वान पुरुषोंने भी उसको स्वीकार किया।

सूरतमें अरदेशर नामक एक पारसी कोतवाल थे। अङ्ग्रेजी और फारसी भाषाका उन्हे अच्छा ज्ञान था। सरकारने उन्हें खानबहादुरकी उपाधिसे सम्मानित कर चार गांव इनाम दिये थे। कहनेका तात्पर्य्य यह है, कि वे साधारण व्यक्ति न थे। किन्तु उन्होंने भी स्वामीनारायणके निकट दीक्षा ग्रहण कर ली थी। अरदेशरके यह पूछने पर, कि मेरा कल्याण किस तरह होगा, स्वामीनारायणने उन्हें अपनी पगड़ी दे उसकी पूजा करनेको कहा था। अरदेशर आजीवन उसकी पूजा करते रहे थे। अब भी वह उनके घरमें सुरक्षित हैं। सत्संगी जब सूरत जाते हैं, तब अवश्य उसे देखते हैं। कार्तिक सुदी दूजके दिन बड़ी धूमसे उसकी पूजा की जाती है।

संवत १८७४ में अहमदाबाद पर अङ्गरेज सरकारका अधिकार हुआ। डुलाप साहब वहांके कलेक्टर नियत हुए। उन्होंने स्वामीनारायणकी कीर्त्ति सुनी। साथही यह भी सुना, कि पेशवाके सूबे ने उन्हें निर्वासित कर दिया है, अतः वे गढड़ामें रहते हैं। कलेक्टर साहब सज्जन पुरुष थे। उन्होंने स्वामीनारायणको पत्र लिख अहमदाबाद बुलाया और उन्हें मन्दिर बनानेके लिये विना मूल्य स्थान प्रदान किया। स्वामीनारायणने वहां एक भव्य मन्दिर बनवाया और उसमें नरनारायणकी मूर्त्तियां स्थापित कीं। वैसाही एक मन्दिर उन्होंने कच्छ भुजमें भी बनवाया और वहां भी नरनारायणकी ही मूर्त्तियां स्थापित कीं।

स्वामी नारायणने कितनेही चमारोंको अपना शिष्य बनाया यह देख उनके शत्रु बड़ी निन्दा करने लगे। वे कहने लगे, कि यह चमारोंके गुरु एवम् स्वयं भी चमार हैं। स्वामीनारायणके अन्यान्य शिष्योंसे उनकी निन्दा न सुनी गयी। उन्होंने स्वामी नारायणसे पूछकर उनके जन्मस्थानका पता लगा लिया। फिर दो साधु छपैया गये। वहांसे वे उनके दोनों भाई और मामा के लड़कोंको सपरिवार बुला लाये। उन्हें देख, शत्रुओंका मुंह बन्द हो गया और वे सदाके लिये झेंप गये।

वड़ताल नामक ग्राममें भी स्वामीनारायणने एक मन्दिर बनवाया और उसमें लक्ष्मीनारायणकी मूर्त्तियां स्थापित कीं। वहां एक जबर्दस्त डाकू रहता था। उसका नाम जोबनपगी था। लोग उसका नाम सुनतेही कांप उठते थे। स्वामीनारायणने उसे उपदेश दे सदाचारी बना दिया। उसने अपना वह निन्द्य व्यवसाय सदाके लिये परित्याग कर दिया।

संवत १८८१ में गवर्नर जनरलके और भारतीय ईसाइयोंके बड़े पादड़ी-राइट रेवरण्ड हेबर लार्ड विशप—गुजरात गये थे। नडियादमें उन्होंने स्वामीनारायणसे साक्षात् किया। उसका वर्णन उन्होंने अपनी प्रवासपोथीके दश पृष्ठोंमें लिखा है। वे लिखते हैं, कि कलेक्टर साहबने मुझसे कहा, कि स्वामीनारायणने इस जिलेमें बड़ा काम किया है। जङ्गली और असभ्य लोगोंको उन्होंने उपदेश दे सभ्य और सदाचारी बना दिया है, वे स्वयं नीतिमान हैं और जनताको भी नीतिमान बनानेकी

चेष्टा करते हैं। जहां उनके उपदेशका प्रभाव पड़ा है, वहांके लोग अन्यत्रके लोगोंसे अधिक शान्त और अधिक सभ्य हैं। सत्य और नीतिसे उन्हें बड़ा प्रेम है।

कलेक्टर साहबकी यह बातें सुन लार्ड बिशपने स्वामी-नारायणसे भेट की। जिस समय स्वामीनारायणसे उनकी भेट हुई उस समय घोड़ासरके महाराज अपने कुमार, दो सौ पैदल और दो सौ अश्वरोही सैनिकोंके साथ स्वामीनारायणके पीछे चल रहे थे। स्वामीनारायणका यह ठाट और सम्मान देख बिशप साहब दङ्ग रह गये। शिष्योंके विषयमें बातचीत चली, तब स्वामीनारायणने कहा, कि कच्छ काठियावाड़ और खानदेशके अतिरिक्त केवल गुजरातहीमें हमारे पचास हजार शिष्य हैं।

लार्ड बिशप इन बातोंका उल्लेख करते हुए लिखते हैं, कि स्वामीनारायणके साथ जो मनुष्य थे उनका स्वामीनारा-यणपर इतना अधिक प्रेम था, कि काम पड़नेपर वह उनके लिये प्राण भी दे सकते थे। विलायतका कोई पादड़ी यहां आकर इतना सम्मान और प्रेम सम्पादन करना चाहे तो उसे बहुत अधिक समय चाहिये।

स्वामीनारायण यदि सुधारकके नामसे सम्बोधित किये जायं तो अनुचित नहीं। उनके धर्ममें यह बन्धन न था, कि अमुक जातिके मनुष्यही उसमें सम्मिलित हो सकते हैं। उन का धर्म नीच ऊँच, अन्त्यज और अस्पृश्य जातियोंके लिये

समान रूपसे खुला हुआ था शूद्र और अज्ञानी मनुष्योंने उसे उदारताके साथ अपनाया। स्वामीनारायणको पहले अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा, किन्तु बादको अङ्गरेजी राज्य होनेपर वे आसानीके साथ अपना काम कर सके।

राजा राममोहनराय बङ्गालमें इसी समय धर्म्मसुधारकी चेष्टामें लगे हुए थे। किन्तु, उनकी और स्वामीनारायणकी कार्य्य प्रणालीमें बड़ा अन्तर था। राजा राममोहनराय ईसाई, मुसलमान और हिन्दुओंके साथ वादाविवाद और झगड़ा करते थे, किन्तु स्वामीनारायण बड़ी शान्ति और सरलतासे काम लेते थे। स्वामीनारायणका मूलमन्त्र था प्रेम। प्रेमहीके द्वारा उन्होंने अपने शिष्योंका हृदय जीत लिया था और प्रेमहीके कारण उन्हें अपने काममें सफलता प्राप्त हुई थी। राजा राम-मोहनरायके शिष्य उन्हें अन्तःकरणसे प्रेम न करते थे, किन्तु स्वामीनारायणके शिष्योंका स्वामीनारायणपर अटल विश्वास, अनन्यभाव और सच्चा प्रेम था।

बड़ौदा नरेशने भी स्वामीनारायणकी कीर्त्ति सुनी, उनके राज्यमें भी स्वामीनारायणके अनेकानेक शिष्य थे। उन्होंने उन्हें निमन्त्रण दे बड़ौदा बुलाया। स्वामीनारायण उस समय बड़तालमें थे। वहांसे वे बड़ौदा गये। महाराजने उनकी पूजा कर बड़ी अभ्यर्थना की। उन्होंने बड़ताल और अमदाबादके मन्दिरोंमें अपनी ओरसे नक्कारखाना बैठाया और एक एक हाथी दिया। इन सबका खर्च चलानेके लिये दो ग्राम भी

उन्होंने प्रदान किये। स्वामीनारायणने महाराजका आग्रह देख बड़ौदामें भी एक मन्दिर बनवाया और उसमें देव मूर्त्तियां स्थापित कीं।

हम पहलेही कह चुके हैं, कि स्वामीनारायणके दो भाई थे और उन्हें दो साधु छपैयासे स्वामीनारायणके पास बुला लाये थे। स्वामीनारायणने रामप्रतापके अयोध्याप्रसाद और इच्छारामके रघुवीर नामक पुत्रोंको गोद ले, अपने उत्तराधिकारी नियत किया। उन्होंने अपना शिष्य-संसार उत्तर और दक्षिण इन दो भागोंमें विभाजितकर उत्तर भाग अयोध्याप्रसाद को दिया और उसे अहमदाबादकी गद्दीपर अधिरूढ़ कराया तथा दक्षिण भाग रघुवीरको दे उसे वड़तालकी गद्दीपर प्रतिष्ठित किया। स्वामीनारायणके बाद उनके विस्तृत सम्प्रदायके यही दो जन आचार्य्य माने गये।

स्वामीनारायणकी शिष्य मण्डली तीन भागोंमें विभक्त है। इसे उस सम्प्रदायका जाति भेद कहना चाहिये। जो ब्राह्मण दीक्षित होते थे उन्हें स्वामीनारायण ब्रह्मचारियोंके दलमें रखते थे। क्षत्रिय और वैश्य शिष्योंका दल साधु नामसे सम्बोधित होता था और शूद्र, सेवक कहे जाते थे। अपने अपने दलका खानपान अलग है। सेवक किंवा शूद्र शिष्य साधुओंकी सेवा और मन्दिरोंकी रक्षा करते हैं।

सेवक सफेद कपड़े पहनते हैं। ब्रह्मचारी और साधु शिखा सूत्र और तुलसीकी दोहरी कण्ठी धारण करते हैं।

सेवक भी दाढ़ी मूछ नहीं रखते और ब्रह्मचारियोंकी ही तरह रहते हैं। स्वामीनारायणने अपने सम्प्रदायकी व्यवस्था स्मृतियोंके आधारपर की है। उनके मतानुसार कलियुगमें संन्यास धर्म्मका पालन नहीं किया जा सकता अतः कोई संन्यासी न हो। जिस आश्रममें जड़भरत थे, उसीमें इस सम्प्रदाय के साधु और ब्रह्मचारी रहते हैं। उन्हें कहीं अकेले जानेकी आज्ञा नहीं, अतः जहां जाते हैं वहां एकसे अधिक ब्रह्मचारी या साधु एक साथ जाते हैं। साधु और ब्रह्मचारियोंको धन लेना मना है। उनके साथ सेवक रहते हैं और कोई रुपये पैसे देता है तो वही ले लेते हैं। इन लोगोंने श्रुतिस्मृतिके वाक्योंका एक बड़ासा संग्रह कर रक्खा है। जब किसी दूसरे मतावलम्वीसे वादाविवाद होता है, किंवा कोई किसी प्रकारका प्रश्न करता है तब उसीके सहारे यह लोग उत्तर देते हैं। इस सम्प्रदायको उद्धवि सम्प्रदाय भी कहते हैं।

इस सम्प्रदाय वाले स्त्रियोंसे यथा साध्य दूर रहनेकी चेष्टा करते हैं। आचार्य्य गण आत्मीय स्त्रियोंके अतिरिक्त किसी स्त्री से सम्भाषण नहीं करते न उनसे चरणस्पर्शही कराते हैं। यदि भूलसे कहीं किसी स्त्रीके वस्त्रका भी स्पर्श हो गया तो वे उसके प्रायश्चित स्वरूप उसी दिन अखण्ड उपवास कर डालते हैं।

स्त्रियोंको यद्यपि दीक्षा दी जाती है, किन्तु स्वयं आचार्य्य उन्हें मन्त्रोपदेश नहीं देते। यह कार्य्य उनकी आज्ञासे उनकी स्त्रियां सम्पादित करती हैं। आचार्य्यकी यह स्त्रियां भी पति-

भिन्न पुरुषसे सम्भाषण नहीं करतीं और परदा रखती हैं। स्त्रियों-की सभामें स्त्रियां ही कथा पढ़ती हैं। वहां अबोध बालक-लड़-का तक नहीं जा सकता। उसी प्रकार पुरुषोंकी सभामें छोटेसे छोटी अवस्थावाली भी लड़की नहीं जा सकती। कहीं कहीं तो स्त्री और पुरुषोंके मन्दिर और उनके ठहरनेके स्थान ही भिन्न भिन्न बने हुए हैं। जहां एकही मन्दिर होता है वहां भी ऐसी व्यवस्था की जाती है, कि जिससे एक दूसरेका स्पर्श न हो।

वड़ताल और अहमदाबादमें इस सम्प्रदायके आचार्य्य रहते हैं। वहां एक एक संस्कृत पाठशाला भी है। उनमें विद्यार्थि-योंको निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। उनके ठहरने और खानेपीने का प्रबन्ध भी सत्संगहीकी ओरसे किया जाता है। शिक्षा देने के लिये अध्यापक रहते हैं और उन्हें वेतन दिया जाता है।

इस सम्प्रदाय वाले वल्लभाचार्य्यकी तरह शुद्धाद्वैत और सगुण भक्तिको मानते हैं। परमात्माको नारायण कहते हैं। लक्ष्मी उनकी पत्नी है। श्रीकृष्ण प्रभृति उनके अवतार हैं अतः उनकी मूर्त्तियां मन्दिरोंमें स्थापित कर उनकी पूजा करते हैं। (१) ब्रह्महत्या (२) सुरापान (३) चोरी (४) व्यभिचार और इन चार पातकोंके करनेवालोंका सङ्ग—यह पांच महापाप तथा निन्द्य कर्म्मोंसे दूर रहना कर्त्तव्य समझते हैं। कलियुग होनेके कारण, कहते हैं, कि पांचवा महापाप जो सांसर्गिक है—नहीं लगता अतः उसे नहीं मानते। स्वामीनारायणपर श्रद्धा रखते हैं और उनके नामकी माला फिराते हैं।

यही इस सम्प्रदायके सिद्धान्त हैं। स्वामीनारायण अपने शिष्योंको इन्हींकी शिक्षा देते थे। वे कहते थे, कि अफीम, गांजा और भांग प्रभृति नशीली चीजोंका सेवन दूसरे महा पापके अन्तर्गत है अतः सर्वथा त्याज्य है। अहिंसा धर्म-का पालन करना चाहिये। जल और दूध विना छाने न पोना चाहिये। रास्तेमें पड़ी हुई वस्तु न उठानी चाहिये। रिश्वत लेना एक प्रकारसे चोरी करना है अतः इसे भी महापाप समझना चाहिये। फल और फूल भी यदि उनका कोई स्वामी हो तो उसकी आज्ञा विना न लेने चाहिये। किसी स्त्रीसे उपहास करना, उसे कोई अपशब्द कहना या उसकी ओर बुरी नियतसे देखना चतुर्थ महापापके अन्तर्गत है अतः त्याज्य है। स्नान, ध्यान, दया और क्षमा इनका सर्वत्र और सर्वदा पालन करना चाहिये।"

इस सम्प्रदाय वाले आठ ग्रन्थोंको पवित्र मानते हैं। (१) चार वेद (२) व्याससूत्र (३) श्रीमद् भागवत (४) विष्णु सहस्रनाम (५) भगवद्‌गीता (६) स्कन्ध पुराणका वासुदेव महात्म्य (७) विदुरनीति (८) याज्ञवल्क्य स्मृति।

याज्ञवल्क्य स्मृतिके २१२ श्लोक शिक्षा-पात्रोंके नामसे प्रसिद्ध किये हैं। इस सम्प्रदाय वाले उसके अनुसार आचरण रखना लाभदायक समझते हैं। इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त व्यास-सूत्र भाष्य और सत्संग जीवन प्रभृति ग्रन्थ और भजन कीर्त्तन तथा पदोंका उनके धार्म्मिक साहित्यमें अच्छा संग्रह है।

स्वामीनारायणके उपदेशका उनके शिष्यों पर गहरा प्रभाव पड़ा और उनके द्वारा अन्यान्य लोगोने भी सदाचारकी शिक्षा प्राप्त की। संवत १८८६ में जिस समय उनका शरीरान्त हुआ, उस समय उनके सम्प्रदायमें १५०० परमहंस और दो लाखसे अधिक हरिभक्त थे। यद्यपि उनके सम्प्रदायका प्रचार गुजरात, खान देश, कच्छ और कठियावाड़के ही प्रदेशोंमें विशेष हुआ है, किन्तु उनका उज्ज्वल यश दिगदिगन्तमें व्याप्त हो रहा है। जिसने किसी न किसी प्रकार स्वदेश सेवा की और देशबन्धुओंको सन्मार्ग दिखाया, उसीका जीवन सफल है—वही संसारमें धन्य है।
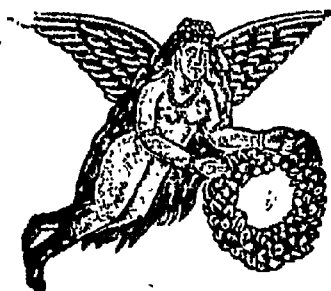
स्वामी दयानन्द ।

भारत भूषण महात्मा श्री शंकराचार्य्यके बाद वेद धर्मके उद्धारार्थ एक और महापुरुषका जन्म हुआ। वे थे स्वामी दयानन्द सरस्वती। उन्होंने अपनी जीवनीका कुछ अंश स्वयं लिखा है। उसका सारांश नीचे दिया जाता है।

"मेरा जन्म संवत १८८१ में, काठियावाड़के अन्तर्गत मोरबी राज्यके एक गांवमें एक औदीच ब्राह्मणके यहां हुआ था। मैंने पहलेहीसे अपने माता पिता और जन्म भूमिका नाम न बतलाना स्थिर कर लिया है, क्योंकि मेरे धर्म्मानुसार मुझे वैसा करनेका कोई अधिकार नहीं।"*

"पांचवर्षकी अवस्थामें मैंने देवनागरी लिपिका अभ्यास करना आरम्भ किया। इसी समयसे मेरे माता पिता मुझे कर्म्म-काण्डमें निपुण बनानेके लिये लम्बे लम्बे स्तोत्र और मन्त्र कण्ठ-स्थ कराने लगे। आठ वर्षकी अवस्थामें मेरा उपनयन संस्कार हुआ। इसके बाद मैंने सन्ध्यादिक नित्यकर्म्म, रुद्री अष्टाध्यायी और यजुर्वेद संहिताका ज्ञान प्राप्त किया। मेरे माता पिता शैव

---

* स्वामी दयानन्दका प्रकृत नाम मूलशंकर, पिताका नाम अम्बा-शंकर और जन्मस्थान टंकारा ग्राम बतलाया जाता है।

मतावलम्बी थे अतः उन्होंने मुझे मूर्त्ति पूजाकी भी शिक्षा दी। जिस समय मेरी अवस्था चौदह वर्षकी थी, उस समय समस्त यजुर्वेद संहिता व्याकरण और शब्द रूपावलीके कुछ अंशका ज्ञान मुझे प्राप्त हो चुका था।

"मेरे माता पिता, मेरी इच्छाके विरुद्ध, मुझसे व्रत, उपवास और पूजा पाठ कराते थे। किसी प्रकार उस बन्धनसे मुक्ति लाभ कर मैं अपना सारा समय विद्याध्ययनमें लगाने लगा। ऐसा करनेसे निघण्टु, निरुक्त, पूर्व मीमांसा, अन्यान्य शास्त्र तथा कर्म्म काण्डकी पुस्तकोंका अच्छी तरह मनन कर सका।"

"जिस समय मेरी अवस्था सोलह वर्षकी हुई, उस समय मेरी एक बहिनकी मृत्यु हो गयी। उस बहिन पर मेरी बड़ी प्रीति थी। मैं उसके वियोग-दुःखसे व्याकुल हो उठा। उसी समय मुझे ज्ञान हुआ, कि मानव जीवन क्षण भंगुर है। मनही मन मैं अखण्ड सुखकी प्राप्तिके साधन खोजने लगा। ज्यों ज्यों विचार परिपक्व होते गये, त्यों त्यों मैं कायाकष्ट छोड़ आत्मशोधनकी ओर अग्रसर होता गया। दोही बरस बाद मेरे एक पितृव्यका शरीरान्त हो गया। वे परम कृपालु थे और मुझ पर बड़ा प्रेम रखते थे। उनकी मृत्युसे मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। मैंने जान लिया, कि इस नाशवान जगतमें कुछ भी स्थिर नहीं है। अनित्य संसारमें जीना और तरह तरहकी चिन्ताओंमें मग्न रहना व्यर्थ है।"

"मैंने मनही मन अपना विवाह न करना स्थिर किया। यह

विचार मैं संकोच वश अपने माता पिता पर प्रकट न कर सका, साथही मित्रोंसे छिपा भी न सका। मित्रोंने सब बातें माता पितासे कह दीं। वे बीसही वर्षकी अवस्थामें मेरा विवाह करनेका विचार करने लगे। मैंने विद्योपार्जनके लिये काशी जाना चाहा, परन्तु उन्होंने शंकावश आज्ञा न दी।"

"मेरे ग्रामसे अनुमानतः चार कोसकी दूरी पर मेरे एक विद्वान मित्र रहते थे। मैं उन्हींके निकट सद्ग्रन्थोंका मनन करने लगा। जब मेरी अवस्था इक्कीस वर्षकी हुई, तब माता पिताने मेरा विवाह कर डालना स्थिर किया। अब मुझे प्रतीत हुआ, कि न अधिक समय तक विद्याभ्यासही कर सकूंगा, न ब्रह्मचर्य्य ही अखण्ड रह सकेगा। निदान मैंने विवाह कार्य्य में बाधा देनेका दृढ़ निश्चय किया।"

"संवत १९०३ की एक शामको बिना किसीसे कुछ कहे सुने मैं घरसे निकल पड़ा। निश्चय किया था, कि अब लौट कर घर न आऊंगा। मैंने सायलानिवासी लाला भक्तका नाम सुन रक्खा था। सुना था, कि वे महा विद्वान और परम भक्त पुरुष हैं। उनके धाममें मुझे केवल एक ब्रह्मचारी मिला। उसके कहनेसे मैं साधु हो गया। उसने मेरा नाम शुद्ध चैतन्य रक्खा और मुझे गेरुया वस्त्र पहनाये।"

"उसी वेशमें मैं अमहदाबादके समीप वर्ती कोठ गांगड़ नामक ग्राममें गया। वहां दैव योगसे मेरी एक परिचित मनुष्यसे भेट हो गयी। उसका आश्चर्य्य और मेरी घबड़ाहट—समान

थी। उसके पूछने पर घबड़ाहटहीमें मेरे हृदयकी सब बातें बाहर निकल गयीं। यह भी मैंने कह दिया, कि मैं सिद्धपुर जा रहा हूं। उसे मेरे आन्तरिक विचारोंका पता लगा। मैं इधर सिद्धपुर गया और उधर उसने मेरे पिताको पत्र लिख, उन्हें समस्त बातोंकी सूचना दे दी।"

"इधरसे मैं सिद्धपुर पहुँचा और उधरसे पिताजी आ पहुँचे। उन्होंने मुझे खोज निकाला। मेरे साधु-वेशको देख वे बहुतही बिगड़े। मेरा झब्बा फाड़ डाला और तुम्बीपात्र छीन कर फेंक दिया। अन्य उपाय न देख, मैं विनम्र हो पड़ा। मैंने पश्चाताप प्रकट कर उनके साथ घर जाना स्वीकार किया। ऐसा करने पर उनका क्रोध कुछ कुछ शान्त हुआ।"

"पिताजीके विचार तो परिवर्त्तित हो गये, किन्तु मेरे विचार ज्योंके त्यों बने हुए थे। मैं भाग निकलनेकी युक्ति सोचने लगा। एक दिन सब लोग सो रहे थे। रात्रिका समय था। अवसर देख मैं भाग निकला। पुनः पकड़े जानेकी चिन्ता थी, अतः कहीं दूर न जा कर पासहीके एक घटादार वृक्ष पर चढ़ बैठा।"

"सवेरा हुआ, किन्तु मैं वृक्षसे न उतरा। सारा दिन उसी पर बैठा रहा। मैंने देखा, कि चारों ओर मेरे पिता और उनके साथी मेरी खोज कर रहे हैं। सौभाग्य वश वे मुझे न देख सके। रात्रिको मैं नीचे उतर आया। इधर उधर घूमता और अपनेको छिपाता हुआ मैं अहमदाबाद होकर बड़ौदा जा पहुंचा।"

"बड़ौदामें मैं कुछ दिन रहा। वहां चेतन मठके मन्दिरमें ब्रह्मानन्द तथा कितनेही अन्य ब्रह्मचारियोंके साथ वेदान्त पर मैंने वादविवाद किया। ब्रह्मानन्दने "अहं ब्रह्मास्मि" यह मेरे हृदयमें अच्छी तरह जचा दिया। आत्मा और परमात्मा—जीव और शिव वस्तुतः दोनों एकही हैं यह मैं उसी समय जान सका अब भी मेरी मान्यता वैसोही बनी हुई है।"

"इसके बाद सच्चिदानन्द परमहंससे मेरी भेट हुई। मैंने निःसंकोच भावसे आत्मविद्या और अन्यान्य शास्त्रोंके विषयमें उनसे बातचीत की। वहांसे मैं चाणोद गया। वहां अनेक ब्रह्मचारी, विद्वान और संन्यासी रहते थे। सर्वप्रथम मुझे वहीं प्रकृत संन्यासी, योगशास्त्रके ज्ञाता और चिदाश्रम समान साधु पुरुष दृष्टिगोचर हुए। अनेक साधु, सन्त, संन्यासी और ब्रह्मचारियोंसे मेरी भेट हुई। अन्तमें, परमानन्द परमहंसके निकट मैंने अध्यन करना स्थिर किया।"

"परमानन्द परमहंसके निकट मैं कई मास रहा और वेदान्तसार, वेदान्त परिभाष्य, आर्य्य हरि मिढ़े तोटक तथा अन्यान्य तत्वबोधक ग्रन्थोंका मनन करता रहा। इस समय मैं ब्रह्मचारीकी अवस्थामें था। मुझे स्वयं अपना भोजन तय्यार करना पड़ता था। इसके कारण अध्ययनमें बाधा पहुंचती थी। मैंने इस बन्धनसे मुक्त होनेके लिये संन्यासाश्रममें प्रविष्ट होना चाहा। चेष्टा करने पर स्वामी पूर्णानन्द सरस्वतीने मुझे उसकी दीक्षा दी और मेरा नाम दयानन्द सरस्वती रक्खा।"

"दीक्षा लेनेके बाद मेरे गुरुदेव द्वारिका चले गये। मैं वहीं एक साधारण संन्यासीकी भांति काल क्षेप करने लगा। कुछ दिनोंके बाद योग सीखनेके लिये मैं व्यासाश्रम गया। वहां स्वामी योगानन्द रहते थे। उनके निकट योग विद्याका आरम्भिक ज्ञान प्राप्त कर फिर चाणोद लौट आया। चाणोदमें इस बार ज्वालानन्दपुरी और शिवानन्दगिरि नामक योगियोंसे भेट हुई। उन्होंने मुझे उसकी सम्पूर्ण शिक्षा दी और कितनेही रहस्य बतलाये। इस महान विद्याका जो कुछ मुझे प्राकृतिक ज्ञान है वह उन्हींकी कृपाका फल है।"

"इसके बाद मैं महान् योगेश्वरोंसे मिलनेके लिये आबू गया। वहां भवानीगिरि शिखरपर कितनेही योगियोंसे भेट हुई उनके निकट भी मैंने तद्विषयक कुछ शिक्षा प्राप्त की।"

"संवत १९११ में हरिद्वारमें कुम्भका मेला था। यह सुन कर कि वहां अनेक तत्ववेत्ता और महन्त एकत्र होते हैं, मैं हरिद्वार गया। चन्दीवनमें एकान्त देख मैं कई दिन वहां रहा और योग-क्रियाओंका अभ्यास करता रहा। मेलेके बाद ऋषिकेशके मकानमें भी मैंने कई योगी और संन्यासियोंके निकट क्रियायें कीं और कुछ सीखा।"

"हरिद्वार होकर मैं श्रीनगर गया। वहांसे इन्द्रप्रयाग, गुप्त काशी, गौरीकुण्ड और भीम गुप्तकी गुफायें देखता हुआ मैं बद्रीनाथ गया। इसके बाद मैंने अनेक स्थान देखे और अनेक ज्ञानी पुरुषोंसे भेट की।"

स्वामी दयानन्दने अपना इतना जीवन वृत्तान्त स्वयं लिखा है। शेष भाग उनके कार्य्योंको देख आसानीसे जाना जा सकता है। पाठकोंके हितार्थ उसका भी सारांश नीचे दिया जाता है।

भ्रमण करते हुए स्वामीजी काशी पहुचे। वहां उन्होंने वेद भाष्य, न्याय, दर्शन शास्त्र और शंकराचार्य्यके ग्रन्थोंका अभ्ययन कर उनमें कुशलता प्राप्त की। उन दिनों बङ्गालमें ब्रह्मसमाजका जोर था। स्वामीजीने देखा, कि उसके तत्व पश्चिमी सभ्यताके अनुकूल हैं। गुजरात और काठियावाड़ प्रभृति स्थानोंमें भ्रमण करते समय भी उन्होंने भिन्न भिन्न जातिके लोग अनेक प्रकारके मतपन्थ, तरह तरहके धर्म्माचार्य और नाना प्रकारके साधुसन्तोंको देखा था। देशकी धार्मिक और नैतिक दशा उन्हें शोचनीय प्रतीत हुई। पुनः भारतमें मूर्त्तिपूजा अनीति और अनाचारका मूलोच्छेद कर एक अनादि वेद, धर्म्म स्थापित करनेको ओर उनका चित्त आकर्षित हुआ। उनके हृदयमें देशाभिमान और स्वदेश प्रेम भरा हुआ था। उन्हें प्रतीत हुआ, कि जाति भेद, बाललग्न और देशाटन निषेध, यह धर्म्म विरुद्ध और देशको अवनतिके पारावारमें डुबोनेवाली बातें हैं। उन्होंने शास्त्र सम्मत वेदानुकूल एवं सत्य और प्राचीन धर्म्म स्थापित करनेके लिये अपना जीवन अर्पण कर दिया।

स्वामीजी संस्कृत हिन्दी और गुजराती भाषा बोलते थे। उनके शास्त्रार्थ संस्कृतमें और व्याख्यान हिन्दीमें होते थे। वे एक

अच्छे वक्ता थे। उनकी वक्तृतायें बड़ी सुन्दर होती थीं। विषयको तर्क वितर्क और उदाहरणोंके साथ वे इस प्रकार लोगोंको समझाते थे, कि उनके हृदयपर गहरा प्रभाव पड़े बिना न रहता था। उनकी वाणी प्रभावोत्पादक और जोरदार थी। चेहरा भव्य और गम्भीर था। बड़े बड़े विद्वान कटिबद्ध हो उनसे वादविवाद करनेके लिये आते, परन्तु उनका ज्ञान देखकर और उनके व्याख्यान सुनकर चुपचाप लौट जाते थे।

स्वामीजीके व्याख्यान सुननेके लिये हजारों मनुष्य और सैकड़ों पण्डित एकत्र होते थे, किन्तु उनकी बातोंका विरोध करनेका किसीको साहस न होता था। स्वामीजी व्याख्यान देते समय किसी प्रकारका भय और सङ्कोच न रखते थे। सहस्रावधि श्रोताओंमें चाहे वह राजा हों, चाहे धनी और चाहे उच्च पदाधिकारी हों—ऐसा मानकर कि मानो सब मेरे शिष्यही बैठे हैं, वे निर्भीकता, दृढ़ता, और गम्भीरताके साथ दो तीन घण्टे तक बराबर उच्च स्वरसे सिंहकी भांति गरजा करते थे। उनकी खण्डन शक्ति अपूर्व थी। बातोंमें गम्भीर हास्य और आर्य्याभिमानकी झलक रहती थी।

स्वामीजी वेद संहिताको प्रमाणिक मानते और उसे ईश्वरदत्त कहते थे। ब्राह्मणादिक अन्यग्रन्थोंको मनुष्य कृत और केवल साक्षीभूतही मानते थे। अङ्गरेजी और अरबीका उन्हें ज्ञान न था, किन्तु बाइबिल और कुरान प्रभृति ग्रन्थोंका उन्हें अच्छा ज्ञान था। जैसा उनका ज्ञान था वैसाही उनका अनुभव था।

फलतः वे प्रत्येक मतपंथका खण्डन करनेमें सफल होते थे। स्वामीजीके साथ कितनेही शिष्य भी रहा करते थे।

स्वामीजीको मूर्त्तिपूजाका विरोध करते देख, कितनेही लोग उनके विरोधी हो गये। काशीमें काशीनरेश जयकृष्णके सभापतित्वमें ८००—६०० पण्डितोंकी एक विराट सभा हुई। स्वामीजीने उसमें मूर्त्ति पूजाको वेद विरुद्ध सिद्धकर विजय प्राप्त की। इस बातसे चारों ओर उनका नाम हो गया, और अनेक लोग उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखने लगे।

विपक्षवाले शास्त्रार्थमें पराजित होनेके कारण स्वामीजीके शत्रु बन गये। वे उनके प्राण हरणकी चेष्टामें प्रवृत्त हुए। एक बार किसीने पानमें विष दिया, किन्तु तत्काल उपचार करनेसे रक्षा हुई। इसी प्रकार कानपुरमें चोरीका दोषारोपण कर वे फंसाये गये, किन्तु न्यायालयमें अभियोग असत्य प्रमाणित हुआ अतः वे छोड़ दिये गये।

कर्ण नामक ग्राममें भी एक चक्रांकित सम्प्रादायके मनुष्यने उनके प्राण-हरणकी चेष्टा की। स्वामीजी भस्म विलेपित दशामें योगासन लगाये हुए बैठे थे। हाथमें नङ्गी तलवार ले उसने कनातका पड़दा उठाया और अन्दर प्रवेश करना चाहा, किन्तु स्वामीजीकी भव्याकृति देख वह सहम उठा। उसे उनकी मूर्त्ति विकराल प्रतीत हुई। स्वामीजीने भी मरदानी भाषामें ऐसे जोरदार दो शब्द कहे, कि उसके हाथ पैर ढीले पड़ गये और उसने चुपचाप पलायन करनाही श्रेयस्कर समझा।

उन दिनों केशवचन्द्र सेन ब्रह्मसमाजके प्रधान आचार्य्य थे। स्वामीजीने उनके साथ पुनर्जन्म और वेदोंके विषयमें वादा विवाद किया था। स्वामीजी वेदको अनादि और ईश्वरोक्त मानते थे किन्तु केशवचन्द्रको यह स्वीकार न था। ब्रह्मसमाजी अपनी समाजका वार्षिकोत्सव मनाते थे। उसदिन वे जुलूस निकालते और बड़ी धूम मचाते थे। स्वामीजीने अपने और उनके मत भेद तथा उनके इस कार्य्योंकी बड़ी आलोचना की थी।

अनेक स्थानोंमें भ्रमण और प्रचार करते हुए स्वामीजी बम्बई पहुंचे। वहां भी उन्होंने मूर्त्ति पूजाका विरोध और खण्डन किया। एक भी पण्डित उनके सम्मुख न ठहर सका। उन्होंने प्रवास, बाललग्न, आचार्य्योंके अनाचार तथा भिन्न भिन्न मत पंथोंके विषयमें भी अनेक व्याख्यान दिये। लोग व्याख्यान सुन कर दङ्ग रह गये। स्वामीजी आर्यसमाजको स्थापना कर वहांसे सूरत और अहमदाबाद प्रभृति स्थानोंमें होते हुए राजकोट चले गये।

राजकोट काठिया वाड़का सबसे बड़ा शहर है। स्वामीजीने वहांके पण्डितोंको अपने पक्षमें कर वहां भी आर्यसमाजकी स्थापना की। इसके बाद वे उत्तर भारतकी यात्रा करने गये। लखनोऊ प्रभृति स्थानोंमें होते हुए वे लाहोर पहुंचे और वहां भी वैसेही प्रभावोत्पादक व्याख्यान दिये। वे खास कर मूर्त्ति-पूजाके विरोधी थे। पुनर्जन्मको मानते थे। पुनर्विवाहको नहीं

किन्तु नियोगको शास्त्र सम्मत बतलाते थे । बाल विवाह और अन्यान्य हानि कर प्रथाओंके तो वे कट्टर शत्रु ही थे।

हिन्दू समाजकी दशा क्यों बिगड़ी और उसकी जड़में कौन कौन रोग लगे हुए हैं—इस विषयका स्वामीजीको अच्छा ज्ञान था। इसी लिये समाजकी दशा कैसे सुधारी जा सकती है-यह वे अपने व्याख्यानोंमें बतलाया करते थे। वे चाहते थे, कि भिन्न भिन्न मत पन्थोंका नाश हो और पुनः भारतमें एक अनादि वेद धर्म्म प्रचलित हो। वे कहते थे, कि ऐसा हो जाने पर धार्म्मिक मतभेदके कारण जो वैमनस्य दिखाई देता है, वह नष्ट हो जायगा और समस्त जातियां, समूचा देश एक सुदृढ़-प्रेम सूत्रमें आवद्ध दिखाई देगा।

स्वामीजी बाल विवाह कट्टर विरोधी थे, कहते थे, कि बाल विवाहके कारण हमारी सन्तान, चौनी निर्बल और बुद्धिहीन होती जारही है। इसीके कारण विधवाओंकी संख्या बढ़ रही है और इसीके कारण हमारा पूर्व गौरव रसातलको चला जा रहा है।

स्वामीजी लोगोंको ब्रह्मचर्य्यके पालनका आदेश देते थे। वे कहते थे, कि ब्रह्मचर्य्यके पालनसे वीर्य्य वृद्धिगत एवं पुष्ट होता है और उसके कारण बलबुद्धि और सौन्दर्य्यमें वृद्धि होती है। स्त्रीको कमसे कम सोलह और पुरुषको चौबीस वर्षकी अवस्थामें विवाह करना चाहिये। अधिकसे अधिक स्त्रीका तीस और पुरुषका अड़तालिस वर्षकी अवस्थामें विवाह होना अनुचित नहीं।

स्वामीजी प्राचीन ऋषि मुनियोंके समयकी रीति नीति पसन्द करते थे। जाति-बन्धनको भी वे देशकी अवनतिका एक कारण समझते थे। लोग इस बन्धनके कारण देश-हितके कार्यमें ऐक्य और प्रेम पूर्वक पूर्ण रूपसे भाग नहीं ले सकते, यह देखकर स्वामीजीको बड़ा दुःख होता था। इसी लिये वे इसका जोरोंके साथ विरोध करते थे। उन्हें प्राचीनकालकी वर्ण व्यवस्था पसन्द थी। वे बराबर वर्णाश्रम धर्म पालनका लोगोंको उपदेश दिया करते थे। पञ्चयज्ञ, संस्कारादि कर्म, वेदाध्ययन और वेदोक्त एक ईश्वरकी उपासना करनेपर जोर देते थे।

साधारण धर्म्म प्रचार करनेके बाद स्वामीजीका चित्त देशी राज्योंकी ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने देखा, कि उनकी अवस्था शोचनीय हो रही है। वहां ईर्षा, द्वेष, आलस्य और व्यसनोंका प्राधान्य है। नरेश अज्ञानी और काठके पुतले हो रहे हैं। कर्म्मचारी और पदाधिकारी उन्हें इच्छानुसार नचाते हैं। वे नायिकाओंके मोह-जालमें उलझे हुए हैं। नायिकायें जो चाहें सो कर सकती हैं। उनके हाथमें अधिकार है। प्रजा पीड़ित है। राजाओंको अपने धर्म्मका ज्ञान नहीं—प्रभृति बातों को देख उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वे सर्वप्रथम मेवाड़ गये।

मेवाड़के राणाने उनका उपदेश बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे सुना। वहीं उन्हें जोधपुरके महाराजका निमन्त्रण मिला। निमन्त्रण स्वीकार कर वे जोधपुर गये। वहां भी उनके उपदे-

शका गहरा प्रभाव पड़ा। राजपुतानेमें एक प्रकारकी जागृति पैदा हो गयी। सभी नरेश धर्म्मानुसार प्रजा-पालन करनेकी चेष्टा करने लगे। उदयपुर और जोधपुरके महाराजे तो उन्हें अपना गुरु मानने लगे।

इस प्रकार स्वामी दयानन्दको सफलता मिली और देशी राज्योंमें वे सुधारका यत्किञ्चित बीज वपन कर सके, किन्तु भारतके दुर्भाग्यसे इसी चेष्टामें उन्हें अपने प्राणसे हाथ धोने पड़े।

जोधपुर नरेशके यहां एक नायिका रहती थी। स्वामीजीको किसी प्रकार उसका पता लग गया। उन्होंने महाराजसे कहा, कि यहां सिंह और कुतियोंका समागम होता है, अतः यह स्थान मेरे रहने योग्य नहीं।

महाराज स्वामीजीके इस कथनका तात्पर्य्य पहले न समझ सके। बादको उन्हें ज्ञान हुआ, कि यह बात स्वामीजीने मेरे और नायिकाके समागमको लक्ष्य करके ही कही हैं। उन्होंने तुरन्त क्षमा प्रार्थना की और उसी दिन उस वेश्याको छुट्टी दे दी।

वेश्याको यह जानकर, कि स्वामीजीनेही मेरा परित्याग कराया है, उनपर बड़ा क्रोध आया। वह सोचने लगी, कि यदि किसी प्रकार इस संन्यासीका नाश हो जाय, तो पुनः महाराज हाथमें किये जा सकते हैं। वह तदर्थ चेष्टा करने लगी, परन्तु तत्काल कोई फल न हुआ। स्वामीजी इस समय महाराजके भी महाराज हो- रहे थे। न उनपर बल प्रयोगही किया जा

सकता था, न वे समझा बुझाकर ही पक्षमें लिये जा सकते थे, न विरक्त होनेके कारण उन्हें किसी प्रकारका प्रलोभन ही दिया जा सकता था। अन्तमें उसने एक युक्ति की। स्वामीजीके रसोइयेको प्रलोभन दे उसने उसके द्वारा स्वामीजीको विष खिला दिया। बस यही उनके प्राणान्तका कारण हुआ।

स्वामीजीको तुरन्त इस घटनाका ज्ञान हो गया। उन्होंने रसोइये पर क्रोध न कर उसे क्षमा कर दिया। शिष्योंसे कहा, "संसारमें अभी और दश वर्ष रहनेकी मेरी इच्छा थी। मेरी धारणा थी, कि इसी प्रकार कार्य्य कर कुछ दिनमें पृथ्वी वेद-मय कर दूंगा, किन्तु अब मुझे शीघ्रही इस नाशवन्त शरीर और संसारका परित्यागकर परम पिताकी सेवामें उपस्थित होना पड़ेगा।"

"मैं इच्छानुसार संसारमें न रह सका, अतः मुझे खेद होता है—यह न समझना। मैं प्रसन्न हूं। मैंने अपना कर्त्तव्य पालन कर दिखाया है। कुछ अधिक कर दिखानेकी इच्छा थी, परन्तु प्रतीत होता है, कि परमात्माको वह स्वीकार नहीं। आप लोग खेद न करें। जिस पवित्र स्थानमें असत्य, अनाचार, अधर्म्म, अमङ्गल, अव्यवस्था, अन्याय, अनीति, अस्थिरता, और नाश किंवा परिवर्त्तन यह कुछ भी नहीं है, उसी तेजोमय पवित्र स्थानमें मैं निवास करने जा रहा हूं। हे बन्धुओ! इसमें दुःखकी बात कौन है? मेरा अन्तिम आदेश यही है, कि संसार भरमें विचरण करो, सर्वत्र पवित्र वेदकी स्थापना

करो, उसके रचियताका परिचय दो और मानव जीवनका उद्धार करो।"

इतना कह स्वामीजी जोधपुरसे निकल पड़े। आबूमें जाकर चिकित्सा करायी, परन्तु कोई लाभ न हुआ, अन्तमें संवत १९४० की दीपावलीके दिन अजमेरमें भारतका यह सौभाग्य रवि अस्त हो गया। उनके परलोक वाससे देशको जो क्षति हुई, वह अकथनीय है। मृत्युके समय उनकी अवस्था ५८ वर्षकी थी। उस समय भी अखण्ड ब्रह्मचर्य्यके कारण वे निरोग, सुदृढ़,और शक्ति सम्पन्न थे। उनके अन्तिम शब्द थे—"ईश्वरेच्छा बलियसी।"

स्वामीजीने देशी राज्योंको सुधारनेका कार्य्य उठाया था, किन्तु भारतके दुर्भाग्यसे यह काम अपूर्ण दशामेंही छोड़, वह परलोकवासी हुए। उन्हें अवनत भारतको पुनः उठानेकी बड़ी इच्छा थी। वे चाहते थे, कि भारतका उत्कर्ष हो—उसका पूर्व गौरव उसे पुनः प्राप्त हो। वे अपने व्याख्यानोंमें नीति, विद्या, व्यापार, कला और स्त्री शिक्षा, प्रभृति विषयोंका उपदेश देते थे। वे निरन्तर देशके हित चिन्तनमेंही लीन रहते थे।

स्वामीजीने जहां जहां व्याख्यान दिये थे, वहां वहां आर्य्य-समाजोंकी स्थापना हुई थी। आज उनकी संख्या एक हजार से अधिक होगी। कहते हैं, कि लण्डनमें भी उसकी एक शाखा है।

स्वामीजीने सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार पद्धति और आर्या-

र्षि विनय प्रभृति बीस ग्रन्थोंकी रचनाकी है। इसके अति-रिक्त आधे ऋग्वेद और पूरे यजुर्वेद पर उन्होंने भाष्य लिखा है। अपने जीवन कालमें उन्होंने ६२०० से अधिक संस्कृत और १८०० प्राकृत भाषाकी पुस्तकें पढ़ी थीं। वे किसीके गुरु होना न चाहते थे, तब भी उनके शिष्योंकी संख्या एक हजारसे कुछ अधिक है और उनके मतको माननेवाले तो लक्षावधि मनुष्य हैं।
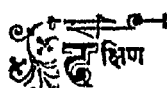
स्वामीजी, समस्त देशमें ऐक्य स्थापित करना चाहते थे। किन्तु अकाल मृत्युके कारण उनकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। इस समय उनके समान नर-रत्नका उत्पन्न होना कठिन है। स्वमत मण्डन और परमत खण्डनकी कलामें वे अद्वितीय थे। स्वामीजीकी बुद्धि ऐसी प्रबल थी, कि उनकी बातें सुननेवाले दङ्ग रह जाते थे। जब वे किसी मतका खण्डन करना चाहते, तब ऐसी युक्तिसे काम लेते कि सबके मुंह बन्द हो जाते। प्रश्नका निराकरण भी बड़ी चपलतासे, युक्ति, और तात्कालिक बुद्धिसे करते। सभी उनकी बातें सुन सन्तुष्ट हो जाते थे।

अङ्गरेजी शिक्षाके प्रभावसे जिनकी वेदोंपरसे श्रद्धा उठ गयी थी, वे लोग स्वामीजीके उपदेशसे वेदोंको मानने और स्वधर्मको पालने लगे। पादड़ियोंका जोर जाता रहा। लोगोंके हृदयमें देशा-भिमान उदय हुआ। प्राचीन कालका गौरव समझ पड़ा। मद्य मांस पर घृणा और नीति रीतिपर प्रेम उत्पन्न हुआ। सभी पुनर्जन्म, यज्ञ, कर्म्म और वर्णाश्रम धर्मके रहस्यको समझने लगे।

स्वामीजीके सिद्धान्त अत्युत्तम और उन्नतिकी ओर ले जाने वाले हैं। उन्होंने अपने घातकको क्षमादान दे अपनी अद्भुत क्षमाशीलताका परिचय दिया। ऐसी दया और क्षमता उन्हींमें देखी गयी। धन्य है ऐसे आर्य्याभिमानी धर्म्मवीर महापुरुषको! धर्म्मकी वलि-वेदीपर अपना प्राण न्यौछावर कर उन्होंने उज्ज्वल यश लाभ किया है। ईश्वर करे, सदा यहां ऐसेही महापुरुषोंका जन्म हो!

बसव ।

दक्षिण भारतके बागेवाड़ी नामक ग्राममें महादेव भट्ट नामक तैलङ्गी ब्राह्मण रहते थे। उनकी स्त्रीका नाम था मद्लम्बिका। वे निःसन्तान थे। जब उन्होंने अपने कुलदेव नन्दीनाथकी बड़ी सेवा की, तब उन्हें एक पुत्र हुआ। उन्होंने उसका नाम रक्खा बसव। तैलङ्गी भाषामें नन्दीकोही बसव कहते हैं।

बसवके बाद महादेव भट्टके दो कन्यायें और हुईं। उन्होंने एकका नाम रक्खा पद्मावती और दूसरीका नागलम्बिका। बसवकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। कुछही दिनोंमें उसने धर्म्म, ज्ञान प्राप्त कर लिया।

महादेवका अपने ग्राममें निर्वाह न चल सका अतः वे सकुटुम्ब कल्याणमें जाकर रहने लगे। कल्याणमें उन दिनों बोजल नामक राजा राज्य करता था। वह जैन मतावलम्बी था। उसके मन्त्रीका नाम था बलदेव।

जब बसवकी अवस्था आठ वर्षकी हुई, तब उसके पिताने उसका उपनयन संस्कार करना स्थिर किया। निर्दिष्ट तिथि पर अनेक ब्राह्मण और राज-पदाधिकारी निमन्त्रित किये गये और बसवको जनेऊ पहनानेकी तय्यारी की गयी। बसवने

उपस्थित जन समुदायके सम्मुख खड़े होकर कहा,—"मैं जनेऊ न पहनूंगा। जनेऊ पहनकर मैं अपनेको ब्राह्मण नहीं कहलाना चाहता। वर्ण भेद मिथ्या है। मैं शिव भक्त हूं। जाति बन्धनको निर्मूल करनेके लिये ही मेरा जन्म हुआ है।"

बसवकी यह बातें सुन सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। अनेक लोग समझने लगे, कि यह कोई अवतारी पुरुष है। उसके अद्भुत बुद्धिबलको देखकर बलदेव तो मुग्धही हो गया। उसने शीघ्र ही अपनी गङ्गादेवी नामक कन्याका विवाह उसके साथ कर दिया।

बसवकी नागलम्बिका नामक एक बहिनका विवाह एक ब्राह्मणके साथ हो चुका था। दूसरी पद्मावती अभी अविवाहिता थी। बसव जाति भेदको मानताही न था, अतः उसने उसका विवाह राजा बीजलके साथ कर दिया। इस सम्बन्धसे बसवको बड़ा लाभ हुआ। शीघ्रही राज्यके एक उच्च पदपर उसकी नियुक्ति हो गयी।

बसव स्वयं बुद्धिमान और चतुर था। राजमन्त्री उसका श्वसुर और राजा बहनोई होता था। अतः उसे अपनी उन्नति करते देर न लगी। कुछही दिन बाद बलदेवकी मृत्यु हो गयी। बीजलने वह पद भी बसवकोही प्रदान किया। बसव अब मन्त्री सेनापति और कोषाध्यक्ष बन गया।

इसी समय बीजलने एक अन्य रमणीका पाणिग्रहण किया। बसवपर उसका पूर्ण विश्वास था, अतः राजकाज उसीके आधार
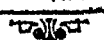
पर छोड़ वह नव-विवाहिता पत्नीके साथ सुख भोग करनेमेंही मग्न रहने लगा। यहांतक, कि उसने दरबारका आना जाना भी छोड़ दिया।

इस अवसरको प्राप्तकर वसव मनमानी करनेको प्रस्तुत हुआ। सर्व प्रथम उसने ऐसे पदाधिकारियोंको पदच्युत कर दिया जो उसके प्रतिकूल थे। उनके स्थानपर उसने विश्वासपात्र और स्वकीय मनुष्योंको नियुक्त किया। बड़े बड़े जमीन्दार और जागीरदारोंको भी उसने उनकी जमीन ज़ब्त करनेका भय दिखाकर अपने पक्षमें मिला लिया। जब कोई उसका विरोधी न रहा, तब उसने इच्छानुकूल मत प्रचारित करना स्थिर किया।

वसवके नवीन सम्प्रदायमें जाति-भेदके लिये स्थान न था। उसने बतलाया, कि जाति भेद व्यर्थ है। शिव और उनके वाहन नन्दी, यही दो उपास्य देव हैं। इनके अतिरिक्त अन्य किसीकी उपासना न करनी चाहिये। प्रत्येक मनुष्यको गलेमें शिवलिङ्ग धारण करना चाहिये। मांस खाना पाप है। ईश्वरको अर्पण किये बिना कोई वस्तु न खानी चाहिये।

वसवने अपने इस सम्प्रदायका प्रवेश द्वारा सबके लिये एक समान खुला रक्खा। सबको, चाहे वह अन्त्यज हो या ब्राह्मण, उसने एक समान समझा। निम्न लिखित सुविधाओंके कारण कर्णाटक प्रदेशमें उसका बड़ी शीघ्रताके साथ प्रचार हुआ।

(१) जातिभेद न माननेके अतिरिक्त उसमें और कोई बात ऐसी न थी, जो तत्कालीन ब्राह्मण धर्मके प्रतिकूल हो।

(२) वसवके अधीन शासनाधिकार था। वह जो चाहे सो कर सकता था।

(३) जातिभेद न रहनेके कारण शूद्र भी ब्राह्मणोंकी पंक्ति में बैठकर भोजन करने लगे। इसी लिये नीच जातिके लोग इसे अपनानेके लिये विशेष, रूपसे उत्साहित हुए।

(४) राजकोष वसवके अधीन था। उसमेंसे वह इच्छानुसार धन व्यय कर सकता था। जो लोग उसके सम्प्रदायको अपनाते, उन्हें वह बड़ी सहायता पहुंचाता। चोर, व्यभिचारी, दुर्व्यसनी और निष्कर्म्म मनुष्योंने इसी प्रलोभनके कारण उसका स्वीकार किया।

(५) ब्राह्मणोंकी सारी शक्ति इस समय जैन धर्मका विरोध करनेमें लगी हुई थी। उन्हें वसवकी ओर ध्यान देनेका अवकाशही न मिला। यदि वे ध्यान देते, तो इसे शीघ्रही छिन्न भिन्न कर डालते और इसका प्रचार पाना असम्भव हो जाता।

(६) अनेक मनुष्योंने यह बातें बीजलके कानतक पहुंचानेकी चेष्टा की, परन्तु बीजलने उनकी ओर ध्यान ही न दिया। फल यह हुआ कि वसवका गौरव उत्तरोत्तर बढ़ता गया और साथही उसके शिष्योंकी संख्यामें भी वृद्धि होती गयी। वसव अपने अनुयायियोंको मिष्टान्नकी दावतें दिया करता था, अतः लोभी, रस लोलुप और निर्धन मनुष्योंने उसे जी खोल कर अपनाया।

इन्हीं सुविधाओंके कारण बसवके अनुयायियोंकी संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती गयी। बसवने भी जाति बन्धनको छिन्न भिन्न कर अपनी इच्छा पूर्ण की। कई वर्ष व्यतीत हो गये, परन्तु बीजलके कानपर जूं तक न रेंगी। अन्तमें जब बसवके शिष्योंकी संख्या हजारों तक जा पहुंची, तब उसे चेत हुआ।

बीजलने बसवको कैद करना चाहा, परन्तु विचारको कार्य्य रूपमें परिणत करनेके पूर्वही बसवको इसका पता लग गया, अतः वह कल्याणसे अपना प्राण ले बाहर भाग निकला।

बीजलने सैन्य सह उसका पीछा किया। कल्याणमें बसव के १२००० अनुयायी थे। बसवको आपत्तिग्रस्त दशामें देख वे सब उसे जा मिले। बसवने उन्हें साथ ले बीजलकी सेनासे युद्ध करना स्थिर किया। युद्धमें बसवकी ही विजय हुई। बीजलको बुरी तरह लज्जित होना पड़ा।

बीजल और बसवमें पुनः सौहार्द स्थापित हो गया। वह उसे कल्याण लिवा ले गया और पूर्वकी ही भांति उसने उसे समस्त अधिकार प्रदान किये। बसव राजकाज तो पूर्ववत् करने लगा, किन्तु उसका दिल साफ न था। वह मनहीमन बीजलको मरवा डालनेकी युक्तियां सोचने लगा।

बीजलके एक छोटा पुत्र था। उसका नाम था वीर बीजल। बसव सोचता था, कि यदि बीजल मार डाला जाय, तो वीर बीजलके बड़े होनेतक बिना किसी आपत्तिके मनमाने काम किये जा सकेंगे।

कोल्हापुरके महामण्डलेश्वरने इसी समय विद्रोहका झण्डा खड़ा किया। बीजल उसे दण्ड देने गया। लौटते समय मार्गमें बसवके आदेशानुसार जगदेव, बोम्बीदेव और मालदेव नामक उसके तीन मशालचियोंने उसका काम तमाम कर डाला।

बसवने बीजलको मरवा तो डाला, परन्तु मरवानेके बाद वह इतना अधिक भयभीत हुआ, कि उसने कल्याणसे पलायन करना ही उचित समझा। भागकर वह वीरीशपुर पहुंचा और वहीं कालक्षेप करने लगा।

बसवको शङ्का थी, कि वीर बीजल अपने पिताका मुझसे कहीं बदला न ले। शङ्का नितान्त निर्मूल भी न थी। शीघ्रही वीर बीजलने प्रबल सैन्य ले वीरीशपुर पर आक्रमण किया। उसकी सेनाने नगरको चारों ओरसे घेर लिया। बसवको अब अपनी रक्षाका कोई उपाय न दिखाई दिया। उसने एक कुवेंमें गिरकर आत्महत्या करली।

यह समाचार सुनकर वीर बीजलने नगर प्रवेश किया। इसने कुवेंसे बसवका शव निकलवाकर गढ़के बाहर फिकवा दिया। उस दिनसे उस नगरका नाम "उलवी" पड़ा।

बसवके अनुयायी लिंगायत कहलाते हैं। उलवी को वे तीर्थ स्थान मानते हैं और वहां यात्रा करने जाते हैं। जैनमतके ग्रन्थोंमें ऐसाही वर्णन है। लिङ्गायत कहते हैं; कि बसवने आत्मघात नहीं किया। प्रभा और कृष्णा नदीके संगमपर संगमेश्वर नामक शिव लिङ्ग है, उसके शिरोभागमें एक गड्ढासा

है। वे कहते हैं, कि बसव इसी शिवलिङ्गमें प्रवेश कर लोप हो गये थे। उस गड्ढेको वे उसका प्रमाण बतलाते हैं।

बसवके लिंगायत मतका प्रचार दक्षिण भारतमेंही हो सका। उत्तर भारमें उसके अनुयायी नहीं पाये जाते। कर्णाटक, कानड़ा, हैदराबाद, मैसूर और बल्लारी प्रभृति प्रदेशोंमें उसका प्राधान्य है।

ब्राह्मण धर्म्म समस्त भारतमें फैला हुआ है। लिङ्गायत मत न वैसा प्रचारही पा सका, न उसमें वैसी योग्यताही है। ब्राह्म समाज और इस मतके अनेक सिद्धान्तोंमें साम्य है। जाति भेद, रजस्वलाकी छुआछूत और सूतक दोनोंही मतवाले नहीं मानते। कर्णाटकके लिङ्गायत और मध्वाचारी वैष्णव केवल द्वेष वश एक दूसरेको अपवित्र मानते हैं और स्पर्श हो जाने पर स्नान करते हैं। लिङ्गायत स्त्रियां मासिक धर्म्मके समय परहेज नहीं रखतीं और पतिका चरणोदक लिये बिना अन्न नहीं ग्रहण करतीं।

यह लोग शंकराचार्य्यके शुद्धाद्वैत मतको मानते हैं। शिव लिङ्गकी पूजा करते हैं और उसे शरीर पर धारण करते हैं। इसी लिये लिङ्गायत कहे जाते हैं। इस मतका दूसरा नाम जङ्गम संप्रदाय है। दक्षिणमें यह लोग वीर शैवके नामसे पुकारे जाते हैं। यह बसव पुराणको मानते हैं। इनमें त्यागी और गृहस्थ दोनों होते हैं। गृहस्थ भी लिङ्ग, भस्म, रुद्राक्ष, और त्रिपुंड धारण करते हैं। संस्कृत पढ़ने पर विशेष ध्यान देते हैं अतः इनमें संस्कृतके विद्वान अधिक पाये जाते हैं।

राजा राममोहनराय।

ब्राह्म समाजके स्थापक प्रसिद्ध विद्वान राजा राममोहनका जन्म राधानगर-बंगालमें हुआ था। जातिके वे राढ़ ब्राह्मण थे। उनके पिताका नाम रामकंठराय था। वे मुर्शिदाबादकी सरकारके यहां नौकर थे। रामकंठके पिता भी वहीं नौकर थे और उन्होंने नवाब सिराजुद्दौलाके समयमें महत्कार्य सम्पादित कर उज्ज्वल यश प्राप्त किया था। इन बातोंसे पता चलता है, कि राममोहनरायका खानदान बड़ा पुराना और प्रतिष्ठित था।

बड़े होने पर राममोहनरायने संस्कृत अङ्गरेजी, बङ्गला फारसी और हिन्दी प्रभृति भाषाओंका ज्ञान प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने नीति शास्त्र, न्यायशास्त्र, ज्योतिशशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र, पदार्थ विज्ञान, गणित और मानस शास्त्रका भी अध्ययन किया। फलतः वे एक महान विद्वान हो गये। उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। वे हिम्मतवान, उत्साही, परोपकारी और दयालु थे।

राममोहनरायकी मूर्त्तिपूजा पर श्रद्धा न थी। सोलह वर्षकी अवस्थामें उन्होंने मूर्तिपूजा निषेधक नामक ग्रन्थ प्रकाशित कर मूर्तिपूजाका विरोध किया। उनके इस कार्यसे

उनके पिता प्रभृति आत्मीय जन रुष्ट हो गये। अतः बीस वर्षकी अवस्थामें राममोहनरायको गृहत्याग करना पड़ा। कई वर्ष पर्य्यन्त वे काशी, प्रयाग, मथुरा, दिल्ली, अयोध्या, गया और तिब्बत प्रभृति स्थानोंमें भ्रमण करते रहे। अन्तमें पिताका पत्र पाकर वे लौट आये।

सन १८०३में उनके पिता और काकाकी मृत्यु हो गयी। इसके बाद उन्हें रङ्गपुरमें सिरिश्तेदारकी जगह मिल गयी। कुछ दिनोंके बाद नौकरी करते हुए उन्होंने थोड़ीसी जमीन मोल ले ली। उससे उन्हें दशहजार रुपये वार्षिककी आमदनी होने लगी। बादको नौकरी छोड़ कर वे कलकत्तेमें रहने लगे।

कलकत्तेमें आकर उन्होंने सुधार कार्य्य करनेकी चेष्टा आरम्भ की। चालीस वर्षकी अवस्थामें उनका यह उद्योग सफल हुआ। उन्होंने स्थिर किया था, कि धर्म्मोन्नति हुए विना नीति, राज्य प्रभृति विषयोंमें कदापि उन्नति नहीं हो सकती।

अपनी इस धारणाके वशीभूत होकर उन्होंने एक सहज, साधारण और सर्वमान्य धर्म्मकी स्थापना करना स्थिर किया। वे प्राचीन-वेदोपनिषद्के ब्रह्म धर्म्मकोही मान्य रखते थे। जन हितार्थ उन्होंने वेदान्त और केन तथा मुण्डक प्रभृति उपनिषदोंके बङ्गाली और अङ्गरेजी अनुवाद प्रकाशित कर विना मूल्य वितरित किये। इसी प्रकार क्रिश्चियन धर्म्म शास्त्रके व्यवहारोपयोगी भागसे भी कुछ वाक्य चुनकर पुस्तकाकार प्रकाशित

किये । इस पुस्तकका उन्होंने नाम रक्खा—सुख और शान्ति का मार्ग ।

सन १८२८ में अपने विचारानुसार उन्होंने ब्रह्मसमाजकी स्थापना की । प्रति बुधवारको उसके अधिवेशन होने लगे । उनके उपदेशके प्रभावसे शीघ्रही अनेक मनुष्योंने उसमें योग दिया । उन दिनों कलकत्तेके हिन्दुओंमें बाबू प्रसन्नकुमार और बाबू द्वारिकानाथ टागोर अग्रणी और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे । शीघ्रही वे दोनों जनभी ब्रह्मसमाजमें सम्मिलित हो गये । अब उसका कार्य्य सुचारु रूपसे चलने लगा ।

मतभेदके कारण कुछ दिनोंके बाद एक और धर्म्मसभा स्थापित हुई । वह ब्रह्मसमाजका विरोध करती थी । ब्रह्म-समाज और उसमें निरन्तर धार्म्मिक वादा विवाद हुआ करता था । ब्रह्म समाजने इन कठिनाइयोंका सामना करते हुए भी कई मार्के के काम किये, जिनसे हिन्दू समाजको बड़ा लाभ हुआ । उनमेंसे एक था-सती प्रथाको निर्मूल करना । राम मोहनरायने इसके लिये बड़ा उद्योग किया । उन्होंने तद्विषयक दो ग्रन्थ लिखे, अनेक व्याख्यान दिये और सरकारसे कानून बनवाया ।

इसी समय पार्लामेण्ट ईस्ट इण्डिया कम्पनीको नई सनद देने जा रही थी । उससे दिल्लीके बादशाहका मानभङ्ग होनेकी सम्भावना थी । बादशाहने उसके विरुद्ध अपील करना स्थिर किया । उन्होंने बाबू राममोहनरायको राजाकी उपाधि दे सम्मानित किया और अपना प्रतिनिधि नियत कर इंगलैण्ड भेजा ।

इंग्लेण्डमें राजा राममोहनरायकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई। कुछ दिन लिवरपुलमें रहकर वे लण्डन गये। लार्ड ग्रोहामसे उनकी बड़ी मित्रता हो गयी। सर जी० सी० हावहौस, बोर्ड आफ कंट्रोल सभाके सभापति थे। वे उन्हें अपने साथ दरबारमें लिवा ले गये। वहां महाराजने उनका बड़ा सत्कार किया और उनकी बातें बड़े ध्यानसे सुनीं। फिर राजा राममोहनराय वहांके निवासियोंको अपनी वक्तृताओंद्वारा भारत और उसकी जनताके शील स्वभावका ज्ञान कराने लगे।

राजा राममोहनराय स्पष्ट वक्ता थे। उनके व्याख्यान सुन कर लोग दङ्ग रह जाते थे। वहांकी अनेक सभासमितियां उन्हें निमन्त्रित करती थीं और लोग उन्हें अपने बीचमें पाकर बड़े प्रसन्न होते थे।

राममोहनरायने भारतके हितार्थ वहां भी एक पुस्तक प्रकाशित की। इसमें उन्होंने भारतीय जनताको उन्नत बनानेके लिये बहुत कुछ लिखा है। उनदिनों उनके समान भारत हितैषी और देशाभिमानी पुरुष और कोई न था। उन्होंने लोकहितके लिये बड़ी चेष्टा और बड़ा परिश्रम किया। सन् १८३२ में वे फ्रान्स गये। वहां भी उनकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई। स्वयं महाराजने उन्हें दो बार निमन्त्रित कर भोज दिया था। सन १८३३ में वे फिर वहांसे इंग्लेण्ड लौट गये। वहीं ब्रिस्टल नामक नगरमें ज्वरकी व्याधिसे उत्पीड़ित हो वह परलोकवासी हुए।

राजा राममोहनराय युरोप जानेके पूर्व अपने मित्रोंसे कहा करते थे, कि मेरी मृत्युके बाद हिन्दू, ईसाई और मुसलमान प्रत्येक जातिके मनुष्य मुझे अपने अपने मतका अनुयायी कहेंगे। उनका यह कथन, उनकी मृत्युके बाद सत्य प्रमाणित हुआ था।

राजा राममोहनरायने ब्रह्मसमाजकी स्थापना कर लोगोंको उपदेश देते हुए बतलाया था, कि परमात्माने जाति, पद और सम्पत्तिका भेद न रख मनुष्य मात्रके लिये क्षुधा, तृषा और मृत्यु प्रभृतिकी समान योजना की है अतः सबको समानता रखनी चाहिये। जाति भेद और मूर्तिपूजा व्यर्थ है। केवल एक निरंजन निराकार परमात्माकी उपासना करनी चाहिये। उपनिषद् और वेदान्तके अनुवाद तथा अन्यान्य ग्रन्थ प्रकाशित कर उन्होंने अपने इस मतकी पुष्टि की थी।

राजा राममोहनरायके युरोप जाने पर उनकी ब्रह्मसमाजमें विशृंखलता उत्पन्न हो गयी थी। उसका कार्य्य सुचारु रूपसे न चला कर पण्डित रामचन्द्र, उनके मित्र और शिष्योंने तत्व बोधिनी नामक सभा स्थापित की थी। उस सभाकी ओरसे वे उसी नामकी एक पत्रिका भी प्रकाशित करते थे। पत्रिकाका लोगोंमें अच्छा प्रचार था। अतः सभाके समासदोंकी संख्या भी अच्छी थी। सभाके अधीन एक पुस्तकालय भी था। राजा राममोहनरायके पुत्र बाबू रामप्रसादराय उस सभाके मन्त्री थे। यह सब होते हुए भी ब्रह्मसमाज और इस सभाकी

मान्यताओंमें अन्तर था। इस सभावाले राममोहनरायके वेदान्त मतानुसार ब्रह्मको न मानते थे उन्होंने जीवात्मा और परमात्मामें भेद मानकर स्थिर किया, कि जीवको ब्रह्मकी प्रेम पूर्वक स्तुति और भक्ति करनी चाहिये। मूर्ति पूजा और जाति भेदको इन्होंने भी व्यर्थ बतलाया। विशेषता यह हुई, कि इन्होंने नवीन विवाह व्यवस्था स्थिर कर अपनी समाजका नाम आदि ब्रह्म-समाज रखखा।

इस प्रकार मत भेदके कारण ब्रह्मसमाज कई शाखाओंमें विभक्त हो गयी और उसका गौरव नष्ट हो गया। फिर भी राजा राममोहनरायकी प्रशंसा तो हमें मुक्त कंठसे करनीही होगी। बङ्गालके आदि सुधारक वेही थे। उनकी सेवा और स्वदेश-भक्तिके कारण भारत उनका चिर-ऋणी रहेगा।

महावीर स्वामी।

परम पवित्र महात्मा महावीर स्वामी जैन धर्मके चौबीसवें तिर्थंकर १ गिने जाते हैं। उनका जन्म महात्मा पार्श्वनाथके २५० वर्ष बाद हुआ था। उनके पिताका नाम सिद्धार्थ २ और माताका नाम त्रिशला था। वे इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुए थे और पावन नामक प्रदेशपर राज करते थे। पहले अपने पुत्रका नाम उन्होंने वर्द्धमान रक्खा था, किन्तु बादको उसकी शक्ति देखकर वे उसे महावीरके नामसे सम्बोधित करने लगे थे।

१—जैन मतावलम्बी कितनेही सिद्ध पुरुषोंको देवता मानकर उनकी आराधना करते हैं। उन्होंने इस दुःख पूर्ण संसार-सागरको पार कर लिया है, अतः तीर्थंकर किंवा परागतके नामसे पुकारे जाते हैं। जैनोंका कथन है, कि दीर्घकालीन कठोर तपश्चर्य्यासे तीर्थंकरका पद प्राप्त होता है। सभी देव और मनुष्योंके लिये तीर्थंकर पूजनीय हैं। वे राग द्वेषादि रिपुओंपर विजय प्राप्त करते हैं अतः अर्हन्त किंवा जिनेश्वरके नामसे सम्बोधित किये जाते हैं। उनमें सर्वज्ञता, सर्वदर्शिता और आप्तता प्रभृति अनेक गुण होते हैं। अब तक ऐसे २४ तीर्थंकर उत्पन्न हो चुके हैं।

२—सिद्धार्थके श्रेयांश और यशस्वी तथा त्रिशलाके विदेहदिन्ना और प्रीतिकारिणी—यह नाम भी थे।

महावीरके काकाका नाम सुपार्श्व, ज्येष्ठ बन्धुका नाम नन्दवर्द्धन और बहिनका नाम सुदर्शना था। महावीरका विवाह यशोदा नामक वीर नगरकी राज-कन्याके साथ हुआ था। उसके उदरसे महावीरको एक कन्या-रत्नकी प्राप्ति हुई थी। उसका नाम अनोज्जा किंवा प्रियदर्शना रक्खा गया था। प्रियदर्शनाका विवाह उनके जुमति नामक एक शिष्यके साथ हुआ था। उसके औरससे उसे एक पुत्री हुई थी। उसके भी दो नाम रक्खे गये थे—शेषवती और यशोवती।

"कल्पसूत्र" नामक ग्रन्थमें महावीर स्वामीका विस्तृत और चमत्कार पूर्ण जीवन वृत्तान्त अङ्कित है। उसे देखनेसे ज्ञात होता है, कि वे महातेजस्वी, महाशक्तिमान, दयालु, क्षमा शील, धर्म्मनिष्ठ, और परम ज्ञानी पुरुष थे। अट्ठाइस वर्षकी अवस्थामें उनके माता पिताका शरीरान्त हो गया था। इसके बाद महावीरने दो वर्ष अपने भाईके साथ व्यतीत किये। तीस वर्षकी अवस्थामें उन्हें वैराग्य आ गया। वैराग्य आतेही उन्होंने सांसारिक माया मोह परित्याग कर संन्यासी हो वनकी राह ली।

वनमें जाकर वे घोर तप करने लगे। दीर्घकाल पर्य्यन्त उन्होंने उपवास किये और नासाग्र भागपर दृष्टि स्थिर कर—एकाग्र हो मौन धारण किया। उनकी यह तपश्चर्य्या देखकर गोशाल नामक मनुष्य उनका भक्त बन गया और निरन्तर उनके साथ रहने लगा। वह राजगृहके समीपवर्ती किसी ग्रामका निवासी था। उसका स्वभाव बड़ा चञ्चल था। वादाविवाद

करनेमें वह अद्वितीय था। उसने महावीर स्वामीके आदेशानुसार श्रावस्ती और वैशाली प्रभृति अनेक स्थानोंमें भ्रमणकर लोगोंको स्वमतानुयायी बनानेकी चेष्टा की।

इसके बाद महावीर स्वामी कौशांबी गये। उन दिनों वहां शतानिक नामक राजा राज्य करता था। उसने उनका बड़ा सत्कार किया। महावीरका उपदेश श्रवण कर अनेक मनुष्योंने उनका मत भी स्वीकार किया। महावीर स्वामी वहां बारह वर्ष पर्य्यन्त तप करते रहे। वहीं वे सांसारिक कर्मसूत्रसे मुक्त हुए और उन्हें दिव्य ज्ञानकी प्राप्ति हुई। इन्द्रिय और विषय वासनाओंपर विजय प्राप्त करनेके कारण वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बन गये और उनकी गणना जिनेश्वरोंमें होने लगी।

महावीर स्वामी जिस समय धर्म्म प्रचारार्थ कटिबद्ध हुए उस समय मगध देशमें वेदोंका प्रचार था। अतः उन्हें अनेक वेदानुयायी ब्राह्मणोंसे वादविवाद करना पड़ा। पराजित होने पर अनेक ब्राह्मणोंने उनके जैन मतको ग्रहण कर लिया, जिनमें गणाधिप और गणधर मुख्य थे। जैनी होकर उन्होंने उस धर्म्मके प्रचारार्थ बड़ी चेष्टा की थी। महावीर स्वामीके इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्म्म, पण्डित पुत्र, अकम्पित, अचलवृत, मैत्रेय और प्रभास—यह ग्यारह प्रधान शिष्य थे। किन्तु उनकी मृत्युके बाद इन्द्रभूति और सुधर्म्म यह दोही जीवित बचे थे। कल्पसूत्रका कथन है, कि समस्त यती और संन्यासी उन्हींके परम्परागत शिष्य हैं।

इन्द्रभूतिका दूसरा नाम गौतम था। नामोंमें साम्य देखकर जैन लोग गौतम बुद्धको महावीर स्वामीके शिष्य बतलाते हैं, किन्तु यह उनका भ्रम है। इन्द्रभूति गौतम मगध देशके वसुमति नामक ब्राह्मणका पुत्र था। गौतम गोत्री होनेके कारण उसकी संज्ञा गौतम थी। अग्निभूति और वायुभूति यह दो उसके भाई थे। जब महावीर मगधमें भ्रमण कर रहे थे, तब उन्होंने ब्राह्मण धर्म्म परित्याग कर जैन धर्म्मकी दीक्षा ली थी। उसे गौतम बुद्ध समझना भूल है।

व्यक्त और सुधर्मा यह दोनों भी ब्राह्मण थे और जैन धर्म्ममें दीक्षित होनेके पूर्व वेद धर्म्मका प्रचार करते थे। महावीर स्वामीके उपरोक्त सभी शिष्योंने उनसे घोर वादाविवाद किया था, परन्तु पराजित होने पर अन्तमें जैन धर्म्मको स्वीकार कर लिया था। महावीर स्वामीने उन्हें उपदेश देते हुए बतलाया था, कि ज्ञानका आधार इन्द्रियां नहीं हैं, क्योंकि इन्द्रियोंके नाशसे ज्ञानका नाश नहीं होता। कर्म्मकी सत्ता अवश्य माननी पड़ेगी क्योंकि पाप पुण्यके उत्पत्ति और पाप पुण्यादि कर्म्मोंका आधार स्वरूप जीव पदार्थ अवश्य है क्योंकि पाप पुण्यका फल भोगना पड़ता है। यदि जीव नहीं है तो यह फलाफल कौन भोगता है? परलोकका अस्तित्व भी अवश्य मानना पड़ेगा—इत्यादि।

इस तरह अनेक प्रकारके सन्देहोंको छिन्न भिन्न कर महावीर-स्वामीने वैदिक मतावलम्बी मनुष्योंके मन वशीभूत किये थे

और उन्हें अपना शिष्य बनाया था। उनके अनेक शिष्योंने भी जैन धर्मके प्रचारार्थ भगीरथ प्रयत्न करना स्थिर किया था।

महावीर स्वामी अहिंसाको परधर्म मानते थे। उनके मतानुसार मनुष्यको शारीरिक कष्ट सहन करना उचित है, किन्तु वैसा करते हुए उसे स्वयं अपने शरीरपर किसी प्रकारका अत्याचार न करना चाहिये। जिस प्रकार दूसरोंके प्रति सद्व्यवहार और अहिंसाका पालन करना धर्म्म है उसी प्रकार अपने निजी शरीरके प्रति भी सद्व्यवहार करना परम कर्त्तव्य है।

महावीर स्वामी अपने इस सिद्धान्तका अक्षरशः पालन भी करते थे। जब वे वज्रभूमि और शुद्धा भूमि प्रभृति स्थानोंमें धर्म्म प्रचार कर रहे थे, तब जङ्गली मनुष्योंने उन्हें मारा और अनेक प्रकारके कटु वचन कहे, किन्तु उन्होंने अम्लान बदनसे सब कुछ सहन किया। उनके मुख-मण्डलपर असन्तोष किंवा क्रोधका एक चिन्ह भी न दिखाई दिया। वे कहते हैं, कि सुनृत वाक्यके समान संसारमें एक भी वस्तु नहीं है। मनुष्यको सर्वदा सत्यभाषी होना चाहिये। असत्य विषके समान त्याज्य है।

लोगोंको सदुपदेश देते हुए वे बतलाते, कि संसार क्षेत्र विस्तृत और असीम है। हम उसकी जिस ओर दृष्टिपात करेंगे, उसी ओर वह हमें अनन्त और अपार दिखाई देगा। सर्वत्र हम माया मरीचिकादिसे प्रलोभित होंगे। जीवमें सदा

सर्वदा विवेक शक्तिका योग्य परिचालन करनेका और अव-हित चित्तसे कालयापन करनेका सामर्थ्य नहीं है। फलतः मायाके महाजालमें वह उलझ पड़ता है। मायाजालमें उलझने पर जीव पाप-पङ्कमें फंस जाता है और शनैः शनैः उसकी अवनति होती है। अतः यदि हमें अपनी उन्नतिकी आशा रखनी हो तो विवेक शक्तिसे काम लेना चाहिये और भलाबुरा समझनेका प्रयत्न करना चाहिये। विवेकही मायाजालको छिन्न भिन्न करनेवाला प्रखर अस्त्र है और विवेकही संसार-सागरसे पार लगानेवाली नौका है।

महावीर स्वामीने ३० वर्ष पर्य्यान्त संसार सुख भोग किये। १२ वर्ष तपश्चर्य्याकी और अन्तिम ३० वर्ष धर्मप्रचार के कार्य्योंमें व्यतीत किये। इसके बाद ७२ वर्षकी अवस्थामें अपापपुरी वर्त्तमान पावागढ़में ई० स० पू० ५२६ में समा-धिस्थ हुए।

जैन धर्म प्रवर्त्तक—जैन धर्मका मुख्य प्रवर्तक कौन था यह निश्चय करना कठिन है। कुछ लोग पार्श्वनाथ-को मानते हैं और कुछ लोग महावीर स्वामीकी पूजा करते हैं। जो लोग पार्श्वनाथको मानते हैं, वे उन्हें जैन धर्मका स्था-पक बतलाते हैं और जो महावीर स्वामीकी अर्चना करते हैं, वे उन्हे उस धर्मका प्रवर्तक मानते हैं।

जैन शास्त्रोंमें जिन वंशका वर्णन करते हुए बतलाया गया है, कि पार्श्वनाथ तेईसवें और महावीर स्वामी चौबीसवें अर्ह

न्त हैं। पार्श्वनाथने १०० वर्षकी अवस्थामें समेत शिखरपर और महावीरने ७२ वर्षकी अवस्थामें पावागढ़में मुक्ति प्राप्त की थी। * कल्पसूत्रानुसार इन दोनों घटनाओंके समयमें २५० वर्षका अन्तर है। पार्श्वनाथको माननेवाले साधु श्वेत वस्त्र धारण करते हैं और महावीर स्वामीको माननेवाले साधु दिगम्बर अर्थात् दिशारूपी वस्त्र धारण करते हैं। (नग्न रहते हैं) सम्प्रति दिगम्बर साधु रङ्गीन वस्त्र धारण करते हैं। इन दोनों दलोंमें पारस्परिक प्रेमका अभाव है। बल्कि महावीर स्वामीका सहकारी—गोशाल पार्श्वनाथके शिष्योंसे इस वस्त्र भेदके कारण वादाविवाद करता था।

जैन धर्म्मके आदि स्थापकका कुछ भी विश्वसनीय पता नहीं चलता। पार्श्वनाथके पूर्वसेही यहां जैन धर्म्म प्रचलित था। पार्श्वनाथने अपने बुद्धि बलसे उसका प्रचार कर ख्याति प्राप्त की। उनके बाद महावीर स्वामीने अपनी अतुल प्रतिभाके कारण अनेक शिष्य प्राप्त किये और लोगोंको उपदेश दिया। इस प्रकार सम्प्रदाय भेदसे दो जैन धर्म्म प्रवर्त्तक हुए, किन्तु वास्तवमें वे जैन धर्म्मके स्थापक न थे। उन्हें हम उस धर्म्मके प्रचारक कह सकते हैं। जिस प्रकार बौद्ध धर्म्मके स्थापक

* गुजरातके भद्रनाथ नामक पुरुषने ई० स० ४११ में कल्पसूत्रकी रचना की थी कल्पसूत्र जैन शास्त्रोंका शिरोभूषण है। जैनोंका वह परम आदरणीय और पूजनीय ग्रन्थ है। जैनोंके अन्यान्य धर्म्म ग्रन्थोंकी भांति कल्पसूत्र भी प्राकृत—मागधी भाषामें लिखा हुआ है।

-बुद्धदेव थे, उस प्रकार जैन धर्मका स्थापक कौन था, यह मा-लूम नहीं होता।

सम्प्रदाय भेद—यहां जैनोंके सम्प्रदाय भेदका कुछ विवरण दे देना अनुचित न होगा। जैन दिगम्बर और श्वेता-म्बर नामक दो सम्प्रदायोंमें बटे हुए हैं। जो वस्त्र न पहनते थे वह दिगम्बर कहे जाते थे। दिगम्बर अपनेको महावीर स्वामीके शिष्य बतलाते हैं। इस समय वे रक्ताम्बर किंवा रक्तपटके नामसे सम्बोधित किये जाते हैं, क्योंकि अब वे रङ्गीन वस्त्र धारण करते हैं।

दिगम्बर जैन तिर्थकरोंकी मूर्त्तियोंको वस्त्रालङ्कारसे भूषित नहीं करते। वे १६ प्रकारके स्वर्ग और १०० प्रकारके इन्द्रोंका अस्तित्व मानते हैं। देशाटन करते समय एक जल-कमण्डल और समार्ज्जनी अपने साथ रखते हैं। कहीं भूलसे जीवहिंसा न हो जाय यह सोचकर वे उस समार्ज्जनीसे भूमिको साफ कर-नेके बादही वहां बैठते हैं और दूसरेके दिये हुए जलमें जीवहिंसा की संभावना मानकर अपने कमण्डलकाही जल काममें लाते हैं। दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ऐसेही नाना प्रकारके भेद हैं।

आचार विचार—जैन पूजा यती और श्रावक इन दो विभागोंमें विभक्त हैं। यती उदासीन और योगी होते हैं। वे किसी प्रकारका व्यवसाय करनेकी इच्छा नहीं करते। भिक्षा-टन ही उनकी आजीविका है। स्त्रियोंके सहवासको वे धिक्का-

रते हैं और निर्जन प्रदेशमें मठ बनाकर उनमें निवास करते हैं। "अहिंसा परमो धर्म" इस मतको वे बड़े आडम्बरके साथ दिखलाते हैं और बैठनेके स्थानको झाड़ूसे साफ कर लिया करते हैं। जैन मन्दिरोंमें वे कदापि पुरोहित नहीं होते। पुरोहितों का काम वे ब्राह्मणोंसे कराते हैं। जैन मन्दिरोंमें धर्म्म शास्त्र पढ़नेके अतिरिक्त वे अन्य प्रकारके पूजादि कार्य्य नहीं करते।

श्रावक संसारी होते हैं। वे यतियोंको भिक्षा देते हैं और पार्श्वनाथ तथा महावीरकी विशेष रूपसे पूजा करते हैं। गृहस्थाश्रमी होनेके कारण श्रावक सांसारिक कार्य्योंमें लगे रहते हैं, किन्तु यती संसार त्यागी, संन्यासी, स्वल्पाहारी और सहनशील होते हैं। वे गृहस्थाश्रमका त्यागकर यतीके वर्गमें प्रविष्ट होते हैं। यती देव प्रार्थना, पूजापाठ प्रभृति कुछ भी नहीं करते। श्रावक गण प्रतिष्ठित तिर्थंकरोंकी पूजा करते हैं और कितनेही हिन्दुओंके अन्यान्य देवताओंको भी मानते हैं। इतनाही नहीं, बल्कि वे हिन्दुओंके अनेक जाति भेद और आचारोंका भी पालन करते हैं। वे जीवहिंसा नहीं करते और सालमें अमुक दिन नमक, खटाई, मिठाई, फल मूल किंवा कन्द प्रभृति पदार्थोंको काममें नहीं लाते। नीतिशास्त्रके पांच नियमोंका वे विशेष रूपसे पालन करते हैं। वे यह हैं—(१) जीव हिंसा न करनी (२) सर्वदा सत्य बोलना (३) स्वभावको सरल और अच्छा बनाना (४) पति और पत्नीको परस्पर विश्वास रखना और (५) पार्थिव वासनाओंका दमन करना।

जैनोंमें मतभेद—महावीरके बाद ८ पुरुष ऐसे हुए जिनका धर्मके विषयमें परस्पर मतभेद था। जैन लोग उन्हें निन्हवके नामसे सम्बोधित करते हैं। आठवें निन्हवका नाम बोटिक शिवभूति था। उसने दिगम्बर मत प्रचलित किया, श्वेताम्बरोंका कथन है, कि उसके पूर्व सभी जैन श्वेताम्बर थे। अर्थात् श्वेताम्बर सम्प्रदाय दिगम्बरकी अपेक्षा अधिक प्राचीन है। इसके विपरीत दिगम्बर अपनेको प्राचीन और श्वेताम्बरोंको अर्वाचीन बतलाते हैं।

दिगम्बर साधु रङ्गीन वस्त्र धारण करते हैं। अञ्जलीमें लेकर जलपान करते हैं। आचार पालनेमें बड़े नियमित रहते हैं और कष्ट सहन करते हैं। ये बुद्धको मानते हैं, अर्हन्तको नहीं। बादको उनमें भी अनेक भेद हो गये हैं।

श्वेताम्बर श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। उनमें भी पुनंमिया प्रभृति अनेक भेद हो गये हैं। अभी कुछ ही दिन हुए उनमें और भी भेद हो गये हैं। अहमदाबादके लुपक नामक एक लेखकने १५३४ में एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय स्थापित किया था।

जैनोंमें मूर्त्तिपूजाका प्रचार आदिसेही है। वे तिर्थकरोंको मूर्त्तियां स्थापितकर उनकी पूजा करते हैं। जप, कथा और व्याख्यान प्रभृतिको मानते हैं।

लुपकके अनुयायी यह कुछ नहीं मानते। उनकी शिष्य परम्परामें बजरंग नामक एक मनुष्य हुआ। सूरतके लवजी नामक मनुष्यने प्रथम उसके निकट दीक्षा ग्रहण

की, किन्तु बादको उसने पृथक हो अपना नवीन मत प्रचलित किया। उसके अनुयायी हिंसाके भयसे मुख पर पट्टी बांध रखते हैं।

लवजीकी शिष्य परम्परामें धर्म्मदास नामक मनुष्य हुआ उसने ढूंढिया पंथकी स्थापना की। ढूंढिया लोग पूजा और व्याख्यान प्रभृति बाह्यचारको विशेष नहीं मानते, किन्तु अहिंसा धर्मका पालन बड़ी तिव्रताके साथ करते हैं। उसके भी तेरा पंथी और बीस पंथी नामक दो भेद हैं। तेरा और बीस पंथी बाह्याचारके अतिरिक्त गुरुको भी नहीं मानते। श्वेताम्बरोंके शास्त्रमें इन सबोंका पर्य्याप्त वर्णन अङ्कित है। प्रत्येकके मत और सिद्धान्त एक दूसरेसे भिन्न हैं। विस्तार भयसे हम यहां उनका उल्लेख नहीं कर सकते।

जैन लोग सृष्टिकालको तीन भाग किंवा युगोंमें विभक्त करते है। वे २४ जिनोंकी आराधना करते हैं। धर्म्मनिष्ठ एवम् सिद्ध महापुरुषोंको वे जिन कहते हैं। उनका कथन है, कि भूतकालमें २४ जिन होचुके हैं। वर्त्तमान युगमें भी २४ हुए हैं और भविष्यकालमें भी २४ होंगे। मन्दिरोंमें वे उन्हींकी मूर्त्तियां स्थापित कर पूजते हैं।

चार्वाक ।

इस देहात्मवादी नास्तिकका जन्म सांख्य और बौद्ध मतके पूर्व कलियुगके आरम्भमें हुआ था। भारतके छः नास्तिकोंमें सर्व प्रथम होनेके कारण यह नास्तिक शिरोमणि कहा जाता है। कहते हैं, कि दैत्योंको नष्ट भ्रष्ट करनेके उद्देश्यसे बृहस्पतिने इस मतका बीजारोपण किया था (देखो बृहस्पति चरित्र) उनके उपदेशको सत्य मानकर विरोचन नामक दैत्यने उसके सिद्धान्त निश्चित किये और कुछ दिनोंके बाद चार्वाकने उन्हीं सिद्धान्तोंका प्रचार किया।

चार्वाकका जन्म कलिकालके आरम्भमें हुआ था। उसके पिताका नाम इन्दुकान्त और माताका नाम अग्विण था। वह क्षिप्रा और चम्पल नदीके संगम पर शंकोद्धार नामक क्षेत्रमें निवास करता था। उसने नास्तिक ग्रन्थोंकी रचना कर वेदोंका विरोध करते हुए कुतर्क प्रसिद्ध किये। इसके पूर्व सभी वेदानुयायी थे और किसीने कभी वेदोंका विरोध न किया था। वेद विरोधियोंमें चार्वाकही सर्व प्रथम था। वह वेद, कर्म, ज्ञान और पुनर्जन्म प्रभृति बातोंको मानता न था।

चार्वाकने अपने मतका प्रचार करते हुए लोगोंको बतलाया,

कि वेदोंकी रचना ठग, धूर्त और निशाचरोंने की है। वेदोक्त कर्म्म भी वैसेही हैं। अग्नि होत्र और यज्ञ यागादिक कर्म्म द्रव्य नाशक और कष्ट साध्य हैं। बुद्धि और पराक्रम लोगोंकी जीविकाके लियेही उनकी सृष्टि हुई है। यज्ञमें पशुको मारनेसे यदि उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है, तो यजमान अपने पिताको मारकर उसेही स्वर्ग क्यों नहीं भेजता? यदि श्राद्धमें पिण्ड-दान करनेसे पितृ तृप्त हो सकते हैं तो प्रवासीको अपने साथ भोजन सामग्री क्यों रखनी चाहिये? घरमें बैठकर उसके लड़के पिण्डदान कर दें तो क्या वह तृप्त नहीं हो सकता? यदि इह-लोकमें दिया हुआ अन्न प्रभृति वस्तुओंका दान उस लोकके मनुष्योंको मिल सकता है तो मकानकी छत पर बैठे हुए मनु-ष्योंको नीचेसे भोजन क्यों नहीं पहुचाया जा सकता? यदि देहसे आत्मा भिन्न है और वह स्वर्ग चला जाता है तो इष्ट मित्र और स्नेहियोंके वियोग दुःखसे व्याकुल होकर पुनः क्यों नहीं लौट आता? इन सब बातोंसे मालूम होता है, कि श्राद्ध, तर्पण और दानादि कर्म्म व्यर्थ हैं। परलोक कोई चीज़ नहीं है। देह भिन्न कोई आत्मा नहीं है न वह परलोकही जाता है।

चार्वाकने इसी प्रकार अनेक बातोंकी चर्चा की। उसने लोगोंको समझाया, कि जगत अनादि है और स्वतः उत्पन्न हुआ है। पृथ्वी जल, वायु और अग्नि इन चार भूतोंके तत्व मिल-नेसे यह देह और सृष्टि उत्पन्न हुई है। यह तत्व स्वतः और स्वभावतः सृष्टिकार्य्य करते हैं। जिस प्रकार कत्था, चूना और

पानका संयोग होनेपर लाल रंग उत्पन्न होता है, जैसे दो पदार्थों के संघर्षणसे बिजली उत्पन्न होती है, वैसेही चार तत्वों-के संमिश्रणसे शरीरमें जीवरूपी चैतन्य शक्ति उत्पन्न होती है। यह जीव किंवा चैतन्य शक्ति जड़ तत्वोंसे भिन्न नहीं है। जगत कर्त्ता ईश्वर, देव किंवा प्रजापति प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देते अतः सिद्ध नहीं हो सकते। जो शरीर नष्ट हो जाता है, वह पुनः नहीं प्राप्त होता। अतः पुनर्जन्म कोई चीज नहीं है।

देह धारणके लिये कर्म्मकी आवश्यकता है, यह सिद्ध नहीं होता, क्योंकि कर्म्मके विषयमें कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता। केवल अनुमान है, परन्तु अनुमानका कोई मूल्य नहीं। संसा-रमें एक रोगी, दूसरा निरोगी, एक निर्धन दूसरा धनवान, एक सुखी दूसरा दुःखी इत्यादि जो दिखाई देता है सो जगत्‌की स्वाभाविक उत्पत्तिकी विचित्रता मात्र है। जिस प्रकार स्वभा-वतः ऊष्णता और जल किंवा वायुमें शीतलता दिखाई देती है उसी प्रकार मनुष्योंमें सुख दुःख और धन प्रभृति बातें दिखाई देती हैं। इसे हम कर्म्मका फल नहीं कह सकते।

हम लोग शरीरके विषयमें "मैं" और "मेरा" का प्रयोग करते हैं अतः प्रतीत होता है, कि "मेरा" कहने वाला कोई दूसरा है, परन्तु वास्तवमें वैसा कुछ भी नहीं है। कर्म्म करना और वर्णभेद पालना व्यर्थ है। देहही आत्मा है, अतः उसे सुखी रखना चाहिये। इस संसारमें जब तक रहो तब तक खाते, पीते और आनन्द करते रहो। यही परम सुख है। यही स्वर्ग

है। इसके अतिरिक्त और कहीं कोई स्वर्ग नहीं। कष्ट भोगना और दुःख सहना यही नरक है। सबको आजीवन सुखी रहनेकी चेष्टा करनी चाहिये। ऋण लेकर भी मिष्ठान्न खाना चाहिये, क्योंकि पुनर्जन्म नहीं है। अतः ऋण न चुकाया जाय तो कोई चिन्ता नहीं।

जो लोग स्वर्ग प्राप्तिके लिये कष्ट सहन करते हैं, वे वास्तवमें नरक भोगते हैं। लोक प्रिय नरेशही ईश्वर है। उसकी आज्ञा शिरोधार्य्य करना यही धर्म्म है। मृत्युही मोक्ष है, क्योंकि पुनः इस संसारमें आना नहीं हो सकता। शरीर पिञ्जर नष्ट होतेही चार भूतोंके तत्व अपनी अपनी जातिमें सम्मिलित हो जाते हैं और जीव चैतन्य उन तत्वोंमें मिल जाता है। इस संसारमें जो प्रत्यक्ष है, वही सत्य है। अप्रत्यक्ष पर विश्वास न रक्खो। प्रत्यक्षही महत् प्रमाण है। यदि इन सिद्धान्तोंको कोई अनुमानादि प्रमाणोंसे असत्य प्रमाणित करनेकी चेष्टा करे तो उसे मैं (चार्वाक) मान नहीं सकता। मुझे केवल प्रत्यक्ष प्रमाण ही मान्य है।

यही चार्वाकके उपदेशका सार और उसके मतका निचोड़ है। वह अर्थ और काम यही दो पुरुषार्थ मानता था। अर्थ अर्थात् द्रव्यादि पदार्थोंका हरण करना और काम अर्थात् स्त्री संभोगादि सुख प्राप्त करना। चार्वाकने अनवरत परिश्रम कर उपदेश द्वारा समस्त भारतमें अपने इन मन्तव्योंका भली भांति प्रचार किया।

इस मतवाले चार्वाक लोकायतिक किंवा नास्तिक नामसे पुकारे जाते हैं। इनमें कुछ दिनोंके बाद ४ भेद हो गये (१) देहको आत्मा माननेवाले (२) इन्द्रियोंको आत्मा माननेवाले (३) प्राण वायुको आत्मा मानने वाले और (४) मनकोही आत्मा मानने वाले।

चार्वाकका उपदेश सुनकर अनेक भारतवासी भ्रमित हो गये। अनेक मनुष्योंकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। अनेक स्त्री पुरुष स्वतन्त्रता पूर्वक इच्छअनुसार आचरण और कुकर्म करने लगे। देशमें मांसाहार, चोरी, हत्या, व्यभिचार, प्रपञ्च षड्यन्त्र, प्रभृति अनाचारोंकी सीमातीत वृद्धि हो गयी लोग दुःखी होने लगे। फलतः कुछ दिनोंके बाद आपीआप वह नष्ट हो गया। भारतकी अधिकांश आस्तिक और वेदानुयायी प्रजाको यह धर्म्म पसन्दही न आया। आज भारतमें चार्वाकके अनुयायियोंका कहीं पता नहीं। वेदोंकी पवित्र शिक्षाके सामने चार्वाककी शिक्षा अधिक दिनोंतक न ठहर सकी। शीघ्रही भगवान बुद्धदेवका प्रादुर्भाव हुआ और उनकी शिक्षाने पुनः भारतीय जनताके हृदयोंको आलोकित कर दिया। यद्यपि आज हम लोग बुद्धदेवकी पवित्र शिक्षाको भी भूल गये हैं, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं, कि नास्तिक मतको छिन्नभिन्न कर अनाचारमें प्रवृत्त लोगोंको पवित्र और सदाचारी बनानेका श्रेय उन्हींको प्राप्त है।
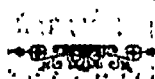
द्वितीय खण्ड ।

सिद्ध और अवधूत योगी ।

गुरु मच्छेन्द्रनाथ

मच्छेन्द्रनाथ सिद्ध योगी थे। उनके जन्मके विषयमें एक अलौकिक कथा प्रचलित है। कहते हैं, कि एक समय क्षीर सागरके तटपर सदाशिव महासती पार्वतीको महाज्ञानका उपदेश दे रहे थे। वह उपदेश एक मगरमच्छके गर्भस्थ बालकने सुना। जन्म होनेके साथही वह महाज्ञानी पुरुष हो गया। मच्छके उदरसे उत्पन्न हुआ, अतः उसका नाम मच्छेन्द्रनाथ पड़ा।

मच्छेन्द्रनाथकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। वे चञ्चल, विद्वान, महाज्ञानी, जितेन्द्रिय, तत्ववेत्ता, और सिद्ध पुरुष थे। उन्होंने सप्तशृङ्ग पर्वत पर चौरङ्गीनाथके निकट ब्रह्मविद्या और योगका उपदेश ग्रहण किया था। वे महायोगी पुरुष थे। अनेकानेक शिष्य उनके निकट अध्ययन और योगाभ्यास किया करते थे।

वे हठयोगमें बड़े प्रवीण थे। अपने शिष्योंको भी उन्होंने अपने ही समान प्रवीण बना दिया था। शिष्यमण्डली सह वे सर्वत्र भ्रमण किया करते थे। कभी कभी वे किसी रमणीय वनमें आश्रम स्थापितकर वहां रहने लगते, और कभी कभी पर्वतोंकी गुफाओंमें धूनी रमाकर अखण्ड ज्योतिमें लीन रहा करते थे। समय समय पर उनके चमत्कारोंको देखकर लोग चकित हो जाते थे।

राजा विजयध्वजके समयमें अयोध्याके पास जयश्री नामक नगरमें उनका आश्रम था। एक दिन वे भिक्षाटन करते हुए सद्बोध नामक ब्राह्मणके घर गये। उस समय ब्राह्मण घरमें न था। उसकी सद्वृत्ति नामक पतिव्रता स्त्री थी। विशालकाय मच्छेन्द्रनाथकी तेजस्विता और भव्य मूर्त्ति देखकर वह समझ गयी, कि यह कोई सिद्ध पुरुष है। उसने तुरन्त श्रद्धा और आदर सहित उन्हें भिक्षा प्रदान की।

मच्छेन्द्रनाथने देखा कि सद्वृत्तिका मुख मलीन है। उसके चेहरेपर उदासीनताकी छाया दिखाई दे रही है। उन्होंने उससे अप्रसन्नताका कारण पूछा। उत्तरमें सद्वृत्तिने अपनेको निःसन्तान बतलाया और अपनी मनोकामना व्यक्त की। मच्छेन्द्रनाथने उसे चुटकी भर भस्म दी और कहा—"इसे खा लेनेसे तेरी इच्छा पूर्ण होगी।"

मच्छेन्द्रनाथ भस्म देकर अपने आश्रम चले गये। सद्वृत्तिने यह सारा हाल अपनी पड़ोसिनसे कहा। पड़ोसिनने उसके

हृदयमें शङ्का उत्पन्न कर दी और उसे भस्म न खाने दिया। सद्वृत्तिने भ्रमित हो गोशालाके एक कोनेमें वह भस्म गाड़ दी।

ठीक बारह वर्षके बाद मच्छेन्द्रनाथका फिर फेरा हुआ। ब्राह्मणका द्वार देखकर उन्हें सद्वृत्तिका स्मरण हो आया। इस बार उन्हें सद्बोध भिक्षा देने आया। भिक्षा लेकर मच्छे-न्द्रनाथने सद्बोधसे उसकी पत्नी और पुत्रका कुशल समाचार पूछा। सद्बोधने अपनेको निःसन्तान बतलाकर केवल पत्नीका कुशल समाचार निवेदन किया।

मच्छेन्द्रनाथको ब्राह्मणकी बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उनका आशीर्वाद निष्फल न जाता था। उन्होंने सद्वृत्तिको बुला-कर उससे सारा हाल पूछा। सद्वृत्तिने भयभीत हो क्षमाप्रार्थना की और सच्चा हाल बतलाया। मच्छेन्द्रनाथ गोशालामें गये। वहां उन्होंने "आलक्ष्य" कहकर जोरसे पुकारा। शब्दके साथ ही भूमिसे बारह वर्षका एक सुकुमार बालक "आदेश" कहता हुआ निकल आया। मच्छेन्द्रनाथ उसे अपने साथ लिवा ले गये। उन्होंने उसका नाम गोरक्षनाथ रक्खा। वही आगे चल कर गोरखनाथके नामसे विख्यात हुआ और सिद्ध पुरुष कहलाया।

एक बार मच्छेन्द्रनाथ सिंहलद्वीप गये। वहांकी रानीने उन्हें अपने कपटजालमें फंसा लिया। मच्छेन्द्रनाथका अधःपात हो गया। वे पथभ्रष्ट हो दीर्घकाल पर्य्यन्त वहां रहते रहे। अन्तमें गोरखनाथ उन्हें खोजते हुए वहां जा पहुंचे। उन्हें देख

मच्छेन्द्रनाथको चेत हुआ। वे गोरक्षनाथकी सहायतासे छूट निकले। आश्रममें आकर उन्होंने पुनः तपस्या द्वारा सिद्धि लाभ की।

मालव भूमिमें, उज्जैनके पास भी कुछ काल उनका निवास रहा था। जब राजपाट छोड़ भर्तृहरि गृहत्यागी हुए, तब उनका आश्रम वहीं था। भर्तृहरिने उन्हींके पास आकर दीक्षा ग्रहण की थी। मच्छेन्द्रनाथने मन्त्रोपदेश दे उन्हें योगाभ्यासमें प्रवृत्त कराया था। भर्तृहरिने जो दिव्यज्ञान और विमल यश प्राप्त किया वह इन्हींकी कृपा और प्रतापका फल था।

मच्छेन्द्रनाथ हठयोगके महान् आचार्य्य थे। हठयोगके साधनसे ही उन्होंने सिद्धि-लाभ की थी। उत्तरावस्थामें उनका आश्रम सौराष्ट्रमें था। आज भी प्रभासक्षेत्रसे आठ दश मील की दूरीपर वहां गोरक्षमढ़ी नामक ग्राम है। वहां रहकर मच्छेन्द्रनाथने अनेक बार योग विद्याके चमत्कार दिखलाये थे। उनके चमत्कारोंको देखकर वहांके राजे महाराजे भी चकित हो गये थे और उनपर भक्तिभाव रखने लगे थे।

मच्छेन्द्रनाथने हठदीपिका नामक एक प्रसिद्ध ग्रन्थकी रचना की थी। उसमें आठ प्रकरण हैं और उनमें योग साधनकी विधि वर्णित है। हठदीपिकाके अतिरिक्त योग सम्बन्धी उनके और भी ग्रन्थ हैं, परन्तु उनका उत्तरीय भारतमें प्रचार नहीं है।

मच्छेन्द्रनाथ नाथ मतावलम्बी थे। नाथ मत धर्म्मनाथ नामक किसी परमहंसने प्रचलित किया था। राजयोगकी अपेक्षा हठयोग अधिक कठिन है। उसके प्रवर्त्तक यही नाथयोगी
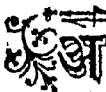
माने जाते हैं। नाथ सम्प्रदायके मुख्य सिद्धान्त यह हैं—

"निराकार, निरञ्जन, ज्योतिस्वरूप परमात्माको मानना। होम हवनादि क्रियायें करनी। भैरव, महावीर, हनुमान, देवी, शिव और सूर्य्य यह उपास्य देव हैं। अलख एक पुरुष है। उसने खलककी रचना की है। सर्व प्रथम उसने खप्पर उत्पन्न किया। मृत्यु और काल यह खप्परके शिष्य हैं। समाधि मोक्षका स्थान है। कल्पनाही माया है। हठ योगसे तन और मन शुद्ध होता है। क्रिया न करनेवाला पापी है। मन्त्रतन्त्र सत्य हैं। जीवदयाके पालनसे पुण्य होता है। अधर्म्मियोंको मारनेसे देव प्रसन्न होते हैं—इत्यादि।"

इस नाथ धर्म्ममें आदिनाथ, शम्बरनाथ, आनन्दनाथ, चौरङ्गी नाथ मच्छेन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, मीननाथ, विरूपाक्षनाथ, बिलेशनाथ, मन्थन भैरवनाथ, सिद्धबुद्धनाथ, कन्थड़नाथ, पौरन्धकनाथ, सुरानन्दनाथ, सिद्धपादनाथ, चरपतिनाथ, निरञ्जननाथ, कपालनाथ, विन्दुनाथ, काकचण्डीनाथ, आल्लमानाथ, प्रभुदेवनाथ, गौरेचीनाथ, ढिमूंडिमीनाथ, माल्लुकीनाथ, शाम्भवनाथ, अद्वयानन्दनाथ, गैनीनाथ, कानेरीनाथ, पूज्यपादनाथ, नित्यानन्दनाथ, नागबोधनाथ, चण्डकापालिकनाथ, जालन्धरनाथ प्रभृति अनेक नाथ नामधारी सिद्ध पुरुष हो गये हैं।

नाथ मतावलम्बी शिखा और सूत्र धारण करते हैं। वे अपनेको संन्यासी बतलाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनोंके लिये इस सम्प्रदायका प्रवेशद्वार खुला रहता है।

गुरु गोरखनाथ।

अयोध्याकेपास जयश्री नामक एक नगर था। वहां राजा विजयध्वजके समयमें सद्बोध नामक एक ब्राह्मण रहता था। ब्राह्मणकी पतिव्रता स्त्रीका नाम था सद्वृत्ति। पतिपत्नी दोनों सदाचारी और सुशील थे। ईश्वरकी कृपासे उनके घरमें धन धान्यकी कमी न थी। कमी थी तो केवल एक सन्तान की। सन्तानहीन दम्पतिका चित्त सदा सर्वदा उदास रहता था।

जयश्री नगरके पासही महात्मा मच्छेन्द्रनाथका आश्रम था। एक दिन वे भिक्षा मांगते हुए सद्बोधके यहां जा पहुँचे। सद्बोध घरमें न था। सद्वृत्तिने उन्हें प्रणाम कर तुरन्त भिक्षा दी। मच्छेन्द्रनाथने उसे उदास देख, व्यग्रताका कारण पूछा। सद्वृत्तिने अपनेको निःसन्तान बतलाते हुए अपनी मनोकामना व्यक्त की। मच्छेन्द्रनाथने उसे चुटकी भर भस्म देकर कहा—"ले, इसे खा लेनेसे तेरी इच्छा पूर्ण होगी।"

भस्म देकर मच्छेन्द्रनाथ अपने आश्रम चले गये। सद्वृत्तिने यह सारा हाल अपनी पड़ोसिनसे कहा। पड़ोसिनने अनेक भ्रमोत्पादक बातें कह सद्वृत्तिको भस्म न खाने दीया।

सद्वृत्ति पड़ोसिनकी बातोंमें आ गयी। उसे मच्छेन्द्रनाथ की बात पर विश्वास न हुआ। फिर भी, भस्मको उसने पवित्र मान इधर उधर न फेंक कर, गौशालाके एक कोनेमें गाड़ दिया।

ठीक बारह वर्षमें मच्छेन्द्रनाथका फिर फेरा हुआ। वे सद्बोधके द्वार पर अलख अलखकी टेर लगाने लगे। सद्बोध उन्हे भिक्षा देने आया। मच्छेन्द्रनाथको इतनेमें पूर्व बातका स्मरण हो आया। उन्होंने अनुमानसे जान लिया, कि यह ब्राह्मण उस स्त्रीका पति है। निदान, भिक्षा ग्रहण कर उन्होंने सद्बोधसे उसकी पत्नी और पुत्रका कुशल समाचार पूछा। ब्राह्मणने अपनेको निःसन्तान बतलाकर केवल पत्नीका कुशल समाचार बतलाया।

मच्छेन्द्रनाथको ब्राह्मणकी बात सुन, बड़ा आश्चर्य हुआ। उनका आशीर्वाद कभी निष्फल न जाता था। वे जो कह देते थे, वही हो जाता था। उनके हृदयमें सन्देह उत्पन्न हो गया। उन्होंने सद्वृत्तिको बुलाकर उससे सारा हाल पूछा। सद्वृत्तिने भयभीत हो सच्ची बात बता दी। भस्मपर उसे विश्वास न हुआ। यह जानकर मच्छेन्द्रनाथको कुछ क्रोध आ गया। उन्होंने अपने आशीर्वादको सत्य प्रमाणित करनेके लिये गोशालामें जाकर उच्चस्वरमें आलक्ष्य (अलख) कहकर पुकारा। उनके पुकारनेके साथही भूमिसे बारह वर्षका एक सुकुमार बालक "आदेश" कहता हुआ बाहर निकल आया। मच्छेन्द्र-

नाथ उसे अपने साथ ले आश्रम चले गये। उन्होंने उसका नाम गोरखनाथ रक्खा।

सद्बोध और सद्वृत्ति यह देख, पश्चाताप करने लगे। उनके भाग्यमें सन्तान सुख न बदा था, अतः दैवने इस प्रकार यह पुत्र छीन लिया। वे दोनों दुखी रहने लगे। गोरखनाथ मच्छेन्द्रनाथकी कृपासे महासिद्ध हो गये। उन्होंने अपने पिताको एक सन्तान दे, मच्छेन्द्रनाथसे उनका दुःख दूर करनेकी प्रार्थना की। मच्छेन्द्रनाथने अपने प्रिय शिष्यकी प्रार्थना स्वीकार करली। उनके आशीर्वादसे सद्बोधको पुनः एक पुत्रकी प्राप्ति हुई। गोरखनाथके आदेशानुसार उसका नाम रक्खा गया—नाथवरद। इस पुत्रको पाकर वे दुःखी दम्पति सुख सागरमें हिलोरें लेने लगे।

गोरखनाथ मच्छेन्द्रनाथके पास रहते और भिक्षापर निर्वाह करते थे। एक दिन उन्हें एक ब्राह्मणीने दहीवड़े खिला दिये। गोरखनाथको वे इतने स्वादिष्ट और रुचिकर प्रतीत हुए, कि दूसरे दिन भी उससे वही खिलानेका आग्रह करने लगे। ब्राह्मणीने बहुत समझाया, कि आज बड़े नहीं हैं परन्तु गोरखनाथने एक न सुनी। अन्तमें वह बाध्य हो चले जायं इस उद्देश्यसे ब्राह्मणीने कहा—"यदि तुम अपनी एक आंख निकाल दो तो मैं तुम्हें बड़े खिला सकती हूं।"

ब्राह्मणीने समझा था, कि न गोरखनाथ आंख देंगे, न मुझे बड़े खिलाने पड़ेंगे। परन्तु उसकी यह धारणा असत्य प्रमा

णित हुई। गोरखनाथने तत्काल अपनी आंख निकालकर उस के सामने रख दी। ब्राह्मणी गोरखनाथकी यह दृढ़ता और साहस देख स्तम्भित हो गयी। उसने घबड़ाकर तुरन्त बड़े तय्यार किये और गोरखनाथको सन्तुष्ट कर विदा किया।

गोरखनाथ एकाक्ष हो मच्छेन्द्रनाथके पास पहुंचे। मच्छेन्द्रनाथने आतुर हो एकाक्ष होनेका कारण पूछा। गोरखनाथने सत्य हालकह सुनाया। मच्छेन्द्रनाथको उनकी इस बात पर विश्वास न हुआ। उन्होंने कहा,—"गोरखनाथ! तू झूठ बोलता है। कोई अपने आप जरासी बातपर अपनी आंख नहीं निकाल दे सकता। यदि तू इसी समय अपनी दूसरी आंख निकाल दे तो मैं विश्वास कर सकता हूं।"

मच्छेन्द्रनाथकी यह बात सुन गोरखनाथने तत्काल अपनी दूसरी आंख निकाल दी। मच्छेन्द्रनाथको यह देख बड़ा आश्चर्य्य हुआ। साथही वे उनका साहस देख प्रसन्न हो उठे। उन्हों ने तीर्थोदक छिड़क उनके दोनों नेत्र ठीक कर दिये और भोजन प्राप्त करनेके लिये इस प्रकार हठ न करनेका उपदेश दिया।

गोरखनाथ गुरु-सेवामें सदा लीन रहते थे। वे गुरुके आदेशानुसारही आचरण करते थे। उन्होंने कर्त्तव्यपालन द्वारा उनकी प्रीति सम्पादन की थी। मच्छेन्द्रनाथके अनेकानेक शिष्योंमें वह सर्वश्रेष्ठ और प्रधान शिष्य थे। वे सिद्धता, विद्वता, और योग क्रियामें परम प्रवीण थे। उनकी बुद्धि भी बड़ी तिक्ष्ण थी। उन्होंने सिंहलद्वीपमें जाकर अपने गुरुको बन्धन

-मुक्त करता था। मच्छेन्द्रनाथकी तरह यह भी अपने चमत्कारों द्वारा लोगोंको आश्चर्य्य चकित कर देते थे।

गोरखनाथ विद्वान थे और पद्मरचना भी कर सकते थे। उन्होंने गोरक्षकल्प, गोरक्षशतक, गोरक्ष सहस्रनाम, गोरक्षगीता प्रभृति ग्रन्थोंकी रचना की थी। इनके अतिरिक्त तीन हजार श्लोकोंका विवेक मार्त्तण्ड नामक ग्रन्थ भी उन्होंने रचा था। चरपतिनाथ इत्यादि उनके अनेक शिष्य थे। गोरखपुर शहर उन्हींने बसाया था। वहां उन्होंने अपनी गद्दी स्थापित कर, उस पर अपने भाई नाथवरदको बैठाया था।

नाथलीला मृत नामक ग्रन्थके पञ्चमाध्यायमें गोरखनाथकी सिद्धताका वर्णन है। उसे देखनेसे ज्ञात होता है कि उन्होंने योग साधन द्वारा श्रेष्ठ सिद्धि लाभ की थी।

गोरखपुरमें गोरखनाथका मन्दिर था। अल्लाउद्दीन खिलजीने उसे तुड़वा कर वहां मसजिद बनवा दी। गोरखनाथके प्रति पूज्य भाव रखनेवाले लोगोंने वह मसजिद तोड़कर फिर मन्दिर बनाया था परन्तु मुगल सम्राट औरङ्गजेबने उसे विध्वस्त कर पुनः मसजिद बनायी। औरङ्गजेबके बाद फिर वहां मन्दिर बनाया गया और वही अद्यापि स्थित है। यह मन्दिर गोरखपुरकी पश्चिम ओर है। उसके दक्षिणमें पशुपतिनाथ और हनुमानके मन्दिर हैं। उस मन्दिरके मण्डपमें नाथमतावलम्बी अनेक महापुरुषोंकी समाधियां हैं।

गोरखनाथ मच्छेन्द्रनाथके साथ उनकी उत्तरावस्थामें सौरा-

ष्ट्रमें रहने लगे थे। उन्होंने वहां गोरखमढ़ी नामक ग्राम बसाया था। सौराष्ट्रके राजाको उन्होंने अपने अनेक चमत्कार दिखलाये थे। उसने शिष्योंके निर्वाहार्थ बारह ग्राम प्रदान किये थे। गोरखमढ़ीमें अब भी उनकी गद्दी है और उस पर नाथ-मतावलम्बी संन्यासियोंका अधिकार है। वे गोरखमढ़ीके अतिरिक्त अब भी कई ग्रामोंकी उपज खाते हैं।

गोरखनाथ अपनी अद्भुत योग सिद्धिके कारण सर्वत्र विख्यात थे। तद्विषयक अनेक आख्यायिकायें प्रचलित हैं। जम्बूगढ़ (सियालकोट) के अधीश्वरने अपनी पचास वर्षकी अवस्थामें राजपाट छोड़ उनका आश्रय ग्रहण किया था। गोरखनाथने उसे दीक्षा दे योगविद्या सिखाई थी। उनकी कृपासे वह भी सिद्ध हो गये थे। गोरखनाथ अपने चमत्कार और परोपकारोंके कारण इतने अधिक विख्यात हो गये थे, कि आज भी भारतवासी कृतज्ञता पूर्वक उनका नाम स्मरण करते हैं और उनके प्रति, अपना पूज्यभाव दिखाते हैं। गोरखनाथका अस्तित्व-काल बतलाना कठिन है। वे भर्तृहरिके समकालीन बतलाये जाते हैं। भर्तृहरि विक्रमादित्यके भाई थे और दो हज़ार वर्ष पूर्व उज्जैनमें राज्य करते थे।

ऋषभदेव-आदिनाथ ।

ऋषभदेव अवधूत थे। वर्ण और आश्रमोचित धर्मों को त्याग कर केवल आत्माको देखनेवाले योगी अवधूत कहे जाते हैं। यह प्रियव्रत कुलोत्पन्न नाभि नामक राजाके पुत्र थे। उनकी माताका नाम था मरुदेवी। उनका जन्म कोशल देशकी वनिता—अयोध्या नगरीमें हुआ था। विष्णुके चौबीस अवतारोंमें यह आठवें अवतार गिने जाते हैं। आत्म-ज्ञान किंवा परमहंसके धर्म्म कथनार्थ उनका अवतार हुआ था। जैन लोग उन्हें आदिनाथके नामसे पुकारते हैं और अपने धर्म्म-के प्रथम तीर्थंकर मानते हैं। जिसे जन्म, दीक्षा और कैवल्य निर्वाणकी प्राप्ति हुई हो उसे वे तीर्थंकर कहते हैं।

ऋषभदेवको ऋषि मुनियोंके सहवासमें रख कर वेद वेदा-ङ्गादि शास्त्र और तत्वज्ञानकी शिक्षा दिलाई गयी थी। उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। वे सुन्दर, तेजस्वी, पराक्रमी, दयालु और प्रकृतिके शान्त थे। उन्हें पुत्र रूपमें प्राप्त कर नाभि राजा अप-नेको धन्य समझते थे। उनके बड़े होनेपर, अपना राजपाट उन्हें सौंप वे पत्नी सह तप करने चले गये।

ऋषभदेव सिंहासनारूढ़ हो प्रजाका लालन करने लगे। उन्होंने शिक्षाका समुचित प्रबन्ध कर उसे सर्वगुण सम्पन्न

और सर्वकला कुशल बना दिया। उन्होंने सौ यज्ञ कर लोगोंको यज्ञादिक कर्म करनेको शिक्षा दी। उनका धर्म्माचरण और प्रताप देख इन्द्रको परिताप होने लगा। उन्होंने ऋषभ-देवके राज्यमें वृष्टि न हो ऐसा प्रबन्ध किया, परन्तु ऋषभदेव सामान्य व्यक्ति न थे। उनके प्रतापसे आवश्यकता पड़ने पर प्रजाके इच्छानुसार वृष्टि होने लगी। अन्तमें इन्द्रका गर्व खर्व हुआ। उन्होंने ऋषभदेवसे हार मान ली और अपनी जयन्ती नामक कन्याका उनके साथ विवाह कर दिया।

जयन्तीके उदरसे ऋषभदेवके भरत प्रभृति सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें ८१ विख्यात ऋषि हुए और उन्होंने आरण्य वास कर तापस जीवन व्यतीत किया। दश अपने पिताके पास रहे और उन्हें राज-काजमें सहायता देते रहे। शेष कवि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस, कर, और भाजन यह नव परम ब्रह्मनिष्ठ हुए। उन्होंने योगाभ्यास किया था। वे नव योगेश्वरके नामसे विख्यात हैं। ब्रह्मविद्याके विषय पर जनक और उनमें घोर वादा विवाद हुआ था।

ऋषभदेवने दीर्घकाल पर्य्यन्त राज्य कर संसार सुख भोग किया। तदनन्तर उन्होंने दीक्षा ले तप करनेका विचार किया। इस विचारको कार्य्यरूपमें परिणत करनेके पूर्व उन्होंने अपने राज्यको दश समान भागोंमें विभक्त कर दिया। उनके भरत, कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक, विदर्भ और कीकट यह दश पुत्र उत्तराधिकारी थे। उन्होंने इन

देशोंके नाम परसे उन दश भाग्य किंवा खण्डोंके नाम नियत किये और प्रत्येकको उसके नामका खण्ड प्रदान किया। कहते हैं, कि मध्यस्थ श्रेष्ठ भाग भरतको मिला और उनके नाम परसे उस प्रदेशका नाम भरत खण्ड पड़ा।

ऋषभदेवने इस प्रकार अपने राज्यकी व्यवस्था कर दीक्षा ग्रहण की। प्रथम उन्होंने अपने पुत्रोंको ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया। इसके बाद वे सर्वत्र भ्रमण करने और लोगोंको दया, क्षमा, शान्ति, भक्ति वैराग्य और ब्रह्मविद्याका उपदेश देने लगे। तदनन्तर ब्रह्मावर्तके राज्यमें कुछ काल व्यतीतकर वे शत्रुञ्जय पर्वत पर तप करने चले गये। वहां उन्होंने दीर्घकाल पर्य्यन्त तप किया। उसी समयसे वह पर्वत पवित्र और तीर्थस्थान माना जाने लगा।

तिव्र आत्मानुसन्धानके कारण ऋषभदेव बाह्यज्ञान शून्य हो गये। वे जटा फटकारे हुए नग्नदशामें जड़ोन्मत्त पिशाचकी भांति सर्वत्र भ्रमण करने लगे। कभी वे एकही स्थानमें बैठ रहते कोई खिलाता तो खाते, अन्यथा भूखेही रहते। इसी दशामें भ्रमण करते हुए वह कोंकण देशके कर्णाटक नामक प्रदेशमें जा पहुंचे। वहां कुटकाचल वनके वेणुवृक्षोंमें उनकी जटा उलझ गयी, अतः वे कुछकाल वहीं उसी दशामें खड़े रहे। वृक्षों-के पारस्परिक घर्षणसे कुछही दिन बाद वहां दावानल प्रज्वलित हुआ और उसीमें पड़कर इस महापुरुषका शरीरान्त हुआ।

इस प्रकार महात्मा ऋषभदेवने अपना जीवन धर्म, ज्ञान

वैराग्य, एकान्तवास और योगाभ्यासमें व्यतीत कर अपने निरञ्जन निराकार आत्मस्वरूपमें निमग्न हो मुक्ति प्राप्त की। बौद्ध और जैन दोनों उन्हें अपने अपने धर्म्मके आचार्य्य मानते हैं। बौद्ध उन्हें सर्वज्ञ बुद्ध और जैन उन्हें तीर्थंकर कहते हैं, परन्तु उन्होंने स्वयं किसीको उपदेश नहीं दिया। न वे उनके आचार्य्य थे न वे उनके शिष्य थे। लोगोंने स्वयं उनके वाह्य आचरण देख उनका अनुसरण किया था और जैन धर्मकी स्थापना की थी।

ऋषभदेवका जन्म स्वायम्भू मन्वन्तरमें हुआ था। जैन मतमें काल गणनाके अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी यह दो क्रम हैं। अवसर्पिणीमें सुखादिक अच्छी वस्तुयें उत्तरोत्तर क्षीण होती हैं और उत्सर्पिणीमें उनकी वृद्धि होती है। प्रत्येकके छः भागहैं। प्रत्येक भागको आरा कहते हैं। अवसर्पिणीके सुख सुख, सुख, सुखदुःख, दुःख सुख, दुःख और दुःख दुःख यह छः आरे हैं। उत्सर्पिणीमें आरोंका क्रम इसके विपरीत होगा। इस समय अवसर्पिणी काल चल रहा है। जैनियोंका कथन है, कि तीसरे आरेमें ऋषभदेवका जन्म हुआ था। वे कहते हैं तीसरे और चौथे आरेमें धर्म्म प्रचारार्थ चौबीस चौबीस तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। इस आरेमें चौबीस तीर्थंकर उत्पन्न हो चुके हैं और उनमें ऋषभदेव किंवा आदिनाथ सर्व प्रथम थे। कुछ भी हो, इस प्रतापी पुरुषका अवतार सार्थक हुआ। आर्य्यावर्तमें उनकी देवताकी तरह पूजा होती है और अनेकानेक लोग उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखते हैं।

जड़भरत।

जड़ भरत राजर्षि ऋषभदेवके पुत्र थे। उनकी माताका नाम था जयन्ती। सौ भाइयोंमें वे सर्वश्रेष्ठ और ज्येष्ठ थे। वे महान् पराक्रमी, शूरवीर, धर्म्मनिष्ठ, दयालु, तेजस्वी, विद्वान, साहसी और तत्ववेत्ता थे, वे अयोध्यामें राज्य करते थे। राजा विश्वरूपकी पञ्चजनी नामक कन्याके साथ उनका विवाह हुआ था। उसके गर्भसे उन्हें सुमति राष्ट्रभृत, सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु यह पांच पुत्र हुए थे।

भरत अपने पूर्वजोंकी ही तरह प्रजापालनमें दत्तचित्त रहते थे। उनका यश दिग दिगान्तमें व्याप्त हो रहा था। उनके राजत्व कालमें शत्रुञ्जयकी उत्तर ओर एक अधर्म्मी राजा राज्य करता था, वह बड़ा शक्तिशाली था। भरतने उसके राज्य पर आक्रमण किया; परन्तु प्रथम युद्धमें उन्हें पराजित होना पड़ा। पराजयसे हताश हो वे बैठ न रहे। उन्होंने प्रबल सैन्य ले द्विगुण उत्साहसे पुनः आक्रमण किया। इसबार वे विजयी हुए। उनका शत्रु सिन्धुकी ओर भाग गया। वर्षाके दिन थे, अतः भरतने उसका अनुसरण न किया। वर्षाके बाद, शुक्र नामक मन्त्रीको उन्होंने सिन्धु नदीकी उत्तर ओर भेजा। वहां शत्रुओंका एक दुर्गम

दुर्ग था, मन्त्रीने उसपर अधिकार जमा लिया। उसके लौटने पर भरतने शत्रुका समस्त राज्य अधिकृत कर लिया।

भरतके एक भाईका नाम बाहुबल था। उसके सोम्युस नामक एक पुत्र था। सम्युसने शत्रुञ्जय पर ऋषभदेवका मन्दिर बनवाया। मन्दिरके कारण शत्रुञ्जय तीर्थस्थान होगया। वहां प्रतिवर्ष अनेकानेक यात्री आने लगे। भरतने उस तीर्थस्थानके व्ययके लिये सौराष्ट्र प्रदेश अर्पण कर दिया। उसकी सारी उपज इस पुण्य कार्य्यमें लगने लगी। सौराष्ट्र प्रदेश तबसे देवदेश कहलाने लगा।

भरतने अनेक प्रकारके अनेक यज्ञ किये। सततपुण्य कार्य्य करनेसे उनका अन्तरात्मा शुद्ध हो गया। दिन प्रति दिन उनका भक्ति भाव बढ़ता गया। दीर्घ काल पर्य्यन्त राज्यकर अन्तमें शेष जीवनकाल उन्होंने ईश्वर भक्तिमें ही व्यतीत करनेका निश्चय किया। वैराग्य आतेही उन्होंने शासन भार अपने पुत्रोंको सौंप वनकी राह ली।

राज पाट छोड़ भरत पुलह ऋषिके आश्रम गये। वह स्थान हरिहरक्षेत्रके नामसे विख्यात था। उसके मध्यमें होकर पुण्योदका गण्डकीकी विमल धारा बह रही थी। भरत वहीं एकान्तमें अपना आश्रम स्थापित कर तृष्णा रहित हो ईश्वराध्यनकरने लगे। ज्यों ज्यों समय बीतता गया, त्यों त्यों उनका चित्त परम पदमें लीन होता गया। सच्चिदानन्द परमात्मा की भक्तिमें ही उन्हें परमानन्द अनुभव होने लगा।

एक दिन भरत गण्डकोके तटपर स्नानकर सन्ध्यादिक नित्य कर्म कर रहे थे। उसी समय एक तृषातुर हरिणी वहां जल पान करने आयी। अभी जल पान कर वह तृप्त भी न हुई थी, कि एक सिंहने भयङ्कर गर्जना की। हरिणी वह सिंहनाद सुनकर कांप उठी। वह विह्वल हो चारों ओर दृष्टिपात करने लगी। सिंहके भयसे उसका हृदय व्याकुल हो रहा था। जल, जलके ठिकाने रह गया। वह प्राण भयसे कूद कर नदीके उस पार पहुंच गयी।

हरिणी नदीके उस पार तो पहुंच गयी; परन्तु उसने जिस प्राणको बचानेके लिये यह साहस किया था, वह न बच सका। वह गर्भिणी थी। भय और :परिश्रमके कारण उसका: गर्भ चलित हो गया। उस पार पहुंचनेके पूर्वही वह पतित हो प्रवाहमें बहने लगा। हरिणी भीउस पार पहुंचकर गिर पड़ी। कुछ ही क्षण बाद उसका प्राण पयान कर गया।

यह दृश्य देख कर भरतके हृदयमें दयाका अनिवार्य स्रोत उमड़ पड़ा। हरिणी उस पार गिरी सो गिरी। फिर न उठ सकी। छोटासा मृग-छौना प्रवाहमें बह चला। अधिक सोचनेका समय न था। भरत नदीमें कूद पड़े। वह उस मृग-छौनेको उठा लाये। अभी उसका श्वास चल रहा था। जिस प्रकार अनाथ बालकको कोई उसका हितैषी उठा ले जाता है, उसी प्रकार भरत उसे अपने आश्रममें उठा लाये

भरतने यथोचित उपचार कर उस मृग-छौनेकी प्राण-रक्षा

की। वे उसे कोमल घास खिलाकर पालने लगे। दिन प्रतिदिन उनका प्रेमऔर दयाभाव वृद्धिगत होता गया। मृग-छौना उन्हें अपना ही बच्चा प्रतीत होने लगा। ज्यों ज्यों वह बढ़ता गया त्यों त्यों इनका वात्सल्य भावभी बढ़ता गया। बच्चे ही की तरह वे उसका लालन पालन करने लगे। वे उसे गोदमें बैठालते, चुम्बन करते और उसके शरीर पर हाथ फिराया करते। निरन्तर वे उसीके हित चिन्तनमें मग्न रहते। हिंसक पशुओंसे उसकी रक्षा करते और जिस प्रकार बनता उसे प्रसन्न रखते।

शनैः शनैः भरतका कोमल हृदय उसके स्नेह जालमें अच्छी तरह जकड़ गया। किसी प्रकार वे उसके प्रतिपालनमें त्रुटि न होने देते थे। स्नान ध्यान नियमित समय पर न हो पाते। यम नियम छूट गये; परन्तु उन्हें इसका विचार भी न आता था। जप तप भूल गये। मोहने उन्हें पुनः आ घेरा। वे समझने लगे, कि इसका लालन पालन मुझे करनाही चाहिये। इसे प्रसन्न रखना यही मेरा परम कर्तव्य है। शरणागतका अनादर करना महान् दोष है।

दयावान महापुरुष अपने स्वार्थ पर दृष्टि नहीं रखते। भरतका मृग-छौने के पीछे परलोक बिगड़ गया था; परन्तु उन्हें इसकी परवाह न थी। मृग-छौनेने उन्हें योगभ्रष्ट कर दिया। वे क्षण मात्रके लिये भी उसे दूर न करते थे। सदा अपने पास रखते थे। किसी क्षण यदि वह न दिखाई देता, तो वह उसके नष्टकी आशङ्का करने लगते। उसके वियोगसे उनका हृदय

व्याकुल हो उठता। जबतक वे उसे देख न लेते तब तक उन्हें चैन न पड़ती। उनका चित्त उसीमें तन्मय हो रहा था। उनका हर्ष और विषाद उसी मृग-छौने पर निर्भर करता था।

वास्तवमें भरतके प्रारब्धनेही उन्हें इस प्रकार पथ-भ्रष्ट किया यदि ऐसा न होता तो जिसने राज पाट, धन धाम, ऐश्वर्य्य और परिवारको अपने पथका कण्टक समझ ठुकरा दिया, वह एक मृग छौनेपर क्यों आसक्त हो जाते? मोक्ष प्राप्तिके लिये जिस मोह जालको उसने छिन्न भिन्न कर डाला, उसीमें फिर क्यों उलझ पड़ता? यह विधाताकाही विधान था। परमात्माने मानों उनके तपमें बाधा देनेके लियेही इस मृगको उत्पन्न किया था।

भरत मृगके पीछे अपने आपको भूल गये थे। उन्हें अपने कर्त्तव्यका ज्ञान न था। वे अन्त तक उसी मृगके मोह जालमें उलझे रहे। अपना आत्म-कल्याण भी साधन न कर सके। एक दिन कराल कालेने उन पर आक्रमण कर दिया। भरतका मन मृगमें अटक रहा था। वे मरते समय भी उसे न भूल सके। मरते समय जैसी मति वैसी गति होती है। कर्म्म के अटल नियमानुसार दूसरे जन्ममें उन्हें मृग होना पड़ा।

भरत अपने कर्म्मानुसार मृग तो हुए; परन्तु पुण्य प्रतापसे उन्हें पूर्व जन्मकी बातोंका स्मरण ज्योंका त्यों बना रहा। वे अपने मृग होनेका कारण सोच सोच कर पश्चाताप करने लगे। वह कहने लगे—"यह अच्छा न हुआ। मैं पथ भ्रष्ट हो पड़ा। मैं

सबका सङ्ग छोड़ एकान्त और पवित्र वनमें निवास करता था। मेरा मन ईश्वरमें लग रहा था। मैं श्रवण, मनन, स्मरण, कीर्तन और आराधनमें निरन्तर लीन रहता था। मृगके मोहने मुझे कर्तव्य भ्रष्ट कर दिया। अब न जाने मेरी कौन गति हो!"

इस प्रकारका विचार करते हुए भरत अपनी माता (हरिणी) को छोड़ पुनः उसी वनमें चले आये और उसी स्थानमें रहने लगे। वे पतित होनेके भयसे किसीका सङ्ग न करते। उनका चित्त सदा उदास रहता। वे अकेलेही इधर उधर घूमा करते थे। कुछ समय इसी दशामें व्यतीत कर एक दिन गण्डकीके प्रवाहमें खड़े होउन्होंने अपना प्राण विसर्ज्जन कर दिया।

इसके बाद अङ्गिरा कुलोत्पन्न एक महान विद्वान ज्ञानी और ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणके यहां भरतका जन्म हुआ। इस जन्ममें भी उनका नाम भरत पड़ा। अद्यापि उन्हें पूर्व जन्मोंका वृत्तान्त भूला न था। वे अब किसीके स्नेह-बन्धनमें न पड़ना चाहते थे। तदर्थ वे किसीका सङ्ग न करते और सबसे दूर रहते थे। निरन्तर परमात्माके ध्यानमें मग्न रहा करते थे लोग उनसे स्नेह न करें अतः वे उन्मत्त, और जड़की तरह रहते। मालूम होता था, कि यह किसीकी बात सुन और समझ नहीं सकते। कभी कभी ज्ञात होता था, कि यह देखते भी कम हैं।

पिताने उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया। इसके बाद उन्हें शिक्षा दी जाने लगी। भरतका जी अध्ययनमें न लगा। कर्म्मकाण्ड और किसी प्रकारकी विद्या उन्हें रुचिकर प्रतीत न हुई।

ऐसा होना स्वाभाविक था। पूर्व जन्मके पुण्य प्रतापसे उनका ज्ञान नष्ट न हुआ था। वे प्रकृत ज्ञानी थे। उन्हें और ज्ञान प्राप्त करनेकी आवश्यकता भी न थी। उनके पिताने बड़ा उद्योग किया; परन्तु भरतपर शिक्षाका कोई प्रभाव न पड़ा। उनकी जड़ता दिन प्रति दिन बढ़तीही गयी। कोई उठाता तो उठते, खिलाता तो खाते। बैठे हैं तो बैठे ही हैं, खड़े हैं तो खड़े ही हैं। जिस काममें लगादो वही कर रहे हैं और भला बुरा जो कुछ दे दो उसीमें सन्तुष्ट हैं। उनकी यह जड़ता देख लोग उन्हें जड़भरत कहने लगे।

कुछ दिनोंके बाद जड़भरतके माता पिता सद्गतिको प्राप्त हुए। उनके भाई उनका प्रभाव न जानते थे। वे ब्रह्मविद्यामें नहीं, बल्कि कर्म्म विद्यामें ही पुरुषार्थ समझते थे। जड़भरतको लोग पागल, जड़ उन्मत्त, विपन्न इत्यादि नामोंसे पुकारते। किसीको वे उत्तर देते और किसीको न भी देते। बहुधा लोग उन्हें बेगारमें पकड़ लिया करते थे। जड़भरतको वे जिस काममें लगा देते वह वे किया करते और जो दे देते वही, खा लेते। वे इन्द्रियोंको सन्तुष्ट करनेके लिये नहीं, बल्कि जी जिलानेके लिये खाते थे। उनका चित्त निरन्तर परमात्मामें लगा रहता था। मान, अपमान, सुख किंवा दुःखका उनके शरीर किंवा मन पर कोई प्रभाव न पड़ता था।

जड़भरत शीत, वायु, वर्षा और धूपमें पशुओंकी तरह नंगे बदन घूमा करते थे। उनका शरीर हृष्ट पुष्ट था। भूतल पर सोने और

स्नानादिक न करनेके कारण उनका वर्ण धूसर हो रहा था। आकाश मण्डलमें धूलि और बादलोंके छा जानेसे, कभी कभी जिस प्रकार सूर्य्य भगवानका मुखारविन्द स्पष्ट नहीं दिखाई देता, उसी प्रकार जड़भरतका ब्रह्मतेज मलीनताके आवरणमें छिपा हुआ था। उनके भाइयोंने उन्हें खेतकी रखवाली करनेको भेजा, परन्तु वे एकही स्थानमें खड़े रहे और अपनेको उस कार्य्यके उपयुक्त न सिद्ध कर सके।

जड़भरतका स्वभाव शान्त और शरीर हृष्ट पुष्ट था। एक दिन उन्हें एक शूद्र राजाके मनुष्य देवीको बलिदान देनेके लिये पकड़ ले गये। वहां स्नान कराकर उनके शरीर पर चन्दन लगाया गया और सुगन्धित पुष्पोंकी मालायें पहनायी गयीं। मिष्ठान्न खिलानेके बाद वे भगवतीके सम्मुख उपस्थित किये गये। राजाने उनका शिर उड़ानेके लिये तलवार खींच ली और पुरोहित बलि-दान ग्रहण करने के लिये भगवतीकी स्तुति करने लगा।

जड़भरत ईश्वरके ध्यान में तन्मय हो रहे थे। उन्हें बाह्य सृष्टिका कुछ भी ज्ञान न था। वे सुख और दुःखको समान ही समझते थे। न उनके हृदयमें जीवनका मोह ही था, न मरणकी चिन्ता ही। जिस शांति और निस्पृहता के साथ वे प्रत्येक कार्य करते थे। उसी शक्ति और निस्पृहताके साथ वे शिर कटा-नेको भी तय्यार थे।

जड़भरत तो ज्योंके त्यों खड़े थे; किन्तु भगवतीसे राजाका यह अविवेक न देखा गया। वे ईश्वर भक्तका अनिष्ट कैसे देख सकती

थी ? एक हुङ्कारके साथ उन्होंने राजाके हाथसे तलवार छीन ली और पुरोहित तथा उसका शिर उड़ा कर जड़भरतकी रक्षा की ! ईश्वर-भक्तको कष्ट देनेवालेको इसी प्रकार दण्ड मिलता है। जड़-भरत तो परमहंस थे। आत्माके अमरत्वका उन्हें पूरा ज्ञान था। वे जानते थे, कि "मैं" देहादिक पदार्थों से भिन्न हूं। अतः शिर कटाते समय भी उनका विचलित न होना स्वाभाविक था। भगवतीने उनकी रक्षा कर अपने वात्सल्य भावका परिचय दिया।

जड़भरत जानते थे, कि संग-दोषसे ही मुझे बार बार जन्म ग्रहण करना पड़ता है। इस जन्ममें किसीका संग न हो। अतः वे वनमें जड़ और उन्मत्तकी भांति भ्रमण किया करते थे। एक दिन राजा रहूगण ब्रह्मोपदेश श्रवण करनेके लिये, पालकीमें बैठ कपिलाश्रम जा रहा था। इक्षुमती नदीके तट पर उसे एक क-हारकी आवश्यकता हुई। जड़भरत वहीं विचरण कर रहे थे। उन्हें हृष्ट पुष्ट देख कर रहूगणके अनुचर उन्हीं को बेगार पकड़ लाये।

महात्मा जड़भरत पालकी उठाने योग्य न थे; परन्तु उन्होंने अपने स्वभावानुसार कोई आपत्ति न की। उन्हें कहारोंके कार्य्यमें योग देना पड़ा। पालकी तो उठाली; परन्तु वे कहारोंके बराबर चल न सके। जीव हिंसा न हो अतः वे देख देख कर पैर रखते थे। पालकी पद पद पर टेढ़ी हो जाती थी। जब रहूगणने इसका कारण पूछा, तब कहारोंने अपनेको निर्दोष और जड़भरतको दोषी बतलाया।

रहूगण यद्यपि वृद्ध और ज्ञानी पुरुषोंका अनन्य भक्त और सेवक था, तथापि जाति स्वभावानुसार वह रजोगुणी था। जड़-भरतका ब्रह्मतेज राखमें छिपे हुए अंगारेकी तरह छिपा हुआ था। रहूगण उनकी ओर देखकर व्यंग करने लगा। वह बोला—"भाई! तुम बड़े दुर्बल हो। तुमने अकेलेही पालकी उठाई है, अतः थक भी गये हो। तुम्हारी अवस्था बहुत बड़ी हो गयी है। तुम्हारा शरीर जीर्ण हो गया है। तुम अशक्त हो। यह और लोग तुम्हारे समान नहीं हैं। वे सब हृष्ट पुष्ट और नव तरुण हैं। इसी लिये तुम उनका साथ नहीं दे सकते।"

इसी प्रकार रहूगणने अनेक बातें कहीं; परन्तु भरतके हृदय पर उनका कोई प्रभाव न पड़ा। वे स्वयं ब्रह्मभूत थे। उनके हृद-यमें मिथ्या मोह और ममता न थी। मान और अपमानको वे कुछ समझतेही न थे। रहूगणकी बातें सुनकर भी उनका हृदय नि-र्विकार बना रहा। वे पूर्ववत् उसी शान्ति और दृढ़ताके साथ वही चाल चलते रहे।

पालकी पुनः टेढ़ी हो गयी। रहूगण झल्ला उठा। उसने क्रुद्ध हो कहा—"तू जीवित है या मृतक? तू मेरी अवज्ञा करता है? जिस प्रकार यमराज प्राणियोंको दण्ड देते हैं, उसी प्रकार मैं तुझे दण्ड दूंगा। बिना दण्ड दिये तू ठीक न होगा।"

रहूगणके राजसी स्वभावमें क्रोधान्वित होनेके कारण तमो-गुण झलक पड़ा। उसने अभिमान पूर्वक अनेक बातें कहीं और जड़भरतका तिरस्कार किया। जड़भरत निरभिमानी, प्राणी

मात्रके मित्र और सबके आत्मास्वरूप थे। उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक मुस्कुरा कर कहा —"राजन! तुम जो कहते हो वह ठीकही है। मैं इसे व्यङ्ग नहीं समझता। यदि भार नामक कोई पदार्थ होता और उसे उठाने वाले शरीर पर उसका कोई प्रभाव पड़ता होता किंवा उसके साथ मेरा कोई सम्बन्ध होता तो मैं तुम्हारे वचनों-को व्यङ्ग समझता; परन्तु भार किसे कहते हैं और शरीर क्या है, इसका निरूपण नहीं हो सकता। शरीरके साथ मेरा कोई सम्बन्ध भी नहीं है। इसी लिये मैं तुम्हारे वचनोंको व्यङ्ग नहीं समझता। आत्माको कोई पुष्ट नहीं कहता। वह वैसा होता भी नहीं है। पंचमहाभूतका समूह रूपी यह शरीर ही हृष्ट पुष्ट होता है। मोटापन, दुर्बलता, व्याधि, आधि, क्षुधा, तृषा, भय, कलह, इच्छा, जरा, निद्रा, मैथुन, और अहंकार जनित मद, यह सब शरीरके साथ जिसका जन्म होता है, उसीके लिये हैं। मैं तो शरीरसे भिन्न हूं। मुझ पर इन किसीका प्रभाव नहीं पड़ता।"

"हे राजन्! जीवित होने पर भी मृतक समान मैं अकेलाही नहीं हूं। संसार भरकी यही दशा है। जगत प्रतिक्षण उत्पन्न और नाश हुआ करता है। स्वामी और सेवकका सम्बन्ध अविचल हो तो मुझे अवश्य तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य्य करनी चाहिये, किन्तु वह अविचल नहीं है। वास्तवमें सभी समान हैं। न कोई किसीका स्वामी है न कोई किसीका सेवक। फिर भी यदि तुम्हें इस बातका अभिमान हो, कि मैं राजा हूं, तो जो कहो वह मैं करनेको तय्यार हूं। मैं ब्रह्मत्वको प्राप्त हुआ

हूं अतः जड़ और उन्मत्तकी भांति दिखाई देता हूं। दण्ड शिक्षा और व्यंगका मुझपर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। जीवन्मुक्त मनुष्यके लिये यह कुछ नहीं है। यद्यपि मैं जीवन्मुक्त नहीं हूं। केवल जड़ और उन्मत्तही हूं; किन्तु मुझे कोई ठीक नहीं कर सकता। मेरे लिये दण्ड और शिक्षाका आयोजन करना पिष्टपेषण मात्र है।

जड़भरत देहाभिमान और अविद्यासे मुक्त हो चुके थे। वे केवल सुख दुःख भोगते हुए प्रारब्धका क्षय कर रहे थे। उनकी यह रहस्य पूर्ण बातें श्रवणकर रहूगण जान गया, कि यह कोई महात्मा हैं। वह पालकीसे उतर कर उनके चरणोंमें लोट पड़ा और क्षमा प्रार्थना करता हुआ बोला—"भगवन्! मुझे क्षमा करिये। मैं आपको पहचान न सका। आप कौन हैं और इस प्रकार क्यों विचरण कर रहे हैं। मैं इन्द्रके वज्र, महेश्वरके त्रिशूल और यम-दण्डसे भी उतना नहीं डरता जितना ब्राह्मणके अपमानसे। हे ब्राह्मन्! अब मैं इस पापसे किस प्रकार मुक्त हूंगा? मुझ पर दया करिये। त्राहिमाम्! त्राहिमाम्।"

रहूगणके यह वचन सुन, जड़भरतको दया आ गयी। उन्होंने कहा—राजन्! सावधान!

जन्म दुःखं जरा दुखं जाया दुःखं पुनः पुनः।
अन्तकालेच महा दुःखं, तस्मात् जागृहि जागृहि॥
माता नास्ति पिता नास्ति बन्धु सहोदरा।
अर्थं नास्ति गृहं नास्ति तस्मत् जागृहि जागृहि॥

इस प्रकार समस्त पदार्थोंको नाशवंत बतलाकर जड़भरतने, रहूगणको तत्वज्ञानका उपदेश दिया। रहूगणको अब कपिल मुनिके पास जानेकी आवश्यकता न रही। इन्हीं बातोंको जान कर वह जीवन मुक्त हो गया। महात्मा जड़भरत इसी प्रकार कुछ दिन और भ्रमण करते रहे और कर्मक्षय हो जाने पर सद्गतिको प्राप्त हुए।

तृतीय खण्ड।

राजनीति विशारद

नीतिवेत्ता चाणक्य

महात्मा चाणक्य एक विख्यात राजनीतिज्ञ थे। उनका जन्म गन्धार (कन्दहार) देशकी राजधानी तक्षशिलामें हुआ था। जातिके वे चाणक गोत्री ब्राह्मण थे। कहते हैं, कि जब उनका जन्म हुआ, तब उनके मुखमें दांत वर्तमान थे। उनके पिताने यह हाल अपने कुल-गुरुसे निवेदन किया। कुल-गुरुने कहा—"यह दांत अनिष्ट सूचक नहीं है। आपका पुत्र बड़ा भाग्यशाली है। वह किसी देशका राजा होगा!"

चाणक्यके पिताने विचार किया, कि राजा होना कोई अच्छी बात नहीं है। राजाओंके जीवन सदा संकटाकीर्ण और दुखी बने रहते हैं। मेरा पुत्र राजा न हो तो अच्छा है।

यह सोचकर उन्होंने चाणक्यके दांत घिस घिसा कर नष्ट कर दिये। जब यह समाचार कुल गुरुको ज्ञात हुआ, तब उन्होंने

कहा—अब भी उसका सौभाग्य नष्ट नहीं हुआ। वह किसी राज्यका मन्त्री अवश्य होगा।"

पिताने अपने इस भाग्यशाली पुत्रका नाम विष्णुगुप्त रक्खा, आगे चलकर वही चाणक्य नामसे विख्यात हुआ। चाणक्य महा बुद्धिमान, क्रोधी, और धीर पुरुष थे। उन्होंने तीन वेदोंका अध्ययन किया था। राजनीति और कूटनीति दोनोंके वे अद्वितीय ज्ञाता थे। शीघ्रही पिताका देहान्त हो जानेके कारण वे अपनी माताके संरक्षणमें प्रतिपालित हुए। बड़े होने पर समुचित सेवा कर उन्होंने उसे सुखी किया।

मगध देशमें उन दिनों नन्दवंशी राजा राज करते थे। चाणक्यके समयमें योगानन्द नामक राजा उस राजसिंहासन पर अधिष्ठित था। योगानन्दके एक मन्त्रीका नाम था शकटार। वह योगानन्दसे मनही मन अप्रसन्न रहता था और उसका नाश कराना चाहता था।

एक दिन वह कहीं जा रहा था। मार्गमें उसने चाणक्यको भूमि खोदते देखा। अकारणही उन्हें यह कार्य्य करते देखकर उसे विस्मय हुआ और उसने कौतूहल वश ऐसा करनेका कारण पूछा। चाणक्यने कहा—"यहां कुशकी जड़ है। वह मेरे पैरमें लगनेसे मुझे कष्ट हुआ, अतः मैं उसे समूल नष्ट कर देना चाहता हूं।"

शकटार यह उत्तर सुनकर और भी विस्मित हुआ। वह वहीं खड़ा रहा। चाणक्यने कुशको समूल नष्ट करनेके बादही दम ली। शकटारने सोचा, कि यह ब्राह्मण बड़ा क्रोधी और

दृढ़ प्रतिज्ञ मालूम होता है। यदि यह योगानन्दसे किसी प्रकार असन्तुष्ट हो जाय, तो उसके विनाशार्थ भी ऐसीही चेष्टा कर सकता है।

यह सोचकर शकटारने एक षड़यन्त्र रचना स्थिर किया। चाणक्यका नाम और निवास स्थान पूछ लेनेके बाद उसने उनकी बड़ी प्रशंसाकी कुशको समूल नष्ट करनेके लिये धन्यवाद दिया। अन्तमें उसने अपना परिचय दिया और कहा, कि योगानन्दके यहां कल त्रयोदशीका श्राद्ध है। भोजनार्थ अनेक ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दिया जा चुका है; किन्तु कोई ऐसा ब्राह्मण नहीं मिला, जिसे प्रथमासन दिया जाय। आप बड़ेही योग्य और कर्मशील ब्राह्मण हैं। यदि आप निमन्त्रण स्वीकार करें तो आपको प्रथमासन और एक लक्ष सुवर्ण मुद्रा दक्षिणा स्वरूप भेंट मिलेंगी।"

शकटारको यह बात सुन, चाणक्य प्रसन्न हो उठे। उन्होंने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। शकटार सादर उन्हें अपने घर लिवा ले गया। दूसरे दिन नियत समयके पूर्वही योगानन्दके राजमन्दिरमें उपस्थित हो चाणक्यने प्रथमासन पर स्थान ग्रहण किया।

शकटालने यह सब प्रपञ्च रचना की थी। योगानन्दके यहां श्राद्ध अवश्य था; किन्तु प्रथमासन पूर्वसेही सुबन्धु नामक ब्राह्मणके लिये निश्चित हो चुका था। योगानन्द यह प्रपञ्च तो जानतेही न थे। उन्हें चाणक्यकी धृष्टता देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

चाणक्यको भी विवश हो इच्छा विरुद्ध उस अधिकृत आसनसे उठना पड़ा। वे अपने इस अपमानसे क्रुद्ध हो कांप उठे। नेत्र अरुण हो गये और उनसे चिनगारियां निकलने लगीं। मालूम होने लगा, कि इसी क्षण इस ब्राह्मणकी क्रोधाग्नि योगानन्दको भस्म कर देगी।

परन्तु, उस समय चाणक्य करही क्या सकते थे? उन्होंने प्रतिज्ञाकी, कि जब तक इस राजाका विनाश न करूंगा, तब तक शिखा न बांधूँगा।

शकटारका उद्देश्य सिद्ध हुआ। चाणक्यकी क्रोधाग्नि धधक उठी। उन्होंने योगानन्दके विनाशार्थ दृढ़ प्रतिज्ञा की। यह बात योगानन्दने भी सुनी। वह भी क्रुद्ध हो उठा। राजबलके सम्मुख चाणक्य कैसे ठहर सकते थे? उनके लिये अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करना सहज न था; किन्तु योगानन्द अपना क्रोध चरितार्थ कर सकता था। चाणक्यमें उस समय कार्य्य शक्तिका अभाव था। केवल क्रोध और प्रतिज्ञासे तत्काल कार्य सिद्धिकी सम्भावना न थी अतः उन्होंने उस समय वहांसे टल जानाही अपने लिये श्रेयस्कर समझा।

योगानन्दका एक शत्रु और भी था। उसका नाम था चन्द्रगुप्त। चन्द्रगुप्तका पिता योगानन्दका सेनापति था। वह बड़ाही शूरवीर और पराक्रमी था। अनेक राजाओंको पराजितकर उसने मगध राज्यको विस्तृत और समृद्धिशाली बनाया था। योगानन्दको न मालूम क्यों उसपर कुछ सन्देह हो गया।

शायद वह डरने लगा, कि यह पराक्रमी पुरुष कहीं राज्य सिंहासन पर अधिकार न करले। निदान, उसने उसे और उसके अनेक पुत्रोंको एक गुफामें बन्द कर मर डाला। केवल चन्द्रगुप्तही जीवित बच सका।

चन्द्रगुप्तने भी मगधमें रहते हुए अपनी खैर न समझ, भागकर प्राण बचाया। भटकते हुए कहीं चाणक्य और चन्द्रगुप्तसे भेंट हो गयी। चन्द्रगुप्त भी अपने पिताके समानही चतुर, साहसी, बुद्धिशाली और पराक्रमी पुरुष था। उसे चाणक्य क्या मिले, मानो सोनेमें सुगन्ध आ गयी। दोनोंका एक ही उद्देश्य था—नन्दराज्यको नष्ट करना। मन्त्रणा हुई। युक्तियां सोची गयीं। चेष्टा आरम्भ हुई और साधन जुटाये गये। अन्तमें दोनोंकी क्रोधाग्निने भयंकर रूप धारण किया। उसकी ज्वाला मगधराज्यमें जा पहुंची और देखते देखते योगानन्दकी आहुति ले नन्दराज्यको नष्ट भ्रष्ट कर डाला।

चन्द्रगुप्तने मगध राज्यके सिंहासन पर अधिष्ठित हो चाणक्यको अपना प्रधान मन्त्री बनाया। कुलगुरुकी भविष्य वाणी इस प्रकार चरितार्थ हुई। मगधराज्यकी प्रजा भी पहलेसे कहीं अधिक सुख अनुभव करने लगी। जहां चन्द्रगुप्त समान राजा और चाणक्य समान मन्त्री हो वहां कोई त्रुटी कैसे रह सकती थी? मगध राज्य धन-धान्यका भण्डार और सुख-शान्तिका आगार बन गया।

यह सब होते हुए भी चाणक्य और चन्द्रगुप्त नितान्त निश्चि-

न्त न हो सके। योगानन्दका राक्षस नामक एक स्वमिभक्त मन्त्री अभी जीवित था। वह चन्द्रगुप्तको सुखकी नींद सोने न देना चाहता था। वह किसी प्रकार अपने स्वमिका राज्य चन्द्रगुप्तके हाथसे छीन लेना चाहता था। चन्द्रगुप्त और चाणक्य उसीकी ओरसे शङ्कित रहा करते थे।

राक्षसने कितनेही नरेशोंकी सहायता प्राप्त कर चन्द्रगुप्तका सामना किया, किन्तु चतुर चाणक्यके बुद्धिकौशल के सामने वह अधिक दिनोंतक ठहर न सका। चाणक्यने पहले सेही अपने विश्वास पात्र दूतोंको राक्षसके यहां नौकरी करनेके लिये भेज दिया था। फलतः राक्षसकी प्रत्येक प्रवृत्तिका पता चाणक्यको तुरन्त मिल जाता था।

विचारा राक्षस यह न जानता था, कि मेरे यह कर्म्मचारी वास्तवमें चाणक्यके दूत हैं। वह तो उन्हें अपनेही समझता था। और निःसङ्कोच आपसे उन्हें कार्य सौंपता था। इसके अतिरिक्त चाणक्यने और भी कितनेही भाषा-चतुर दूत नियुक्त किये थे, जो उन दूतों पर भी नजर रखते थे और इस बातका पता लगाते थे, कि वे जो समाचार देते हैं वे असत्य तो नहीं हैं? इसके अतिरिक्त वे प्रजाके आचार-विचार पर भी नजर रखते थे और प्रत्येक बातकी चाणक्यको सूचना देते थे।

अन्तमें जो होना था वही हुआ। राक्षसकी एक न चली। चाणक्यकी युक्तियोंसे उसे चन्द्रगुप्तके सम्मुख नतमस्तक होनेके लिये वाध्य होना पड़ा। परन्तु धन्य है चाणक्यकी निर्लोभिता और

गुणग्राहकता को? वे राक्षसकी स्वामिभक्ति देखकर प्रसन्न हो उठे। उन्होंने उसके गुणोंपर मुग्ध हो: अपना पद उसे प्रदान कर दिया।

चन्द्रगुप्तने राक्षसके प्रति शंका और अविश्वास प्रकट किया। किन्तु चाणक्यने कहा,—जो अपने स्वामिके परलोकवासी होने पर भी उसके राज्यको बचानेके लिये निःस्वार्थ भावसे इतनी चेष्टा करता है और कष्ट उठाता है, वह अपने हितैषीके साथ विश्वास-घात कदापि नहीं कर सकता। वह उपकारका बदला अपकारसे चुकानेका कभी साहस नहीं कर सकता। विश्वास रखिये, राक्षस अब आपके अकल्याणकी इच्छा स्वप्नमें भी न करेगा।

चाणक्यने जैसा कहा वैसाही हुआ। राक्षसने चाणक्यका यह त्याग देख कर अपनी प्रतिहिंसा वृत्ति परित्याग कर दी। उसकी सहायतासे चन्द्रगुप्तके साम्राज्यकी नींव और भी दृढ़ हो गयी। चाणक्यकी नीतिज्ञताका यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। यदि राक्षसको इस प्रकार वे प्रेमबंधनमें जकड़ न लेते तो आजन्म उन्हें उसकी ओरसे भय बना रहता और शायद वह चंद्रगुप्तके राज्यकी जड़ खोखली भी कर डालता।

चाणक्य जैसे बुद्धिमान थे वैसेही राजनीतिज्ञ थे। वर्त्तमान युरोपीय कूटनीतिज्ञोंके साथ उनकी तुलना की जा सकती है। उन्होंने एक अर्थशास्त्र और एक नीति शास्त्रकी रचना की थी। नीतिशास्त्रमें एक लाख श्लोक थे, किंतु संप्रति वह अप्राप्य हो रहा है। कुछ श्लोकोंका एक छोटा सा संग्रह इस समय चाणक्य नीतिके नामसे पुकारा जाता है। धन्य है ऐसे महापुरुषको।

राजा टोडरमल

राजा टोडरमल सम्राट् अकबरके मन्त्री थे। वे लाहौरके निवासी थे। उनकी जातिका ठीक पता नहीं चलता। कोई उन्हें खत्री, कोई कायस्थ और कोई ब्राह्मण बतलाते हैं। कुछ भी हो, यह सर्वथा निष्पन्न है, कि वे किसी उच्च जातिके नर रत्न थे। बड़ोंका बड़प्पन उनके गुणोंसे ही जाना जा सकता है।

टोडरमलके माता पिताका देहांत उनकी बाल्यावस्थामें ही हो गया था अतः वे अपने अन्यन्य स्वजनोंके आश्रयमें प्रतिपालित हुए थे। वे बड़े मेधावी, चतुर, धर्म्मनिष्ठ, नीतिमान, साहसी और शूरवीर थे। बड़े होने पर उन्हें एक मुन्शीकी जगह मिल-गयी। वहींसे उन्नति करते करते उन्होंने सर्वोच्च पदको प्राप्त किया।

भारतके इतिहासमें सुलतान शेरशाहका नाम विख्यात है। शेरशाहने ही अकबरके पिता हुमायुको पराजित कर भारत छोड़नेके लिये वाध्य किया था। वह वंग देशका शासक था। उसीने टोडरमलको उच्च पद प्रदान कर अपनी गुण-ग्राहक-ताका परिचय दिया था।

सुलतान शेरशाह प्रजा प्रिय शासक था। वह हिन्दुओं पर अत्याचार न करता था। उसने धर्म्मशाला, कूप, राजपथ

और जलाशय निर्म्माण कराये थे। पथिकोंके हितार्थ राजपथोंके किनारे वृक्षावली भी लगवायी थी। उसीने सीमान्त देशमें पहाड़ी भूमि पर एक किला बनवाया था और टोडरमलको उसका अधिकारी नियत किया था।

शेरशाहके अधीन रहते हुए टोडरमलने गणित और भूमिकी नापजोखके काममें अच्छा अनुभव प्राप्त किया। भविष्यमें अपने इन गुणोंके कारण वे बड़ी उन्नति कर सके। सम्राट् अकबरको टोडरमलसे इन कामोंमें बड़ी सहायता मिली। टोडरमलने भी जीवन प्रयत्न अकबरकी सेवा की। अकबर भी गुणग्राहक सम्राट थे। उन्होंने टोडरमलको "वकीले-सुलतान" और "मुशरिके-दीवान" की उपाधियां प्रदान कर भली भाँति सम्मानित किया।

गुजरात और बङ्गालमें कुछ दिन भिन्न भिन्न पदों पर काम करनेके बाद टोडरमल दिल्ली बुला लिये गये और वजीरशाह मन्सूरके पेशकार बनाये गये। इसी समयसे उन्होंने राजस्व विभागकी ओर ध्यान दिया और उसमें बहुतसा सुधार किया। सर्व प्रथम उन्होंने जमीनकी नाप करायी। बादको भिन्न भिन्न टुकड़ोंके भिन्न भिन्न नम्बर नियत किये। फिर किस भूमिसे कितना राजस्व लिया जाय यह स्थिर किया। पहले खेतमें जो वस्तु उत्पन्न होती थी, उसीका कुछ अंश राजस्व स्वरूप ग्रहण किया जाता था। अब उन्होंने वह सिक्कोंके रूपमें लेना स्थिर किया। उन्होंने यह भी घोषित किया, कि भूमिका सर्वाधिकार प्रजाको है। सम्राट् केवल राजस्वके अधिकारी हैं, भूमिके नहीं।

टोडरमलकी इस व्यवस्थासे प्रजाको विशेष सुविधा हो गयी और वह सुखी हो उन्हें शत-शत आशीर्वाद देने लगी। यह व्यवस्था "टोडरमलकी जमाबन्दी" के नामसे पुकारी जाने लगी अब भी कहीं कहीं वह वर्त्तमान है और उसी नामसे पुकारी जाती है।

राजा टोडरमल बड़े बुद्धिमान, धर्म्मिष्ट और स्वामिभक्त पुरुष थे। वे जैसे विद्वान् थे, वैसेही शूरवीर भी थे। अनेक युद्धोंमें उन्होंने विजय प्राप्त की थी। अकबरकी राज-सभाके प्रख्यात विद्वान् अबुल फज़लने उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, कि टोडरमलके समान प्रमाणिक, सुपथगामी, शूरवीर और कार्य्य-कुशल शासन कर्त्ता इस समय और कोई नहीं है। उनकी धार्म्मिकताके विषयमें वह लिखता है, कि वे एक कट्टर हिन्दूकी भाँति व्रत, उपवास और क्रिया-कर्म्म करनेमें दत्तचित्त रहते हैं।

टोडरमलने गंगाके तट पर एक घाट भी बनवाया था। वे खुशामदी न थे। अकबरने एक नवीन मतकी स्थापना की थी। अनेक मनुष्योंने उनका अनुग्रह प्राप्त करनेके उद्देश्यसे उनका मत स्वीकार किया था। टोडरमलने स्वधर्म्मको जलाञ्जलि दे, उसे ग्रहण करना हेय समझा। वे उससे दूरही रहे। फिर भी, उनके अद्वितीय गुणोंके कारण उन पर सम्राट्‌का प्रेम उत्त-रोत्तर बढ़ताही गया। अकबर उन पर बड़ा विश्वास और प्रेम रखते थे।

टोडरमलके धाऊमल नामक एक पुत्र था। वह सिंधके शासक जानीबेगसे युद्ध करते समय वीरगतिको प्राप्त हुआ था। संसारके अचल और अटल नियमानुसार ता० २०-११-१५८६ के दिन वे भी सद्गतिको प्राप्त हुए, किन्तु उनका नाम अमर है। भारतके ऐतिहासिक पृष्ठोंमें वह सुवर्णाक्षरोंसे अङ्कित है।

राजा बीरबल।

परम प्रतापी स्वनामधन्य राजा बीरबल भी सम्राट् अकबरके एक मन्त्री थे। राज-सभाके नव रत्नोंमें उनकी गणना होती थी। उनका जन्म कब और कहां हुआ था इसका ठीक पता नहीं चलता। माता पिताका नाम भी ज्ञात नहीं होता। जातिके विषयमें भी मत भेद है। कुछ लोग ब्रह्म भट्ट और कुछ लोग ब्राह्मण बतलाते हैं; किन्तु अधिकांश प्रमाणोंसे वे ब्राह्मणही प्रमाणित होते हैं।

कहते हैं, कि उनका प्रकृत नाम शिवदास था। वे कुलीन किन्तु निर्धन थे। वे रूपवान; बुद्धिमान और धर्मनिष्ठ थे। साथही वे ऐसे हाजिर जवाबी और चतुर थे, कि अनायास ही लोगोंका मन हरण कर लेते थे। उन्हें काव्यशास्त्रका भी अच्छा ज्ञान था।

बीरबल जैसे वाक्-पटु थे वैसेही शूरवीर भी थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने वेदादि धर्मशास्त्रका भी अध्ययन किया था। उन दिनों जिसे राज दरबारमें प्रवेश करना हो, उसे हिन्दी, फारसी, संस्कृत और काव्यशास्त्रका ज्ञान अवश्यही प्राप्त करना पड़ता था। बीरबल भी इन विषयोंकी पर्य्याप्त शिक्षा प्राप्त कर नौकरीकी तलाशमें दिल्ली पहुंचे।

बीरबलने पहलेसे ही सुन रक्खा था, कि सम्राट् अकबर गुणग्राहक और उदार हैं तथा विद्वानोंको आश्रय देते हैं। रात्रिको उन्होंने एक धर्म्मशालामें विश्राम किया। दूसरे दिन अकबरके पास जानेको प्रस्तुत हुए; किन्तु बाहर निकलतेही दिल्लीवालोंकी ज़र्क़ बर्क़ पोशाकें देख कर वे दंग रह गये। उन्होंने सोचा, यदि मैं यह मैले कपड़े पहनकर राज-सभामें जाऊँगा तो अवश्य संतरी मुझे धक्का मारकर बाहर निकाल देंगे।

निदान, उन्होंने किसी धोबीको एक रुपया देकर तीन दिनके लिये एक बढ़िया पोशाक किराये ले ली। उस समय उनके पास खरचेके लिये पांच रुपयेसे अधिक न थे। भोजनादिक नित्य कर्म्मोंसे निवृत्त हो वह सम्राट्के पास जानेको प्रस्तुत हुए। किन्तु, चलते चलते थक गये, दिन व्यतीत होगया, पर राजसभा तक न पहुंच सके। विवश हो वह लौट आये और वह रात्रि भी उसी धर्म्मशालामें व्यतीत की।

दूसरे दिन बीरबल राजसभा तक जा पहुंचे। एक संतरीको मिलाकर उन्होंने सम्राट्की दिन चर्य्याका पता लगाया। उन्हें ज्ञात हुआ, कि सम्राट् रात्रिके समय विद्वानोंके साथ कुछ देर तक वार्तालाप करते हैं। बीरबलने वही समय भेटके लिये उपयुक्त समझा, अतः उस दिनभी वहांसे योंही लौट आये।

तीसरे दिन वे यथा समय वहां जा पहुंचे; किन्तु सन्तरीने राजसभामें प्रवेश न करने दिया। उसने बीरबलसे कहा,—"यदि

आप मुझे १०० मुहरें इनाम दें तो मैं आपको अन्दर जानेकी आज्ञा दे सकता हूं-अन्यथा नहीं"

सन्तरीकी यह बात सुन बीरबल स्तब्ध होगये। सौ मुहरोंकी कौन कहे, उनके पास सौ रुपये भी न थे, जो वे उसे देकर सन्तुष्ट करते। उन्होंने अनेक युक्तियां कीं, अनेक प्रकारसे समझाया, बहुत विनय अनुनय की, किन्तु कोई फल न हुआ। अन्तमें बीरबलने कागजका एक टुकड़ा देते हुए उस संतरीसे कहा,—"इस पर एक दोहा लिखा है। कमसे कम यही बादशाहके पास पहुँचा दो।"

बीरबलकी यह बात सुन सन्तरीके नेत्र अरुण हो गये। वह कागज चीर फाड़कर एक हौजमें फेंक दिया और एक धक्का दे तत्काल चले जानेकी आज्ञा प्रदान की। लने चिल्लाहट मचाई; परन्तु कौन सुनता है ? निराश हो वे से लौट आये।

सन्तरीके इस अत्याचारसे बीरबलकी समस्त आशाओं पर पानी फिर गया। वे सोचने लगे, कि जब सम्राट्से भेंट ही न होगी तो विद्वत्ता किस काम आयेगी? भेंट होने पर सब कुछ हो सकता है, परन्तु सन्तरी सन्तुष्ट हुए बिना अन्दर जाने देगा, यह आशा नहीं की जा सकती।

दूसरे ही क्षण उन्हें अपनी स्थितिका ख्याल आ गया। वे कहने लगे,—"अब तो मेरे पास व्ययके लिये रुपये भी नहीं हैं। घर भी कैसे पहुँच सकता हूं? क्या किसी क्षुद्र व्यक्तिकी सेवा

करूं ? नहीं—वैसा करनेसे मेरी महत्वाकांक्षा सिद्ध नहीं हो सकती। क्या भाग्यके विश्वास पर निश्चेष्ट होकर बैठ रहूं ? नहीं: यह भी उचित नहीं। तब क्या किया जाय ? सम्राट्से किस प्रकार भेंट हो ?

बीरबलको इसी प्रकारकी अनेक चिन्ताओंने आ घेरा। वे गहरे विचार-सागरमें निमग्न हो गये। कुछ देरके बाद उनकी यह विचार निद्रा भङ्ग हो गयी। मुख-मण्डल पर कुछ प्रसन्नताकी रेखायें झलक उठीं। हृदयमें आशाका संचार हुआ। एक हलकी सी मुस्कुराहटने आन्तरिक उमङ्गको बाहर प्रकट कर दिया। प्रतीत होने लगा, कि बीरबलने इन विघ्नबाधाओंको दूर करनेका कोई उत्कृष्ट उपाय खोज लिया है।

राज्यमें जब तक न्यायका द्वार खुला रहता है, तब तक प्रजा-को किसी प्रकारका कष्ट नहीं रहता; किन्तु जब न्यायालयके द्वार परभी रिश्वत खोरीका बाजार खुल जाता है, अन्धेर मचनेमें कोई कसर नहीं रहती। ऐसा न हो, अतः भारतके प्राचीन शासक सावधान रहते थे। कोई गुप्त दूत नियुक्त करते थे, कोई वेश बदलकर नगर चर्चा देखने जाते थे, कोई महलके नीचे घंट लट-काते थे। और कोई न्यायालयके द्वार बिना प्रहरीके दिन-रात खुलेही रखते थे।

सम्राट् अकबरने भी ऐसी ही एक व्यवस्था कर रखी थी। वे स्नानादि नित्य कर्म्योंसे निवृत्त हो प्रतिदिन दो घंटे महलके झरोखेमें बैठा करते थे। महल प्रशस्त राजपथसे सटा हुआ था।

उस राजपथमें किसी प्रकारके वाहन न जा सकते थे। केवल मनुष्यही चलते थे। जिस समय वे उस झरोखेमें बैठते, उस समय राजपथमें खड़े होकर चोपदार निम्न लिखित पंक्तियां उच्चारण करते थे :—

"अकबरशाह धर्मासन पर विराजमान हुए हैं, जिसे कुछ फरियाद करना हो उसे बुलाते हैं। शाह व साहुकार, वजीर व दीवान, नवाब व सूबा, अमीर व उमराव किसीने जुल्म किया हो तो निडर होकर आये और कहे—अदलके कांटेमें सभी समान हैं......"

राजपथ और समूचे नगरमें चौकियोंकी व्यवस्था थी। वहां उसी समय बाजे बज उठते थे और उनमें इन्हीं पंक्तियोंकी पुनरावृत्ति होती थी। फलतः प्रजाको ज्ञात हो जाता था, कि सम्राट् न्यायासन पर आसीन हैं। इसके बाद जो फरियाद करना चाहता, वह झरोखेके नीचे उपस्थित हो "फरियाद! फरियाद!" पुकारता। सम्राट् उसका शब्द सुनतेही उसे अपने पास बुलाते और उसकी बात सुन यथोचित उपचार द्वारा उसे सन्तुष्ट करते।

प्रजाको उस स्थान तक पहुंचनेमें कोई बाधा भी न पहुंचती थी। झरोखा ऐसे स्थान पर था, कि वहांसे दोनों ओर एक एक मील तकका दृश्य दिखायी देता था। सम्राट्की आज्ञाके कारण भी कोई किसीको रोक न सकता था। उस समय सबको सब प्रकारकी बातें कहनेकी स्वतन्त्रता थी। यहां

तक, कि स्वयं सम्राट्से कोई अन्याय किंवा दोष हो गया हो, तो उसे भी सूचित करनेकी आज्ञा दे रक्खी गयी थी।

सम्राट् अकबर उस समय किसीको अपने पास न रखते थे। वे स्वयं आगन्तुक की बात सुनते, और जांच कर न्याय करते। जो फरियाद करने जाता, उसके प्रति वे पुत्रका सा प्रेम प्रदर्शित करते और शांतिके साथ उसकी बात सुनते। यदि कोई किसी कर्म्मचारी की निन्दा करता तो वे उसे बुलाकर जांच करते और अपराधी प्रमाणित होने पर उसे समुचित दण्ड देते। यदि हम इसे सम्राटकी "अपेलेट कोर्ट" कहें तो बेजा नहीं। अन्तर केवल इतनाही है वर्तमान न्यायालयोंमें अपीलके लिये भी धन व्यय करना पड़ता है, वहां एक कौड़ीकी भी आवश्यकता न पड़ती थी। प्रजा स्वयं अपना दुःख निवेदन कर सकती थी। उसे अपनी बात निम्न कोटिके कर्म्मचारियों द्वारा सम्राट्के कान तक पहुंचानेकी झंझट न उठानी पड़ती थी।

बीरबलने भी यहीं सम्राट्से मिलना स्थिर किया। दूसरे दिन जिस समय सम्राट् न्यायासन पर आसीन थे और वाद्योंकी मधुरध्वनि पथिकोंके हृदयको आनन्दित कर रही थी, उसी समय भस्म विलेपित, कौपीन धारी बीरबल, एक हाथमें त्रिशूल, दूसरेमें कमण्डल और उन्नत ललाटमें सिंदूर बिन्दु धारण कर झरोखेके पास गये और "फरियाद! फरियाद!" पुकारने लगे।

तुरन्तही सम्राट्की दृष्टि उस ओर आकर्षित हुई। वीरबलके अङ्ग प्रत्यङ्गसे विलक्षण प्रभा फूटी पड़ती थी। ललाट चमक रहा था। मालूम होता था, कि स्वयं कामदेवने यह वेश धारण किया है। सम्राट् उन्हें प्रकृत संन्यासी माननेको प्रस्तुत न हुए। उनके मनमें कुछ सन्देह उत्पन्न हो गया। तत्काल उन्होंने वीरबलको अपने पास बुला कर पूछा—"आप कौन हैं और यह वेश क्यों धारण किया है? आपकी फरियाद क्या है?"

वीरबलके आन्तरिक हर्षका तो वारापार न था। वह सम्राट्की भेटसे मनही मन प्रसन्न हो रहे थे; किन्तु वाहरसे गम्भीरता धारण कर सम्राट्के प्रश्नका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा:—

"पाया हीरा लाखका, आया बेंचन काज।
छीन लिया छक्कड़ लगा, निपट छलीने आज॥"

वीरबलकी यह बात सुन सम्राट्के नेत्र अरुण हो गये। उन्होंने कहा—"वह कौन है, जिसने आपके साथ ऐसा निन्द्य व्यवहार किया। सत्वर! उसका नाम बतलाइये, मैं उसे कठोर दण्ड दूंगा।"

वीरबलको अब सम्राट्से वार्तालाप करनेका अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने बातही बातमें अपनी अनोखी वाक्पटुता द्वारा सम्राट्का मन हरण कर लिया, अन्तमें उस सन्तरीकी निंदाकर कहा, कि उसीने मेरा एक अमूल्य रत्न छीन कर नष्ट कर दिया है।

सम्राट् ने तुरन्त सन्तरीको बुलाकर कठोर दण्ड दिया; किन्तु उसके पास वह रत्न कहां? बीरबलने कहा—"जिसे मैं रत्न कहता हूं वह एक दोहा था। भगवतीने प्रसन्न हो कर मुझे वह प्रदान किया था। मैं बिना उसे हस्तगत किये सन्तुष्ट नहीं हो सकता।"

सम्राट् ने कहा—उसका तो मिलना असम्भव है। उसके मूल्य स्वरूप आप जो कहें वह मैं दे दूं।"

बीरबलने कहा—"नहीं, वह तो अमूल्य था। मैं उसका मूल्य कैसे ले सकता हूं। हां, मुझे उसके तीन पद याद हैं, यदि चतुर्थ पद आप अपनी राज सभाके किसी विद्वानसे तैयार करवा दें तो मैं सन्तुष्ट हो जाऊंगा। उसके तीन पद यह हैं:—

खड़े रहत जागृत सदा, मम रक्षक अति शक।
यह कह सोवत चैनसे······················॥

सम्राट्ने यह सुन कर कहा—इसका चतुर्थ पद तैयार कर देना कठिन नहीं, कल राज-सभामें आइये, यथोचित चेष्टा की जायगी।

बीरबल यह उत्तर प्राप्त कर प्रसन्न होते हुए अपने निवास स्थानमें लौट आये। किसी प्रकार दिन व्यतीत किया, किन्तु रात्रिभर उन्हें निद्रा न आयी। वे अनेक प्रकारके तर्कवितर्क करते रहे। उधर सम्राट् भी बीरबलको न भूल सके। यहां तक, कि रात्रिमें उन्हें अन्यमनस्क देख कर बेगम साहिबा शंकित हो उठीं! उन्होंने सम्राट् से चिन्तित होनेका कारण पूछा। सम्रा-

र्ने वीरबलका कुल हाल कह सुनाया और उस दोहेके तीन पद सुना कर कहा—इसके चौथे पदकी खोज कर रहा हूं।

बेगमने कहा—इसका चतुर्थ पद बतलाना कठिन नहीं—मैं भी बतला सकती हूं।

इतना कह, सम्राट्को वे सोते हुए बालकके पास लिवा ले गयीं और बोलीं, देखिये, जहां पनाह!

"खड़े रहत जागृत सदा, मम रक्षक अति शक्त।
यह कह सोवत चैनसे, बालक माता शक्त॥"

सम्राट् यह सुनकर प्रसन्न हो उठे। बोले—अवश्य यही इसका चतुर्थ पद है। कल वह ब्राह्मण इसे सुनकर अवश्य सन्तुष्ट हो जायगा।

दूसरे दिन वीरबल राजसभामें उपस्थित हुए! सम्राट्ने उन्हें बेगमका कहा हुआ पद सुनाया। वीरबलने कहा—नहीं, यह पद उस दोहेका कदापि नहीं हो सकता।

वीरबलकी यह बात सुन सम्राट्ने सारा हाल राज सभाके विद्वानोंको कह सुनाया और दोहेका चतुर्थ पद तैयार कर देनेकी आज्ञा दी। सभामें एक खुशामदी कवि उपस्थित थे। वह बोल उठे—जहां पनाह! इसका चतुर्थ पद यों होना चाहिये—"बादशाह बड़ बख्त।"

सम्राट्को यह पद पसन्द न आया। उन्होंने मियां अबुल फजलकी ओर दृष्टिपात किया। अबुलफजल फारसी भाषाके अच्छे विद्वान थे। उन्होंने कहा, दाल और डालमें (द और डमें)

अधिक अन्तर नहीं। मेरी समझमें चतुर्थ पद होना चाहिये—"बादशाह बद बख्त" क्यों कि कोई भी चतुर बादशाह अपने रक्षकोंके विश्वास पर चैनसे सो नहीं सकता। तो रक्षकोंके विश्वास पर सो रहे उसे बद बख्त ही कहना चाहिये।

इस पर बड़ा वादाविवाद हुआ। किसी वृद्धने कहा, यह सब ठीक नहीं, उसका चतुर्थ पद होना चाहिये—"हरि-पद-प्रेमी भक्त" क्योंकि भक्तही ईश्वरके विश्वास पर निश्चिन्त हो कर सोता है।

इसी समय टोडरमल आ पहुंचे। उन्हें भी सारा हाल समझाया गया और भिन्न भिन्न लोगोंके पद कह सुनाये गये। टोडरमल भी ऐसी चर्चामें भाग लेते थे। सम्राट्‌ने उनकी ओर दृष्टिपात किया। कुछ देर सोचनेके बाद वह बोले—वह पद यों होना चाहिये—"बालक भूप सुभक्त।"

सम्राट्‌को यह पद बहुत पसन्द आया। उन्होंने बीरबलसे पूछा—"आपके दोहेका चतुर्थ पद यही था कि और?"

बीरबलने कहा—सम्राट्! वह पद यही है, यह मैं नहीं कह सकता, किन्तु इसे श्रवण कर मुझे उसका स्मरण हो आया है। मेरे उस पदमें "बालक" के स्थान पर "बालकु" शब्द था। बस इतनाही अन्तर है।

सम्राट्‌ने कहा—मैं नहीं समझ सकता, कि बालकके स्थान पर बालकु रख देनेसे क्या अन्तर हो जाता है। क्या उसमें इस पदसे अधिक सुन्दरता है?"

मियां फैजी जो अबतक चुपचाप बैठे हुए थे। अब उनसे चुप न रहा गया। वे बीरबलके पदको भली भाँति समझ गये थे। वह बोल उठे—अवश्य इन दोनोंमें अन्तर है। बादशाह बड़बख्त और बद बख्तका जो प्रश्न है वह भी इससे हल हो जाता है। "बालकु, भूप, सुभक्त।" इस प्रकार पढ़नेसे, बालक, राजा और भक्तका अर्थ प्रतिपादित होता है; किन्तु "बाल, कु भूप, सुभक्त" इस प्रकार पढ़नेसे उसके अर्थमें अन्तर पड़ जाता है। बालकके स्थान पर बालकु किये विना यह बात नहीं हो सकती।

"दूसरी बात यह है, कि सब लोगोंने अपने अपने स्वभावानुसार पद तैयार किये हैं अतः वे इसकी समता नहीं कर सकते। बेगम साहिबाका चित्त बालक पर लगा रहता है अतः उन्होंने "बालक माता शक्त" कहा। कविराज आपकी प्रशंसा करनेमें प्रसन्न रहते हैं अतः उन्होंने "बादशाह बड़ बख्त" कहा मियां अबुल फजलको चर्चा और वादा विवाद अधिक पसन्द है अतः उन्होंने बादशाह बद बख्त कह कर प्रश्नको विवाद ग्रस्त बना दिया। भक्त होनेके कारण राजा साहबने "हरिपद-प्रेमी भक्त" कहा और राजा टोडरमल रातदिन गणित और जमाबन्दी का काम करते हैं अतः उन्होंने सब वक्तव्योंको एकत्र कर अपनी गणितज्ञताका परिचय दिया। यही कारण है, कि यह सब पद उसकी समता नहीं कर सकते और वह अधिक अच्छा कहा जा सकता है।"

मियां फैजीकी यह आलोचना सुन, सम्राट् प्रसन्न हो उठे।

उन्होंने वीरवलको बहुत सा धन और एक उत्तम पोशाक उपहार दी। वीरवलकी भाग्य देवी अनुकूल हो गयी। वे रोज राजसभामें उपस्थित होने लगे। कुछ दिनोंके बाद नवरत्नोंमें उनकी गणना होने लगी। सम्राट् ने उन्हें कविरायकी उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया। आजकलकी तरह कोरी उपाधि ही नहीं, सम्राट् ने उसके साथ उन्हें नगरकोटकी जागीर भी दी। राज-सभामें वे राजा वीरवलके नामसे पुकारे जाने लगे। कुछही दिनोंके बाद वे मन्त्री नियुक्त हुए और आनन्द-पूर्वक दिन व्यतीत करने लगे।

वीरवल अकवरके परम मित्र हो गये थे। उन्होंने सम्राट् के हृदय पर अधिकार जमा लिया था। अवकाशके समय दोनोंमें मनोरञ्जक वार्तालाप हुआ करता था। आज भी भारतमें वीरवलकी हाजिर जवावी, चतुराई और बुद्धिवलकी बातें किस्से कहानी और दृष्टान्त स्वरूप कही जाती हैं।

अकवरके हृदयको अपनी बातोंसे प्रभावित करने वाले दोही मनुष्य थे। मुसलमानोंमें फ़ैज़ी और हिन्दुओंमें वीरवल। सम्राट् ने अपने राज्यमें गोहत्या वन्द करदी थी। हिन्दू और मुसलमान प्रजाको वे समान दृष्टिसे देखते थे। हिन्दूधर्मके प्रति भी उनके भाव बुरे न थे। इसे यदि हम वीरवलकाही प्रताप कहें तो अनुचित नहीं।

वीरवल जैसे वाक्पटु और विद्वान थे वैसे ही शूरवीर भी थे। उनको अधिनायकतामें अनेकवार सेनाने विजय प्राप्त की थी। अनेकवार उन्होंने अपनी वलवीरताका परिचय दिया था। अन्ति-

प्रकार वे जैनखांके साथ सेनापति बनकर सीमान्त प्रदेशके रोशनिया लोगोंको दमन करने गये थे। विजय प्राप्त कर वहांसे लौटते समय पहाड़ी घाटीमें अफगानोंके साथ एक युद्ध हुआ और वहीं दैवदुर्विपाकसे वह वीरगतिको प्राप्त हुए।
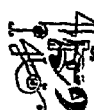
वीरबलका मृत्यु-संवाद सुनकर सम्राट्का हृदय विदीर्ण हो गया। कई दिन तक न उन्होंने अन्न ग्रहण किया, न राजकाजमें भाग लिया। वे वीरबलको भूल जायँ यह असम्भव था। जब तक वे जीवित रहे तबतक वीरबलका वियोग उन्हें दग्ध करता रहा और उनकी बातें याद आती रहीं।

वीरबलके असाधारण बुद्धिबलकी प्रशंसा करनी ही होगी! साधारण स्थितिसे इतनी उन्नति करलेना—राजमन्त्री और सम्राट्के परम मित्र बन जाना कोई सामान्य बात नहीं है। आज भी वीरबल और बादशाहकी बातें बच्चोंसे लेकर बूढ़े तक बड़े चावसे सुनते हैं और वीरबलके बुद्धि बलकी प्रशंशा करते हैं। उनकी बातोंमें विवेक रसिकता और मधुरता कूट कूट कर भरी रहती थी। यही जादू था। इसीसे वह लोगोंके हृदय पर अधिकार जमा लेते थे। एक ही मनुष्यमें ऐसे और इतने गुण शायदही दिखाई दें।

तानसेन

प्रसिद्ध भारत-रत्न संगीत-विद्या-विशारद तानसेनका जन्म ई० स० १५४२ में हुआ था । उनके पिताका नाम शिवजी और पितामहका नाम महेशजी था । वे भारद्वाज गोत्री आदि गौड़ ब्राह्मण थे और पंजाबमें ज्वालामुखी देवीके पास किसी ग्राममें रहते थे । तानसेनकी पूर्वावस्थाका प्रकृत नाम तानू और उनके ज्येष्ठ बन्धुका नाम बीकू था । जब दोनोंकी अवस्था १०-१२ वर्षकी हुई तब शिवजी उन्हें अपने साथ ले दिल्ली चले आये और वहीं कुछ दिनोंके बाद वे सद्गतिको प्राप्त हुए ।

पिताके शरीरान्त हो जाने पर तानू और बीकू-दोनों भाई तीर्थाटन करने लगे । बीकू श्रीमद्भागवतकी कथा बड़ी सुन्दरताके साथ पढ़ते थे । इस विषयमें चारों ओर उनका नाम हो रहा था । जब वे प्रयाग पहुंचे, तब रींवा-नरेश राजा रामसिंहने उन्हें बुला भेजा । बीकू राज्याश्रय प्राप्त कर सकुटुम्ब वहीं निवास करने लगे ।

बीकू राजा रामसिंहको प्रतिदिन भागवत सुनाया करते थे ।

रामसिंहने उन्हें दूध खानेके लिये एक गाय भेंट दी थी। प्रतिदिन एक चरवाहा उसे चरानेके लिये जङ्गल ले जाया करता था। एक दिन वह न आया, अतः भाभीके कहने पर तानू उसे चराने ले गये। जानेके पूर्व, उन्हें क्षुधा लग रही थी अतः भाभीसे भोजन मांगा। भाभीने कहा,—"तुम्हारा भाई, जो इतना परिश्रम करता है, उसे तो इतने समय भोजन मिलता ही नहीं तुम्हें कहांसे दूं?"

भाभीकी यह बात सुन तानू असन्तुष्ट हो गये। सारा दिन उन्होंने कन्दमूल खाकर जङ्गलमें व्यतीत किया। शाम होने पर गायको घरकी ओर खदेड़ दिया और आप एक वृक्ष पर बैठ रहे। रात्रि हो गयी। गाय घर पहुंच गयी, परन्तु तानूका कहीं पता नहीं। बीकू यह देखकर व्याकुल हो उठे। अनेक मनुष्योंको उन्होंने चारों ओर खोजने भेजा किन्तु कोई फल न हुआ। सबके सब निराश हो चार पांच दिनके बाद वापस लौट आये। लोग समझने लगे, कि उन्हें हिंसक पशुने मार डाला। बीकू, इस घटनाके बाद उदास रहने लगे।

तानू जङ्गलमें सुरक्षित थे। सारी रात उस वृक्ष पर व्यतीत कर दूसरे दिन वे बारह कोस दूर निकल गये और एक पर्वतकी गुफामें छिप रहे। आठ दिन इसी प्रकार उन्होंने निराहार दशामें ईश्वराराधन करते हुए व्यतीत किये। नवें दिन शरीर शिथिल हो गया। सोचने लगे, कि इस तरह निराहार रहना अच्छा नहीं। घर लौट जाना भी बुरा है। कछ पढ़ा नहीं, अतः

संसारमें भी निर्वाह नहीं हो सकता। दुःख मुक्त होनेके लिये केवल एक ही उपाय शेष है। वह है आत्महत्या। यदि इसी क्षण चितामें जल मरूं तो समस्त झंझटोंसे छूट जाऊं।

यह सोचकर तानूने काष्ठ एकत्र कर चिता तय्यार की, किन्तु उसी समय किसी महापुरुषने आकर कहा,—"ठहरो! आत्महत्या भयङ्कर पाप है"

तानू ठहर गये। महापुरुषने उन्हें उपदेश दे शान्त किया। तानूने आत्महत्याका विचार परित्याग कर दिया। महापुरुषके चले जाने पर वे इधर उधर भटकने लगे। भटकते हुए किसी संगीत-शास्त्रीसे भेट हो गयी। उसने उन्हें संगीतकी शिक्षा दी।

संगीत विद्या प्राप्तकर कुछदिनोंके बाद तानू घर लौट आये। बीकूके आनन्दका वारा पार न रहा। उनके पूछने पर तानूने समस्त हाल कह सुनाये, केवल संगीत विद्याकी प्राप्तिका हाल छिपा रक्खा।

एक दिन जब बीकू महाराजको कथा सुनाने गये तब वे भी उनके साथ गये। कथा समाप्त होने पर महाराजने तानूसे पूछा—"तुम्हें भी कुछ आता है?"

तानूने महाराजके आग्रह करने पर एक गाना गा सुनाया। उसे सुनकर समस्त श्रोतागण चकित रह गये। महाराज और बीकूको भी बड़ा आश्चर्य हुआ। तानूके अद्भुत गुणका परिचय संसारको आजही मिला। शीघ्रही चारों ओर उनका नाम हो गया और लोग उन्हें श्रद्धाकी दृष्टिसे देखने लगे।

इसके बाद तानूने हरिदास गोस्वामी ग्वालियर निवासी मुहम्मद गौसके निकट काव्यशास्त्र और संगीत विद्याका विशेष रूपसे अध्ययन किया। दिन प्रतिदिन उनकी प्रवीणता और ख्याति बढ़ती ही गयी। अब वे जहां जहां जाते वहीं उनका सम्मान होता।

सुलतान शेरखांके पुत्र दौलतखांसे उन्हें बड़ा प्रेम हो गया। उन्होंने कविताकी रचना कर उसका यथेष्ट गुण गान किया। कुछ दिनोंके बाद उसकी मृत्यु हो गयी, अतः तानू राजा रामसिंहके पास रहने लगे। समूचे भारतमें उनका नाम हो रहा था। जो एक बार उनका गायन सुन लेता वही उन पर मुग्ध हो जाता। उनकी यह प्रशंसा सम्राट् अकबरके कान तक जा पहुंची। उन्होंने उन्हें दिल्ली बुला भेजा तानूने अपनी अद्भुत तान द्वारा सम्राट्के हृदय पर अधिकार जमा लिया। सम्राट्‌ने सोचा—यह रत्न मेरीही सभामें रहने योग्य है। तानसेन भी दिल्लीशका आश्रय प्राप्त कर प्रसन्न हो उठे। मणि और काञ्चनका संयोग हो गया। तानसेन वहीं अपने दिन आनन्द पूर्वक व्यतीत करने लगे।

दीर्घकाल पर्य्यन्त मुसलमानोंके संसर्गमें रहनेके कारण तानूका हृदय मुसलमान हो गया। उन्होंने कुछ दिनोंके बाद स्वधर्मको जलाञ्जलि दे इस्लाम धर्म्म स्वीकार कर लिया। अब वे तानूके बदले तानसेन नामसे पुकारे जाने लगे। इसके बाद उन्होंने एक अच्छे खानदानकी मुसलमान युवतीका पाणिग्रहण

किया और उसके उदरसे उन्हें साहबखां और विलासखां नामक दो पुत्र रत्नोंकी प्राप्ति हुई।

तानसेनके विषयमें एक अद्भुत कथा प्रचलित है। कहते हैं, कि किसीने एक दिन दीपक रागकी प्रशंसा करते हुए सम्राट् अकबरसे कहा, कि दीपक राग गाते ही आपी आप दीपक प्रदीप्त हो उठते हैं और श्रोताओंके शरीरमें उष्णताका संचार हो जाता है। सम्राट्को इस बात पर विश्वास न हुआ। उन्होंने तानसेनसे पूछा। तानसेनने कहा—हां, यह ठीक है। ऐसा होना असम्भव नहीं।

सम्राट् यह सुनकर दीपक राग सुननेके लिये उत्सुक हो उठे। किसी प्रकार उन्हें ज्ञात हो गया, कि तानसेन दीपक गा सकते हैं। उन्होंने तदर्थ तानसेनसे आग्रह किया। तानसेनने कहा—"सम्राट्! दीपक उसीको गाना चाहिये, जो मल्लार भी गा सकता हो। क्योंकि, दीपक गानेसे गायकके शरीरमें जो आग सी लग जाती है, वह मल्लारकी शीतल तरङ्गोंके बिना शान्त नहीं होती। मुझे मल्लारका ज्ञान नहीं, अतः क्षमा करिये, अन्यथा दीपक गानेसे मैं रुग्ण हो जाऊंगा।"

तानसेनकी यह बात सुनकर सम्राट्की उत्कण्ठा और भी प्रबल हो उठी। उन्होंने कहा—"मुझे इन बातों पर विश्वास नहीं। दीपक अवश्य सुनूंगा। गानेसे कोई रुग्ण नहीं हो सकता. यह केवल आपका बहाना है।"

तानसेनने अनेक प्रकारसे सम्राट्को विश्वास दिलानेकी चेष्टा

की, किन्तु कोई फल न हुआ। राज-हठके सम्मुख उनकी विनय अनुनय कुछ काम न आयी। वे दीपकराग गानेके लिये बाध्य हुए। कहते हैं, कि ज्योंही उन्होंने ताल स्वर समन्वित दीपक गाना आरम्भ किया त्योंही सभाभवन दीप मालासे आलोकित हो उठा। सुनते सुनते लोग तन्मय हो गये। उन्हें प्रतीत होने लगा, मानों स्वर्गके नन्दनकाननमें बैठे हुए स्वर्गीय आनन्द अनुभव कर रहे हैं। गान समाप्त होने पर सबकी मोह-निद्रा भङ्ग हो गयी। तानसेन पर चारों ओरसे धन्यवादकी वर्षा होने लगी। सम्राट्ने उन्हें बहुत साधन प्रदान कर सम्मानित किया। सभी लोग उनकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करने लगे।

यह सब होते हुए भी तानसेन प्रसन्न न थे। उन्होंने सम्राट्से जो कहा था, वह ठीकही था। उनके शरीरमें आगसी लग रही थी। अन्दरही अन्दर, अङ्ग प्रत्यङ्ग लपटोंमें झुलसे जा रहे थे। रुग्न हो गये। उनकी तेजस्विता और कान्ति नष्ट हो गयी। सम्राट्को भी विश्वास हो गया, कि तानसेनका कथन यथार्थ था।

शीघ्रही वैद्य और हकीम बुलाये गये, चिकित्सा करायी गयी; किन्तु कोई लाभ न हुआ। तानसेन व्याकुल हो उठे। उन्होंने कहा,—"बिना मल्लार सुने मेरा यह रोग दूर न होगा। मेरे देशाटनका प्रबन्ध कर दीजिये। यदि कोई मल्लारका गायक मिल गया, तो पुनः स्वास्थ्य लाभ कर आपकी सेवामें उपस्थित हूंगा, अन्यथा मेरी जीवन अवधि समाप्त हुई समझिये।"

तानसेनकी यह बात सुन, सम्राट्‌को बड़ा खेद हुआ। वे अपने अनुचित हठके लिये पश्चाताप करने लगे। अन्तमें, तानसेनके कथनानुसार उन्होंने उनके देशाटनके लिये समुचित व्यवस्था कर दी। तानसेन सम्राट्‌को अपने बालबच्चे सौंपकर दो सेवकोंके साथ दिल्लीसे निकल पड़े।

जहां कहीं उन्हें गायकोंका पता चला, वहां वे गये, और अपना हाल निवेदन किया, किन्तु सर्वत्रही उन्हें निराश होना पड़ा। अन्तमें वे गुजरात पहुंचे। वहां उन्होंने अहमदाबादके निकट, साबरमतीके तट पर अपना डेरा डाला। अब उन्हें अपने जीवनकी आशा न थी।

अहमदाबादकी रमणियां उनदिनों साबरमतीमें जल भरने जाया करती थीं। एक दिन दो रमणियोंकी दृष्टि तानसेन पर जा पड़ी। वे दोनों सगी बहिनें थीं और एकही पुरुषको ब्याही थीं। उनका जन्म नागर कुलमें हुआ था। एकका तानी और दूसरीका नाम था नानी।

तानीने तानसेनको देखकर नानीसे कहा,—"बहिन! प्रतीत होता है, कि यह कोई दीपक रागसे जला हुआ गायक है।" तानीकी यह बात तानसेनने भी सुनली। उन्होंने सोचा, जो वैद्य रोगकी परिक्षा कर सकता है, वह रोगीको आराम भी पहुंचा सकता है। आज तक किसीने ऐसी बात नहीं कही। इन देवियोंने मुझे देखते ही मेरा रोग पहचान लिया अतः अवश्य इन्हें सङ्गित शास्त्रका गहरा ज्ञान होना चाहिये।

यह सोचकर तानसेन उनके चरणों पर लोट पड़े। एक बालककी तरह वह रो रो कर उनसे अपना प्राण बचानेके लिये प्रार्थना करने लगे। तानीने कहा,—"यह मुसलमानोंका शासन-काल है। यदि किसी शासकने हमारे अलौकिक गुणकी बात सुन ली, तो हमारे लिये अच्छा न होगा। आजकल, अपना गुण प्रकाशित करना, विपत्तिको बुलाना है। क्षमा करिये, हम आपकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दे सकती।

तानीका यह उत्तर सुन, तानसेन निराश हो गये। वह दुःखाक्रान्त दीन-हीन मनुष्यकी भाँति विलाप करने लगे। तान-सेनकी यह दशा देख छोटी बहिन नानीको दया आ गयी। उस-ने तानीसे कहा,—"बहिन! इसका दुःख अवश्य दूर करना चाहिये। यदि परोपकारमें भी उपयोग न करेंगी तो फिर अपना यह गुण किस काम आयेगा? विपद्‌की संभावनाको मैं मान-ती हूं; किन्तु परोपकार करते हुए प्राण चले जायँ तो मानव जीवनको सफल हुआ समझना चाहिये। परोपकारहीके लिये तो इन वृक्षोंमें फल फूल लग रहे हैं। परोपकारहीके लिये तो कलकल करता हुआ यह स्वच्छ सरिताका जल बह रहा है। परो-पकारहीके लिये तो यह शीतल समीर प्रवाहित हो रहा है। मैं तो समझती हूं, कि हमारे इस मानव-शरीरकी सृष्टि परोप-कारहीके लिये हुई है।"

नानीकी यह बात सुन तानीको भी दया आ गयी। उन्होंने तानसेनको अपने साथ चलनेको कहा। तानसेन प्रसन्न हो उठे।

वे उनके साथ उनके घर गये। घरमें उस समय तानी और नानीका पति न था। दोनों बहिनोंने वीणा उठाकर,—"ॐ अनन्त हरि" कह, मल्लार राग गाना आरम्भ किया। आरम्भ करते ही वायुमण्डल परिवर्तित हो गया। मलय समीर की सी शीतल तरङ्गें तानसेनके दग्ध हृदयको शान्ति पहुँचाने लगीं। आकाशमें अभिनव बादलोंकी श्याम घटा उमड़ पड़ी। तानी और नानीके स्वरमें घुमड़ घुमड़कर वे भी अपना स्वर मिलाने लगे। सङ्गीत पूर्ण होनेके पूर्व ही उनसे अमृत समान जलकी वर्षा हुई। तानसेनके शरीर पर वह जल पड़ते ही उनका समस्त शोक सन्ताप और रोग न जाने कहां जाता रहा।

तानसेनकी प्रसन्नताका वारापार न रहा। उन्होंने अनेक प्रकारसे अपनी कृतज्ञता प्रकट की। अन्तमें उन दोनों देवीस्वरूपा बहिनोंको अपना परिचय दिया। परिचय प्राप्तकर तानी और नानी अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने तानसेनको कई चीजें और सुनायीं। सुनकर तानसेनकी तबियत मस्त हो गयी। वे उनकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करने लगे। चलते समय बोले,—"आपने मुझे प्राण-दान दिया है। आपके इस उपकारका बदला किसी कार्य्य द्वारा नहीं चुकाया जा सकता। फिर भी, आप जो कहें, वह मैं करनेको प्रस्तुत हूं। कहिये, आपकी क्या सेवा करूं?

देवियोंने कहा,—"तानसेन! हमने प्रत्युपकारकी आशासे यह कार्य नहीं किया। हम कुछ भी नहीं चाहतीं। हां, यदि हो

सके तो आप इतना करिये—हम आपसे प्रार्थना करतीं हैं, आप हमारे नाम, किंवा गुणकी कहीं चर्चा न करें।"

तानसेनने कहा,—"आप निश्चिन्त रहें, मैं भूल करभी कही यह बात न कहूंगा।"

इतना कह, उन्हें बारम्बार प्रणामकर तानसेन दिल्ली लौट आये। सम्राट् अकबर तथा उनके अन्यान्य हितैषी उन्हें देखकर प्रसन्न हो उठे। सम्राट्ने कहा,—तानसेन! प्रतीत होता है, कि अभी भारतमें मल्लारके गायक विद्यमान हैं। आप मुझे उनका नाम धाम बतलाइये; मैं उन्हें बुलाकर अपने पास रक्खूंगा।

तानसेन बड़ी दुविधामें पड़ गये। उन्होंने कहा,—मैं वचन दे चुका हूं, अतः उसका नाम नहीं बतला सकता। वह गायक ऐसा है, कि न यहां आही सकता है, न आपके पास रह ही सकता है। पूर्वकी भाँति राजहठके सम्मुख पुनः तानसेनको शिर झुकाना पड़ा। विवश हो उन्होंने सम्राट्से सारा हाल कह दिया। यह भी कहा, कि वे किसी प्रकार यहां नहीं आ सकतीं। प्राण दे देंगी, किन्तु आपकी इच्छाके अधीन न होंगी।

सम्राट्ने कहा,—किसी प्रकार मल्लार राग तो अवश्य सुनना चाहिये। यदि वे यहां नहीं आ सकतीं, तो चलो वेश बदलकर अहमदाबाद चलें और येनकेनप्रकारेण इच्छा पूर्ण करें।

तानसेनको विवश होकर सम्राट्का साथ देना पड़ा। कुछ सेवकोंके साथ वे और अकबर अहमदाबाद पहुंचे। साबरमतीके

तटपर डेरा डाला गया। दूसरे दिन जब तानी और नानी जल भरने आयीं, तब उन्होंने तानसेनको दूरहीसे पहचान लिया। तानीने कहा,—"बहिन! अब आफत आयी समझो! तानसेनका आना अकारण नहीं हो सकता। इसमें कुछ रहस्य मालूम देता है। मैं पहलेही कहती थी, कि आजकल परोपकार करनेका समय नहीं है। न मालूम, अब क्या हो!"

नानीने कहा,—"बहिन! चिन्ता न करो। जो ईश्वरको मञ्जूर होगा, वही होगा।"

इसी समय तानसेनने आकर उनको प्रणाम किया। आगमनका कारण पूछने पर तानसेनने सच्ची बात कह सुनायी। अन्तमें कहा,—"सम्राट् अकबर मेरे साथ हैं। वे आपके मुखसे मल्लार सुननेको उत्सुक हो रहे हैं। बड़ी कृपा होगी, यदि आप उनकी इच्छा पूर्ण करेंगी।"

बहिनोंने कहा,—"तानसेन! हुआ तो यह अनुचित, किन्तु अब सोचनेमें कोई लाभ नहीं। आज दो पहरके समय हमदोनों यहीं आकर आपकी इच्छा पूर्ण करेंगी। आप निश्चिन्त रहें।"

इतना कह, दोनों बहिनें जल लेकर अपने घर चली गयीं। घरमें पतिसे भेट न हुई। उन्होंने एक पत्र लिखकर रख दिया। इसके बाद एक बन्द पालकीमें सवार हो नियत समय पर वे अकबरके डेरेकी ओर चलीं। अकबर और तानसेन उन्हींकी मार्ग प्रतिक्षा कर रहे थे। पालकीसे वीणापाणी तानी और नानीको उतरते देखकर वे प्रसन्न हो उठे। दोनों बहिनोंने वीराङ्गनाकी

भाँति निर्भय हो अकबरके शिविरमें प्रवेश किया। मालूम होने लगा, मानो स्वर्गकी देवियाँ यहां उतर आयी हैं।

पूर्वकी भाँति दोनों बहिनोंने सम्मिलित स्वरमें वीणा पर मल्लार राग गा सुनाया। पुनः उसी भाँति मलयानिलकी तरङ्ग, मनोहर घटा, और अमृत वृष्टिका आनन्द श्रोताओंने अनुभव किया। सम्राट्ने प्रसन्न हो उन्हें बड़ी बड़ी जागीरें इनाममें दीं। तानी और नानी उनसे विदा ग्रहण कर पालकीमें सवार हुई और उसके पटल बन्दकर कहारोंको चलनेकी आज्ञा दी।

कहारोंने पालकी उठा ली। सम्राट् और तानसेनने उन्हें विदा कर अभी शिविरमें पैर भी न रक्खा था, कि पालकीसे एक हृदय स्पर्शी चीख सुनायी दी। कहारोंने भयभीत हो पालकी पटक दी। सम्राट् और तानसेनने दौड़ कर देखा, कि तानीने नानीके और नानीने तानीके हृदयमें खञ्जर भोंक दिया है। पालकीमें रक्तकी धारा बह रही है और दोनों बहिनोंके निर्जीव शरीर एक दूसरेके ऊपर ढल पड़े हैं।

यह हृदय भेदक दृश्य देखकर तानसेन मूर्च्छित होकर गिर पड़े और सम्राट् किंकर्त्तव्य विमूढ़ बन जहांके तहां खड़े रह गये रङ्गमें भङ्ग हो गया। एक क्षण पहले सम्राट्के हृदयमें जो आनन्द था वह विषादमें परिणत हो गया। दोनों देवियोंके प्राण पखेरू देह पिञ्जर छोड़ कर न जाने कहां चले गये।

तानसेनकी जब मूर्च्छा दूर हुई, तब वे व्याकुल हो उठे अन्तमें धैर्य्य धारण कर सम्राट् सह वे उन देवियोंके घर गये

वहां उनके पतिसे भेंट हुई। वह उस समय वही पत्र पढ़ रहा था, जो वह देवियां अकबरके पास जानेके पूर्व लिख कर गयी थीं। उसमें लिखा था:—

"प्राणनाथ !"

आपकी अनुपस्थितिमें, विना आपकी आज्ञा प्राप्त किये, हम सम्राट् अकबर और तानसेनको सङ्गीत सुनाने जा रही हैं। हमारा यह कार्य्य पातिव्रत धर्मके विरुद्ध है, अतः हमने प्रायश्चित करना भी स्थिर किया है। अब इस लोकमें हमारी और आपकी भेंट न होगी। अकबर और तानसेनका कोई दोष नहीं अतः उनसे कुछ न कहें। हमारा अपराध क्षमा करें।

आपकी—"दासियां"

यह पत्र पढ़ कर वह बड़े आश्चर्य्यमें पड़ गया। तत्काल तानसेन और सम्राट् ने अपना परिचय देकर उससे सारा हाल कहा। तानसेन अपनेहीको सारे अनर्थकी जड़ मान कर परिताप करने लगे। सम्राट् ने सबको समझा कर शान्त किया। जो जागीर उन्होंने उन देवियोंको दी थी, वह उसे ताम्रपत्र पर अङ्कित कर प्रदान की। इतनाही नहीं, वल्कि जिस स्थान पर उन दोनोंका अग्नि संस्कार किया गया, उस स्थान पर उन्होंने एक विशाल स्मृति-भवन निर्मित कराया। वह भवन बहुत दिनों तक "सङ्गीत-मन्दिर" के नामसे विख्यात रहा और दर्शकोंको तानी नानीका स्मरण कराता रहा। आज भी अहमदाबादमें

एलिस ब्रिजकी उत्तर ओर उसके खण्डहर वर्तमान हैं और संगी-तज्ञोंके नामसे पुकारे जाते हैं।

तानी और नानीके इस कार्य्यसे तानसेनके हृदयमें बड़ा आघात पहुंचा। वे आजन्म उन देवियोंको न भूल सके। उनका नाम अमर रखनेके लिये उन्होंने भी एक योजना की। उस समय तक प्रत्येक गायक "ओम् अनन्त हरि" इन शब्दोंसे आलाप आरम्भ करता था। तानसेनने स्थिर किया, कि गायक चाहे हिन्दू हो या मुसलमान अबसे वह "ओम् अनन्त हरि" न कह कर इन दो बहिनोंका नाम लेकर आलाप आरम्भ किया करें। तानसेनके इस आदेशानुसार तबसे प्रत्येक गायक "तोम ताना नाना" इन शब्दोंसे आलाप आरम्भ करता है।

तानसेन और ब्रज भाषाके अद्वितीय कवि सूरदास-दोनोंमें बड़ा सौहार्द था। तानसेनकी तानपर सूरदास और सूरदासके पद पर तानसेन मुग्ध रहते थे। सूरदासने लिखा है, कि:—

बिधना यह जिय जानिकै, शेष न दिन्हे कान।
धरा मेरु सब डोलते, तानसेनकी तान॥

वास्तवमें तानसेनकी तान ऐसीही थी। आज भी लोग उसकी उपमा देते हैं। तानसेन जैसे गायक थे, वैसे कवि भी थे। यह सोना और सुगन्धका योग किसी विरलेही मनुष्यमें दिखायी देता है। तानसेनने रागमाला प्रभृति ग्रन्थोंकी रचना की थी। उन्होंने सूरदासकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, कि :—

किधौं सूरको शर लग्यो, किधौं सूरकी पीर।
किधौं सूरको पद लग्यो, तन मन धुनत शरीर॥

"आइने अकबर" में तानसेनकी तारीफ करते हुए मियां फजीने लिखा है, कि तानसेनके समान गायक न हुआ है, न है, न कभी होगा। यही कारण है, कि इस समय भारतके समस्त गायक उन्हें सङ्गीत शास्त्रके आचार्य मानते हैं और उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। यहां तक, कि उनका नाम ही वे नत मस्तक हो उनकी आत्माको प्रणाम करते हैं।

तानसेनका कोई वंशज है या नहीं—यह ज्ञात नहीं। उनके ज्येष्ठ बन्धु चीकूजी, जो रीवांनरेश राजा रामसिंहके पास रहते थे, उनके एक पुत्र था। उसका नाम था चन्द्रभानु। चन्द्रभानुके वंशज पीताम्बर मिश्र कुछ वर्षों के पूर्व विद्यमान थे। उनकी भी सङ्गीताचार्यों में गणना होती थी। कठिनसे कठिन राग रागनियां भी वे ऐसी छटासे गा सकते थे, कि सुनकर सङ्गीतशास्त्रिओंको भी आश्चर्य्य होता था। २२ प्रकारके तन्तुवाद्योंमें उनकी एक समान गति थी। जिसमें दिलवपसन्द, आसरबीन और और सुरशोध, यह तीन वाद्य तो उन्हींके कहलाते थे।

चतुर्थ खण्ड।

महान् ज्योतिषी
भास्कराचार्य्य।

भास्कराचार्य्य भारतके एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। उनका जन्म वर्तमान निजाम राज्यमें सिह्यद्रि पर्वतके समीप बेदर नामक ग्राममें शाके १०३६ में हुआ था। उनके पिताका नाम महेश्वर भट्ट था। वे जातिके ब्राह्मण थे। तीन वेदोंके ज्ञाता और श्रौत स्मार्त्तादि कर्म्मोमें निपुण थे। इतना ही नहीं, वे ज्योतिष विद्याके महान आचार्य्य थे। उन्होंने अपने पुत्रके शुभ लक्षणोंको देखकर उसका नाम भास्कराचार्य्य रखा।

बाल्यावस्थामें भास्कराचार्य्यने अपने पिताके निकट गणित मुहूर्त ग्रन्थ, सिद्धान्त ग्रन्थ, वेद और कितने ही अन्य शास्त्रों का अध्ययन किया। वे महा विद्वान, बुद्धिमान, तेजस्वी और शोधक थे। अध्ययन करने पर उनका पाण्डित्य अगाध हो गया। उन्हें प्रत्येक शास्त्र पर ग्रन्थ लिखनेकी शक्ति प्राप्त हो गयी। सन् ११४६ ईस्वीमें उन्होंने सिद्धान्त शिरोमणि नामक महान् ग्रन्थकी

रचना की। उस ग्रन्थके २ भाग हैं—(१) गोलाध्याय (२) गणिताध्याय।

इसके तीनही वर्ष बाद उन्होंने एक दूसरा ग्रन्थ लिखा। वह ग्रन्थ गणितका था। कहते हैं, कि उनकी पुत्री गणित शास्त्रमें बड़ी निपुण थी। वह ग्रन्थ उन्होने उसीको अर्पण किया और उसीके नाम परसे उसका नाम लीलावती रक्खा। इसके बाद उन्होंने बीजगणित नामक एक तीसरा ग्रन्थ लिखा। वास्तवमें लीलावती और बीजगणित यह दोनों ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणिके उपोद्घात स्वरूप हैं।

ब्रह्मगुप्त नामक एक विद्वानने ब्रह्मसिद्धान्त नामक ग्रन्थकी रचना की थी। उसने उसमें सिद्धान्त शिरोमणिके १२ वें और १८ वें अध्यायके विषयोंको अधिक स्पष्ट किया था। डाक्टर टेलरके पास एक हस्तलिखित ग्रन्थ है। उसमें लीलावतीके विषयोंकी सिद्धता किंवा उदाहरण वर्णित हैं। वह ग्रन्थ भी भास्कराचार्य्य ही की कृति हो ऐसा प्रतीत होता है।

धनेश्वर दैवज्ञ नामक एक पण्डितने लीलावती ग्रन्थ पर टीका की है। उसे लीलावती भूषण कहते हैं। गंगाधर पण्डितने भी एक टीका की है। वह अमृतसागरके नामसे प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त रंगनाथ, सूर्यदक्ष और गणेश नामक विद्वानोंने भी उस ग्रन्थ पर टीकायें लिखी हैं।

भास्कराचार्य्यने सूर्य-सिद्धान्त नामक गणितका एक और महान् ग्रन्थ लिखा था। उस पर रंगनाथ नामक एक विद्वानकी

गूढार्थ प्रकाशिका नामक टीका विद्यमान है। नृसिंह गणक और भूधर प्रभृति पण्डितोंने भी उसपर टीकायें लिखी थीं। इनके अतिरिक्त भास्कराचार्य्यने तिथितत्व नामक एक फल ग्रन्थ और ज्योतिष तत्व नामक एक सिद्धान्त ग्रन्थकी भी रचना की थी।

आर्य्यावर्त्तमें ज्योतिष शास्त्रके विषयमें सर्व प्रथम पराशर ऋषिने कुछ विचार प्रदर्शित किये थे। उनके बाद विराट मुनिने बड़ी खोज और छान बीन कर कितनेही ग्रन्थ लिखे। उनपर उनके विद्वान पुत्रने टीका लिखकर उसमें बहुत कुछ वृद्धि की। फिर महात्मा वेदव्यासने भी कुछ लिखा। इसके बाद भृगु ऋषि हुए। उन्होंने भृगु संहिता नामक ज्योतिष शास्त्रके एक उत्तम ग्रन्थकी रचना की। भृगु ऋषि महान् खगोलवेत्ता थे। भारतवर्षमें ज्योतिषशास्त्रके मुख्य तीन मत प्रचलित हैं (१) पुराणमत (२) जैनमत और (३) सिद्धान्तमत। पुराणमतकी स्थापना की थी, जैनमत बुद्धसूत्र परसे स्थापित हुआ था और सिद्धान्त मतके आचार्य्य भास्कराचार्य्य हैं।

इन बातोंसे सिद्ध होता है, कि भारतमें ज्योतिष विद्या प्राचीन कालसेही प्रचलित है *। हमारे प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थोंमें

+पृथ्वी अपनी धूरी पर घूमती है, यह बात आर्यभट्ट नामक पंडितने अपने ग्रन्थमें लिखी है। आर्यभट्टका जन्म पांचवीं शताब्दिमें हुआ था। यह बात युरोपके गालिलियोके पूर्वकी है। पृथ्वी वायवावरणसे वेष्ठित है यह बात भास्कराचार्य्यने सिद्धान्तशिरोमणिमें भी लिखी है। मेघोंकी वास्तविक उत्पत्तिका कारण महापंडित कालीदासको भी ज्ञात था।

सूर्य और चन्द्र ग्रहण कब होंगे यह बतलाया गया था, किन्तु कालगणनासे उनका समय ठीक न मिलता था। कभी कभी कुछ पलोंका अन्तर पड़ जाता था। देशमें ऐसा कोई विद्वान् भी न था, जो उनका संशोधन कर उस काल—गणितको ठीक करता।

भास्कराचार्य्यने अखण्ड उद्योग, अदम्य उत्साह और अपूर्व बुद्धिबलसे उन सब ग्रन्थोंका अवलोकन किया। उन्हें कितनेही स्थानोंमें कुछ शुद्धि वृद्धि करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। अतः उन्होंने पुनः काल गणना कर, ज्योतिषके नियमोंकी रचना की।

उस समय आजकलके समान दुर्बीन प्रभृति साधन न थे। भास्कराचार्य्यने बांसकी नलीसे ग्रह और नक्षत्रोंका निरीक्षण किया और उनकी गतिका पता लगाया। उसी साधनके सहारे उन्होंने पृथिवी और अन्यान्य ग्रहोंकी ऊंचाई, लम्बाई, आकार और परिणाम प्रभृति बातोंका पता लगा कर अपने ग्रन्थोंमें अङ्कित किया। हमें यह देख कर और भी आश्चर्य होता है, कि उन्होंने उस नलीके सहारे जिन बातोंका पता लगाया और अपने बुद्धिबलसे कालगणना कर जो बातें लिखीं वह आजकलके वैज्ञानिक युगमें दुर्बीन प्रभृति, नाना प्रकारके साधनोंका उपयोग करने वाले युरोपियन विद्वानोंकी बातोंसे अधिकांश मिलती जुलती हैं। भास्कराचार्य्य कितने बड़े गणितज्ञ और ज्ञानी थे, यह इसी बातसे जाना जा सकता है।

भास्कराचार्य्यके सिद्धान्त—पृथ्वी गोलाकार और निराधार है। वह सूर्यके आस पास घूमती है। ग्रहणका कारण पृथ्वी और चन्द्रकी छाया है। पृथ्वीमें लोह चुम्बककी भांति आकर्षण शक्ति भी है। उसी शक्तिसे वह समस्त पदार्थोंको अपनी ओर आकर्षित करती है। यही कारण है, कि जो वस्तु आकाशकी ओर फेंकी जाती है वह पुनः पृथ्वी पर आ गिरती है।

पृथ्वी निराधार है—इस सिद्धान्तको मानते हुए कुछ जैन और बौद्ध पण्डितोंने बतलाया, कि वह प्रतिक्षण शून्य अवकाशमें नीचेकी ओर गिरती जा रही है। महामति भास्कराचार्य्यने उनके इस सिद्धान्तका खण्डन किया। उन्होंने बतलाया, कि पृथ्वीके चारों ओर उससे कहीं अधिक बड़े ऐसे पदार्थ हैं, कि जिनके आकर्षणसे पृथ्वी स्थानान्तरित नहीं होती। इस बातको उन्होंने अनेक प्रमाण और उदाहरणों द्वारा प्रमाणित कर दिया था।

भास्कराचार्य्यने अपने सिद्धान्तशिरोमणि नामक ग्रन्थमें रेखांश, अक्षांश, निरक्षदेश, समवृत्त अयनवृत्त, क्रान्तिवृत्त, याम्योत्तरवृत, सम्पात, पृथ्वीका आकार, उसकी आकर्षण शक्ति, ग्रहण, महाद्वीप, समुद्र प्रभृति सम्बन्धी सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया है।

भास्कराचार्य्यमें उत्साह और उद्योग—यह दो प्रधान गुण थे। कठिनाई और बाधाओंको देखकर वे विचलित न होते थे। हताश होना तो वे जानते ही न थे। उनका उत्साह अखण्ड रहता था। फलतः अपने उद्योगमें वे सर्वदा सफल होते थे।

जो लोग आशा और उत्साहके साथ उद्योग करते हैं, वे अवश्य विजयी होते हैं। जिसे सफलता प्राप्त करनी हो, उसे उत्साहके साथ उद्योग करना चाहिये। भास्कराचार्य्यने जो विजय प्राप्तकी उसका मूलमन्त्र यही था। उनके पास यन्त्रादि साधन न थे, किन्तु वे हताश न हुए। उन्होंने अनुमान, प्रमाण, कल्पना और बुद्धिबलसे अनेक बातोंका पता लगया। आज, पाश्चात्य विद्वान् अनेकानेक साधनों द्वारा उन्हीं बातोंका पता लगाते हैं और हम देखते हैं, कि भास्कराचार्य्यने जो कुछ लिखा है, वह ठीक है।

भास्कराचार्य्य वैष्णव मतके आचार्य्य भी माने जाते हैं। उनके प्रति पूज्य भाव रखने वाले कहते हैं, कि जैन और बौद्ध प्रभृति निरीश्वरवादी पंथोंका खण्डन करनेके लिये सूर्यभगवानने निम्बार्कका अवतार लिया था।

भास्कराचार्य्यने वेदान्त पर निम्बार्क नामक भाष्यकी रचना की थी और लोगोंको सुशोभित देवालयोंमें राधाकृष्णकी मूर्त्ति स्थापित कर उसकी उपासना करनेका उपदेश दिया था। उनका सम्प्रदाय निम्बार्क किंवा निमावतके नामसे पुकारा जाता है। उसके अनुयायी गोपीचन्दनका खड़ा तिलक और उसके बीचमें काली बिन्दी करते हैं। पैंसठ वर्षकी अवस्थामें महामति भास्कराचार्य्य अपनी अक्षय कीर्त्ति छोड़, परम पदको प्राप्त हुए। धन्य है ऐसे उत्साही महापुरुषको—

वराहमिहिर

वराहमिहिर एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। परदुःख भञ्जन राजा विक्रमादित्यके दरबारमें जो "नवरत्न" थे, उनमें वह भी एक थे। उनके पिताका नाम था आदित्य-दास। वे जातिके ब्राह्मण थे और कापित्थ नामक ग्राममें निवास करते थे। वे सूर्योपासक थे और उन्हींकी कृपासे उन्हें बुद्धि-शाली पुत्रकी प्राप्ति हुई थी।

वराहमिहिर ज्योतिष शास्त्रके महान् पण्डित थे। उनके विचारोंकी गम्भीरताके कारण लोग उनकी बड़ी प्रशंसा और सम्मान करते थे। अपना अधिकांश समय वे विक्रमादित्यकी सभामें व्यतीत करते थे। सिद्धार्थ विज्ञान शास्त्रका उन्हें इतना अधिक ज्ञान था, कि वे उसके अद्वितीय पण्डित माने जाते थे। उन दिनों भारतमें उस शास्त्रका वैसा ज्ञाता और कोई न था।

वराहमिहिरने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की थी। उनका प्रथम ग्रन्थ करण था, इस समय वह पंचसिद्धान्तिका किंवा षड्पंचा-शतीके नामसे विख्यात है। उसमें पांच सिद्धान्त और बारह राशियोंके भाव, प्रस्थान, मुहूर्त, शुभाशुभ दिन, चोरका पता

लगाना, उसकी जाति और वर्ण बतलाना, प्रभृति विषयोंका वर्णन है।

वराहमिहिरका दूसरा ग्रन्थ है-होराशास्त्र। वह तीन भागोंमें विभक्त है। (१) जातक किंवा बृहज्जातकमें २६ अध्याय हैं। उस पर उत्पल भट्टकी जगच्चन्द्रिका नामक एक विस्तीर्ण और महीधर भट्टकी एक साधारण टीका है। दूसरा भाग है-यात्रिक किंवा यात्रा निबन्ध। उसमें प्रश्न, तिथि, तिथिबल, वारफल, नक्षत्र, दिवस, ग्रहभेद, लग्ननिश्चय प्रभृति अनेक विषय २१ अध्यायोंमें वर्णित हैं। तीसरा भाग है विवाह पट। उसमें और उनके अन्तिम ग्रन्थ, बृहत्संहितामें सूर्यमण्डल तथा सृष्टिके चमत्कारोंका वर्णन है। बृहत्संहिताको लोग वराहमिहिर संहिता भी कहते हैं।

वराहमिहिरके ग्रन्थोंको देखनेसे प्रतीत होता है, कि वे महान् ज्योतिषी और शोधक पुरुष थे। अकाशके ग्रह और नक्षत्रोंका अवलोकन कर गणितके सहारे वे संवत्सरादि निर्माण करते थे।

आकाशमें एक स्थान पर सात ताराओंका एक झुमका सा दिखाई देता है। लोग उन ताराओंको सप्त ऋषिके नामसे पुकारते हैं। इसका कारण यह है, कि ऋतु, पुलह, पुलस्त्य, अत्रि, अङ्गिरा, वशिष्ठ, और मरिची नामक सप्त ऋषियोंनेही सर्व प्रथम उनका पता लगाया था। वराहमिहिरने उनके उदय अस्त और देखनेका समय अपनी संहितामें वर्णन किया है। किन्तु, यह

विषय यादवोंके कुल गुरु महात्मा गर्गाचार्य्यकी बातोंके आधार पर लिखा गया हो ऐसा प्रतीत होता है।

वराहमिहिरने एक और भी स्तुतिपात्र कार्य्य किया था। उन्होंने ज्योतिषके सहारे ग्रहनिरीक्षण और कालगणना कर युधिष्ठिर प्रभृति प्राचीन राजवंशियोंका समय खोज निकाला था। उन्होंने यह खोज ज्योतिषके अटल नियमोंके सहारेकी थी अतः उसकी सत्यतामें किसीको लेशमात्र भी सन्देह न था।

वराहमिहिर और युरोपके ज्योतिषियोंके अनेक सिद्धान्तोंमें साम्य है। धूमकेतु, पृथ्वी और सूर्य प्रभृतिकी उत्पत्ति विषयक विचार प्रायः न्युकोम और प्रोफ्टरके विचार जैसेही हैं। विक्रमादित्यने उन्हें अद्वितीय विद्वान समझ कर राज्याश्रय दिया था। राज सभाके नवरत्नोंमें उनकी गणना होती थी। इस बातसे सिद्ध होता है, कि उनके अस्तित्वको प्रायः २०० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

सहदेव

सहदेव सरल हृदयके एक मारवाड़ी ब्राह्मण थे। वे इतने निर्धन थे, कि रहनेके लिये घर भी न था। उनकी सम्पत्ति कुछ बकरियों तक ही परिमित थी। जङ्गलमें उन्होंने एक पर्ण कुटी बना रखी थी। उसीमें उनका कुटुम्ब निवास करता था। सारा दिन वे बकरियाँ चराया करते थे। दूधके अतिरिक्त लोग जो कुछ दे जाते, उसीमें उनके कुटुम्बका निर्वाह होता था। जीविकाका और कोई साधन न था।

दरिद्री, कुरूप और सरल होने परभी सहदेव बड़े मेधावी थे। निरन्तर जङ्गलमें रहनेके कारण आकाशके नक्षत्र और ग्रहोंकी गतिका वे निरीक्षण किया करते थे। कुछ दिनोंके बाद, उन्हें ऐसा अनुभव हो गया, कि ग्रहोंकी गति, ऋतुओंका परिवर्त्तन, नक्षत्रोंका उदयास्त, और वायुका वहन देखकर वे जो बात कह देते, वही होती। वर्ष आरम्भ होनेके पूर्वही उस वर्षमें क्या होगा, यह वे प्रकाशित कर दिया करते थे।

सहदेवके पास न धनही था न आडम्बरही। देखनेमें वे पूरे ग्रामीण मालूम देते थे। किसीको इस बातका ख़याल भी न आता था, कि वे इतने प्रतापी और विद्वान हैं। लोग उन्हें कर्म्म भ्रष्ट समझते थे, किन्तु वास्तवमें वे कर्म्म भ्रष्ट न थे। उन्हें घरमें

बैठकर सन्ध्याह्निक कर्म्म करनेका समय न मिलता था अतः वे मानसिक उपासना किया करते थे। सांसारिक झमेलोंसे दूर रहनेके कारण उनका चित्त शांत रहता था। वे तपोवनके तपस्वियोंकी भाँति पवित्र जीवन व्यतीत करते थे।

सहदेव यद्यपि मारवाड़के एक कोनेमें रहते थे, किन्तु उनकी विपुला कीर्त्ति देश देशान्तरमें व्याप्त हो रही थी। इस विषयमें एक आख्यायिका प्रचलित है। कहते हैं, कि दिल्लीके सुप्रसिद्ध राजा अनङ्गपालने भी उनका नाम सुन रक्खा था। वर्त्तमान दिल्ली पहले हस्तिनाके नामसे प्रसिद्ध थी। अनङ्गपालने जब वहाँ एक नया शहर बसानेका विचार किया, तब उन्होंने मुहूर्त निश्चित करनेके लिये सहदेवको मारवाड़से बुला भेजा।

अनङ्गपालका निमन्त्रण प्राप्तकर सहदेव दिल्ली गये। उन्होंने जो मुहूर्त्त बतलाया, उसे अन्यान्य पण्डितोंने भी मान्य रक्खा। सहदेवने अनङ्गपालसे कहा,—"इस मुहूर्त्तमें यदि नगरकी नीव पड़ेगी तो जावच्चन्द्र दिवाकरौ यहाँ आपके वंशज राज्य करेंगे।"

सहदेवकी यह बात सुन, अनङ्गपालको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने सहदेवसे मुहूर्त्तके दिन तक ठहरनेकी प्रार्थना की। सहदेव ठहर गये और अनङ्गपालका अतिथ्य ग्रहण करते रहे। मुहूर्त्तके दिन यथा समय उन्होंने एक लोहशलाका जमीनमें गाड़ दी और कहा,—"राजन्! यह शलाका शेषनागके मस्तक पर गड़ी हुई है। अब आपका राज्य प्रलयकाल तक अचल रहेगा।"

यद्यपि अनङ्गपालकी सहदेव पर बड़ी श्रद्धा थी और वे उनका बड़ा आदर करते थे, किन्तु उनकी इस बात पर उन्हें विश्वास न हुआ। वे सोचने लगे, कि शलाका शेषके फन पर कैसे गाड़ी जा सकती है? इसमें सन्देह नहीं, कि सहदेव मुझे प्रसन्न रखनेके लिये ही ऐसी बात कहते हैं।

यह विचार आते ही सहदेवके स्थानान्तरित हो जाने पर अनङ्गपालने वह शलाका उखड़वा डाली। बादको जब उन्होंने देखा; कि शलाका का शिरोभाग रक्तसे भीगा हुआ है, तब उन्हें सहदेवकी बात पर विश्वास हुआ और वे अपने कृत्यके लिये पश्चाताप करने लगे। उन्होंने सहदेवको बुलाकर सारा हाल निवेदन किया और उनसे क्षमा प्रार्थना की। साथही कहा, इसे फिर उसी तरह गाड़ दीजिये जिससे मेरा राज्य अचल रहे-

सहदेवने कहा—"राजन! अब वह मुहूर्त्त व्यतीत हो गया है, अतः वैसा नहीं हो सकता। तथापि मैं चेष्टा करता हूं।"

यह कहकर सहदेवने पुनः शलाका गाड़ दी। गाड़ कर कहा—"राजन! इस बार यह ढीली रह गयी है। अब वह बात नहीं हो सकती, जो पहले थी।"

सहदेवकी यह बात सुनकर अनङ्गपालको बड़ा खेद हुआ। उनकी बात झूठ न थी। अनङ्गपालने वहां जो नगर बसाया, उसमें क्षत्रिय नरेश अधिक समय तक राज्य न कर सके। कुछ ही दिनोंके बाद, पृथ्वीराजके राज्यत्व कालमें वह मुसलमानों द्वारा पद दलित हुआ। कहते हैं, कि शलाका ढीली रह जानेके

कारण उस नगरका नाम भी ढीली पड़ा जो इस समय बदल कर दिल्ली हो गया है ।

सहदेवके पुत्र न था, केवल एक पुत्री थी। उसका नाम था भड्डली। सहदेवने उसे भी ज्योतिषकी शिक्षा दी थी। वह भी वायु और नक्षत्रोंकी गति, आकाशके परिवर्तन प्रभृति बातों-को देखकर भविष्य बतलाती थी। उसके वचन भारतमें "भड्डली वाक्य" के नामसे प्रसिद्ध हैं। किसानोंमें उनका अच्छा प्रचार है और वे उनसे लाभ भी उठाते हैं। कुछ लोग कहते हैं, कि सहदेवने ही उन वाक्योंकी रचना की थी और भड्डलीके नामसे उन्हें प्रसिद्ध किया था। उदाहरणके लिये हम कुछ वाक्य यहाँ उद्धृत करते हैं।

शुक्रवारकी बादरी, रही शनिश्चर छाय ।
ऐसा बोले भड्डली, बिन बरसे ना जाय ॥
श्रावण शुक्ला सप्तमी, घन गरजैं अधरात ।
तुम पिय जाओ मालवे, हम जइबे गुजरात ॥
श्रावण शुक्ला अष्टमी, चन्दा छिटिक करै ।
कि जल देखिय कूपमें, कि नारी शीश धरै ॥
श्रावण शुक्ला सप्तमी, स्वाती देखिय सूर ।
मूसल धारा जल गिरे, घर होवैं सब चूर ॥
करवाके दिन रोहिणी, कृतिका करै सुकाल ।
कर्मयोग मृग शिर परै, होवै अवशि अकाल ॥
शनि रवि मंगलके दिना, रहैं देवजो सोय ।
चढ़ै चाक पर मेदिनी, जगमें परलय होय ॥

सत्याग्रही प्रह्लाद।

प्रह्लादकी माताका नाम कयाधू और पिताका नाम हिरण्यकशिपु था। हिरण्यकशिपुने दीर्घकाल पर्यन्त तपस्या कर अलौलिक शक्ति लाभ की थी, परन्तु वह उसे सत्कार्यमें व्यय न कर सका। वह दुराचारी और नीच प्रकृतिका मनुष्य था। महर्षि कश्यप उसके पिता और ब्रह्मदेव पितामह थे; परन्तु उनका एक भी गुण हिरण्यकशिपुमें दिखाई न देता था। इसी लिये सर्वसाधारण उसे राक्षस कहते थे।

प्रह्लादके तीन भाई और थे, किन्तु वे सभी शील स्वभावमें अपने पिताकेही समान थे। जिस समय हिरण्यकशिपु तप करने गया, उस समय कयाधु गर्भिणी थी। उसी गर्भसे प्रह्लादका जन्म हुआ।

प्रह्लाद सर्वथा दोष-रहित, भगवद्भक्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, तत्वज्ञानी, सहनशील, दयालु और परोपकारी पुरुष थे। उनमें अपने पिता और भाईका एकभी गुण दिखाई न देता था। वे अपने पूर्वजोंकी भाँति परम ब्रह्मनिष्ठ और सद्‌गुणी थे। उन्हें देख सबको आश्चर्य होता था, कि दानव कुलमें यह देवचरित्र बालक कैसे उत्पन्न हुआ? इसका स्वभाव इतना विलक्षण क्यों है?

प्रह्लादके शील स्वभावको देख, लोगोंका इस प्रकार आश्चर्य

चकित होना स्वाभाविक था। वे यह न जानते थे, कि पारसके स्पर्शसे लोहा सुवर्णमें परिणत हो गया है। उन्हें इस बातका पता न था, कि सोहबतका असर तुख्मकी तासीरको भी बदल देता है। वे तो इसे केवल लीलामयकी लीला समझते थे। परन्तु बात कुछ और ही थी।

जिस समय हिरण्यकशिपु तप करने गया, उस समय दानवोंको शक्ति हीन पाकर देवताओंने उनपर आक्रमण कर दिया। बिना सेनापतिके सेना रणक्षेत्रमें कदापि नहीं ठहर सकती। दानवोंका अग्रणी हिरण्यकशिपु था। उसकी अनुपस्थितिमें दानवोंकी घोर पराजय और देवताओंकी विजय हुई। निरुपाय दशामें दानवोंने पलायन करनाही श्रेयस्कर समझा। वे अपना धन-धाम और सर्वस्व ज्योंका त्यों छोड़ प्राण लेलेकर भागने लगे। देवताओंने हिरण्यकशिपुका राजमन्दिर और समूचा नगर लूट लिया।

हम पहलेही लिख चुके हैं, कि कयाधू उस समय गर्भवती थी। न वह अपना प्राणही दे सकी न भागकर आत्मरक्षाही कर सकी। देवराज इन्द्रने उसे अपने साथ अमरावती ले जाना स्थिर किया। निदान, जब वे उसे ले चले, तब मार्गमें कहीं वीणापाणि नारदसे भेट हो गयी। नारदने पूछा— हे देवराज! एक तो यह परनारी और दूसरे गर्भवती है। इसे ले जाकर क्या करोगे?"

इन्द्रने कहा—"हम लोगोंने दानवोंको निर्वंश करना स्थिर

किया है। अतः इसके गर्भसे जो बालक उत्पन्न होगा उसे मार डालेंगे और बादको इसे छोड़ देंगे।"

नारदने कयाधूकी ओर एक दृष्टिपात किया। उसकी दीन और मलीन मुख मुद्रा देख उन्हें दया आ गयी, बोले—"राजन! इसे इसी समय छोड़ दीजिये। मैं विश्वास दिलाता हूं, कि इसके उदरसे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह महान् ईश्वरभक्त, सदाचारी और सुचरित्र होगा। उसके द्वारा देवताओंका कभी अनिष्ट न होगा।"

किसमें सामर्थ्य था जो नारदकी बात टाल सके? देवराजने तत्काल कयाधूको बन्धन मुक्त कर दिया। नारदने उसे सम्बोधित कर कहा—पुत्री! मुझे यह भली भाँति विदित है, कि तुम साध्वी और सती रमणी हो। जब तक तुम्हारे पति लौट न आयें तब तक चलो, सानन्द मेरी पर्णकुटीमें निवास करो।

कयाधूने कहा—"आपने मेरी रक्षाकी है, अतः मेरे पिता समान हैं। आप जो कहें, वही मैं करनेको तैयार हूं।"

कयाधूकी यह बात सुन नारदको परम सन्तोष प्राप्त हुआ वे सानन्द उसे अपने आश्रम लिवा ले गये। वहीं साध्वी कयाधू तपस्विनिकी भाँति पवित्र जीवन व्यतीत करने लगी। उसकी नित्यचर्यासे प्रसन्न हो, नारदने उसे आत्मधर्म और निर्मल भक्तिका उपदेश दिया। वह उपदेश श्रवणकर कयाधूका हृदय निर्मल और चित्त शान्त हो गया। पवित्र और कर्म-दोष रहित हो गयी।

इन्हीं सब बातोंका प्रभाव गर्भस्थ बालक पर पड़ा। नारदने शायद जान बूझकर ही ऐसा किया था। वे अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता और परम ज्ञानी पुरुष थे। मालूम होता है, कि माताके आचार और विचारोंके अनुरूप ही बालक उत्पन्न होता है—यह बात उन्हें भली भाँति विदित थी। सम्प्रति युरोपीय वैज्ञानिकों ने इस विषय पर बहुत प्रकाश डाला है और सिद्ध किया है, कि गर्भस्थ बालक पर माताकी प्रकृति और विचारोंका गहरा प्रभाव पड़ता है। किन्तु भारतके लिये यह बात नयी नहीं है। यहां धर्म और वैद्यक दोनों प्रकारके ग्रन्थोंमें गर्भिणीको गर्भके हितार्थ धर्म शास्त्रोंका श्रवण और मनन तथा ऐसेही अनान्य कार्य आवश्यक बतलाये गये हैं। यह असम्भव है, कि महामुनि नारद इस विषयसे अनभिज्ञ हों। उन्होंने इन्द्रसे जो बात कही थी, उसे कार दिखानेके लिये ही, वे कयाधूको अपने आश्रम लिवा ले गये और उसे ऐसा उपदेश दिया जिससे उसके गर्भस्थ बालकका कल्याण हो।

यथा समय प्रह्लाद भूमिष्ट हुए। उनकी तेजस्विता देख कर ही लोगोंने कह दिया, कि इस बार बबूलमें आम लगा है। दोही तीन वर्षकी अवस्थामें प्रह्लादके अलौकिक गुण प्रकट होने लगे। लोग उन्हें देखकर चकित हो जाते थे। उन्हें इस बातका पता न था, कि हिरण्यकशिपुके वीर्यका प्रकृति गुण नारद मुनिके संस्कार द्वारा परिवर्तित हो गया था। लोहा पारसके संयोगसे सुवर्णमें परिणत हो चुका था।

प्रह्लादके हृदयमें, भूमिष्ट होनेके पूर्वही भक्ति भावका जो बीज नारद मुनिने आरोपित किया था, वह अब अंकुरित और पल्लवित हो चला। प्रह्लादकी अवस्था पांच वर्षकी भी न थी, कि उनमें रामानुराग प्रकट होने लगा।

एक दिन हिरण्यकशिपुने उन्हें बड़े प्रेमसे गोदमें बैठा कर पूछा—"पुत्र! कहो, तुम्हें संसारमें कौन बात बड़ी प्रिय मालूम होती है?"

प्रह्लादने कहा—"पिताजी! मुझे यह दुनियां भरकी हाय-हत्या और मिथ्याभिमान बिलकुल पसन्द नहीं। जीमें यही आता है, कि एकान्त अरण्यमें बैठ, भगवानका भजन करूं। यही मुझे प्रिय है।"

प्रह्लादकी बात सुन हिरण्यकशिपु चौंक पड़ा। वह त्याग की अपेक्षा भोगका आसन अधिक ऊंचा समझता था। खाना, पीना और सुख भोग करना-इसेही वह जीवनका उद्देश्य मानता था। अपने अबोध बालकके मुंहसे उपरोक्त शब्द श्रवण कर उसे वास्तवमें बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—"पुत्र! तुम्हें यह उलटी बातें किसने सिखायीं हैं?"

प्रह्लादने कहा—"किसीने नहीं। पिताजी! जो मैं कहता हूं, वह वास्तवमें मुझे प्रिय है। वही मेरी आन्तरिक इच्छा है।"

हिरण्यकशिपु चुप हो रहा। सोचने लगा, मालूम होता है, कि किसीने मेरा अनिष्ट करनेके उद्देश्यसे इस अबोध बालककी बुद्धि पलट दी है। अनेक ब्राह्मण इधर उधर घूमा करते हैं,

शायद उन्हींमेंसे किसीने यह कार्य किया हो। यह भी सम्भव है, कि मेरे शत्रुओंने इसे ऐसी शिक्षा दी हो; किन्तु इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता, कि प्रह्लादके हृदयमें आपो आप यह भावना जागरित हुई। कुछ भी हो, मैं अपने जीते जी इसे विपथगामी न होने न दूंगा। जिन देवताओंने मेरी अनुपस्थितिमें मेरा सर्वस्व हरण कर लिया था; उन्हे यह यज्ञ और धर्मानुष्ठान कर सन्तुष्ट करे—यह मैं सहन नहीं कर सकता। जिसने मेरे बन्धुको मार कर पृथ्वी पर अधिकार जमा लिया, उससे यह प्रेम करे—यह मैं अपनी आंखोंसे कदापि न देख सकूंगा। अभी यह बालक है। इसका हृदय अभिनव शाखाकी भाँति कोमल है। जिधर झुकानेकी चेष्टा को जायगी, उधर झुक जायगा। इसे शिक्षा देकर ऐसा बना दूंगा, कि जो मैं कहूं वही करे। शत्रुओंका षड्यन्त्र मैं कदापि सफल न होने दूंगा।

ऐसे ही अनेक तर्क वितर्क कर हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको गुरुकुल भेजना स्थिर किया। दानवोंके कुलगुरु शुक्राचार्य थे, किन्तु उन दिनों वे तपस्या करने चले गये थे। उनके शंडा और आमर्क नामक दो पुत्र घरमें प्रस्तुत थे और वही विद्यालयके बालकोंको शिक्षा देते थे। हिरण्यकशिपुने उन्हें दूत द्वारा बुला भेजा शंडामर्क उसी क्षण आ उपस्थित हुए।

हिरण्यकशिपुने कहा—देखो शंडामर्क! तुम स्वयं समझदार हो अतः विशेष कहना व्यर्थ है। बालक प्रह्लादको तुम्हे सौंपता हूं। इसे लेजाकर अपने विद्यालयमें रक्खो और समुचित शिक्षा

हो। आज कल ऐसे बहुत ब्राह्मण घूमा करते हैं, जो बालकों-को त्याग और भक्तिकी शिक्षा देकर उन्हें अकर्मण्य बना देते हैं, अतः कोई सन्दिग्ध व्यक्ति इसके पास न आने न पावे, इसका भी ख़याल रखना। यदि इसे सब प्रकारकी नीति सिखाकर देव और दानवों पर शासन करने योग्य बना दोगे, तो मैं तुम्हें यथेच्छ धन प्रदान कर सन्तुष्ट कर दूंगा।

हिरण्यकशिपुकी आज्ञा शिरोधार्य कर शंडामर्क प्रह्लादको अपने विद्यालयमें लिवा ले गये। प्रह्लादने अक्षरज्ञान प्राप्त कर पट्टी पर सर्व प्रथम राम नाम लिखा। लिखकर शंडामर्कको दिखाने गये—देखिये, यह ठीक है ?

शंडामर्कने देखा पट्टी पर राम नाम अङ्कित है। देखतेही गरज उठे—प्रह्लाद! तुझे यह किसने सिखाया? खबरदार! पट्टी पर अब कभी यह नाम न लिखना।

प्रह्लाद मनही मन सोचने लगे—क्या राम नाम कोई बुरी चीज है? यदि नहीं, तो फिर मैं क्यों न लिखूं? प्रह्लाद इसी विषय पर सारा दिन तर्क वितर्क करते रहे। राम नाम क्यों न लिखा जाय, यह वे किसी प्रकार स्थिर न कर सके। कहने लगे, मेरा यह काम अनुचित न था। फिर भी मैं रोका गया। यदि अकारण ही एसा हुआ है, तो यह काम मैं अवश्य करूंगा। क्यों न करूं, यह समझमें नहीं आता।

दूसरे दिन शंडामर्कने जब प्रह्लादसे कुछ लिख लानेको कहा तब उन्होंने समूची पट्टी राम नामसे रँगकर रख दी। देखतेही

शंडामर्क झल्ला उठे। बोले—"फिर तूने वही काम किया? कल मना किया था—सुना नहीं ?"

राम नाम क्यों न लिखना चाहिये—यह न समझ सकनेके कारण ही प्रह्लादने आज फिर लिखा था। कुछ हठ और कुछ कारण जाननेकी उत्कण्ठा इन्हीं दो बातोंसे वह वैसा करनेके लिये प्रेरित हुए थे। गुरुदेवकी गर्जना सुन वे सोचने लगे—सम्भव है, कि यह काम बुरा हो पर मेरी समझमें न आया हो। यदि कहीं बात ऐसी ही हुई, तो मैंने वास्तवमें बुरा काम किया है। यह सोच कर उन्होंने दबी जबानसे पूछा—भगवन्! क्यों न लिखूं?

शंडामर्कमें उत्तर देनेका सामर्थ्य न था। राम नामको वे बुरा कैसे प्रमाणित करते? कोई भी नहीं कर सकता। बोले—"पहले यह बता, किसी पापीने तेरी बुद्धि पलट दी है या तू आपही इस दशाको प्राप्त हुआ है?"

प्रह्लादने कहा—मुझे किसीने कुछ नहीं सिखाया, पर भूल हो तो आप बता दीजिये।

अच्छा ले बताता हूं—"यह कह कर गुरुदेवने प्रह्लादके पांच सात छड़ियां जमा दीं। प्रह्लादकी आँखोंसे आंसू बह चले। कोमल शरीर पर छड़ियोंके दाग बन गये, पर अब तक वे यह न समझ सके, कि राम नाम क्यों न लिखना चाहिये।

शंडामर्कने सोचा, इसे अक्षर ज्ञान देना और पट्टी पर लिखाना ठीक नहीं। इसे नीतिकी शिक्षा देनी चाहिये। निदान, दूसरे दिनसे वे प्रह्लादको नीतिकी शिक्षा देने लगे।

दूसरी ओर प्रह्लादने सोचा, कि मेरे प्रश्नका उत्तर न मिला। गुरुदेव क्यों मना करते हैं—यह अवश्य जान लेना चाहिये। यह सोचकर दोपहरकी छुट्टीमें उन्होंने सब लड़कोंको समझाया। उनसे कहा कि गुरुदेव जब कुछ लिखनेको कहें, तो सब जन अपनी अपनी पट्टीपर राम नाम लिखो। यदि गुरुदेव देखें और मना करें, तो उनसे प्रश्न करो, कि क्यों न लिखें?

कौतूहल वश दूसरे दिन सब लड़कोंने वैसाही किया। देखकर शंडामर्कका मिजाज हाथसे जाता रहा। वे जान गये, कि यह सब प्रह्लादकीही करतूत है। अतः सब लड़कोंके साथ उनकी भी लम्बी खबर ली गई। यह सब करने परभी वे विचारे उन बालकोंको यह न बता सके, कि राम नाम क्यों न लिखना चाहिये।

शनैः शनैः बालकोंकी इस जिज्ञासा और हठने सत्याग्रहका रूप धारण किया। शंडामर्क चाहे जो लिखाते लड़के राम नामके सिवा और कुछ न लिखते। यदि मार पड़ती, तो चुपचाप सहन कर लेते। सब कुछ हो जानेके बाद फिर वही प्रश्न पूछते—क्यों न लिखें?

इस झमेलेमें बहुत सा समय बीत गया। प्रह्लाद आरम्भसे ही प्रतिभा सम्पन्न थे। अब उनकी बुद्धि और भी परिपक्व हो गयी। शंडामर्कने उन्हें जो कुछ सिखाया, वह उन्होंने अनिच्छा होने परभी सीख लिया। पर, जब तक विद्यालयमें रहे, तब तक उनका सत्याग्रह बराबर जारी रहा।

प्रह्लाद प्रतिदिन अपने सहपाठियोंको दोपहरमें एकत्र कर उन्हें ब्रह्मज्ञानका उपदेश देते। यदि कोई शंका करता, तो उसे निवारण करते। कोई कुछ पूछता तो उसे बतलाते। ज्यों ज्यों लड़के चतुर होते गये, त्यों त्यों सत्याग्रह भीषण रूप धारण करता गया। अन्तमें शंडामर्क उब उठे। उन्हें मालूम हो गया, कि जिन लड़कोंको हम पढ़ाने बैठे हैं, वे हमें पढ़ा सकते हैं। निदान, वे प्रह्लादको लेकर हिरण्यकशिपुके पास पहुंचे। बोले —लिजिये, जो कुछ हो सका, वह इसे पढ़ा दिया। पर यह लड़का इतना हठी और दुराग्रही है, कि इससे हमें हार माननी पड़ी। इसने विद्यालयके तमाम बालकोंको बहँकाकर निरंकुश और स्वेच्छाचारी बना दिया है। राजन्! अब इसे सम्हालना और पढ़ाना हमारे अधिकारके बाहरकी बात है।

शंडामर्ककी यह बात सुन हिरण्यकशिपुने प्रह्लादकी ओर देखा। प्रह्लाद शान्त थे। अनेक बार हिरण्यकशिपुको शंडा-मर्ककी ओरसे ऐसेही उलाहने मिल चुके थे। परन्तु आजका उलाहना उन उलाहनोंसे कहीं अधिक जोरदार था। हिरण्य कशिपुनेभी स्थिर कर लिया, कि अब प्रह्लादको विद्यालयमें रखना निरर्थक है। पूछा—"कहो पुत्र, तुमने विद्यालयमें क्या सीखा?"

प्रह्लादने कहा—पिताजी! राम नामके सिवा और कुछ न सीख सका। पर वह भी मुझे गुरुदेवने नहीं बताया। श्रवण, कीर्त्तन स्मरण आदि नवधा भक्ति किंवा आसन, प्राणायाम आदि

योगके अंग भी नहीं बतलाये। सामदाम और दंड भेद आदि कितने ही बखेड़े बतलाये, पर रुचिकर न होनेके कारण, मैंने उन्हें याद रखनेका कष्ट नहीं उठाया।

प्रह्लादके यह शब्द सुनतेही हिरण्यकशिपुके नेत्र लाल हो गये और ओंठ फड़कने लगे। उसने शंडामर्ककी ओर दृष्टिपात कर कहा—"तुमने इस बालकको क्या यही शिक्षा दी है? मैंने इसे सौंपते समय तुमसे क्या कहा था? क्यों मेरी इच्छा विरुद्ध ऐसी शिक्षा दी? तुम लोगोंने मित्र होकर भी शत्रुका काम किया है। यदि मेरे गुरुपुत्र न होकर तुम और कोई होते, तो तुम्हें इस कर्मका ऐसा प्रतिफल चखाता, कि जन्मभर याद करते।"

हिरण्यकशिपुकी यह डांट सुनकर शंडामर्क कांप उठे। बोले—"राजन्! यह आपका पुत्र जो कुछ कह रहा है, वह इसे न तो हमीने पढ़ाया है, न किसी दूसरेने ही। वह सब उसे स्वयं उसकी प्रकृतिने पढ़ाया है। आप शान्त हों, क्रोध न करें। इस लड़केकी बुद्धिही ऐसी है।

गुरुपुत्रोंका यह वक्तव्य समाप्त हो जाने पर हिरण्यकशिपुने उन्हें विदाकर दिया। बादको प्रह्लादसे डपटकर पूछा—"हे दुष्ट! सच बता, तेरी यह मति किसने भ्रष्ट करदी?

प्रह्लादने कहा,—"किसीने नहीं। पिताजी, जो मैं कहता हूं, उसमें बुरा क्या है? हां, जिन्हें सदा गृहस्तीके सुखोंकीही चिन्ता लगी रहती है, जिन्हें विषयोंसे विश्राम कभी मिलता ही नहीं

और जो विषय सेवनको ही जीवनोद्देश्य समझते हैं, उन्हें ऐसी बातें अवश्य बुरी मालूम होती हैं। न वे दूसरोंका उपदेशही मानते हैं, न अपने आपही श्रीहरीकी भक्ति करते हैं। ऐसे मनुष्य तत्वज्ञान और मोक्ष, जो मानव जीवनके वास्तविक ध्येय हैं—कदापि नहीं प्राप्त कर सकते।"

इतना कह प्रह्लाद चुप हो गये। सुनतेही हिरण्यकशिपु जल-भुन कर कबाब हो गया। उसने राक्षसोंसे कहा—"इसे इसी क्षण मेरी आंखोंके सामनेसे हटा लो और कहीं ले जाकर मार डालो। यह अपने सुहृदोंको छोड़, चचाके मारने वाले, विष्णुके चरणोंकी पूजा करता है! अहो! न जाने इसे विष्णुने कैसे अपना लिया? इस छोटी अवस्थामेंही मातापिताकी ममता छोड़ कर विष्णुसे प्रेम करता है। न जाने उनसे इसका कौन उपकार होगा! हे राक्षसो! इसे ले जाओ, और यदि यह राम नाम कहना न छोड़े; तो इसे चाहे जिस अवस्थामें चाहें जिस प्रकार मार डालो। पुत्र होकर भी जो अहितचिन्तन करे, उसे अपना शत्रुही समझना चाहिये। देखो, अपना दुराग्रह छोड़ता है या नहीं!"

इतना कह हिरण्यकशिपुने प्रह्लादसे फिर पूछा—"क्यों मूढ़! अब रामका नाम तो न लेगा?"

प्रह्लादने कहा,—"पिताजी! कैसे कहूं, कि न लूंगा। श्री रामही तो मेरे जीवनाधार हैं।"

यह सुन हिरण्यकशिपुने गरज कर कहा—"राक्षसो! इसे

इसी क्षण यहीं मार डालो। इसकी मृत्यु देखकर मैं अप दग्ध हृदय शीतल करूंगा।"

यह सुनते ही अनेक राक्षस, त्रिशूल ले लेकर प्रह्लाद पर टूट पड़े। पर यह क्या? वे प्रह्लाद पर प्रहार कर रहे हैं, य फौलादकी दीवार पर? त्रिशूलोंकी धारें कुंठी क्यों हो गयीं प्रह्लाद विचलित क्यों न हुए? राक्षसोंका धैर्य्य क्यों छूट गया सबके सब दूर क्यों खड़े हो गये?

प्रह्लादका मारना सहज नहीं। हिरण्यकशिपु बड़ी चिन्तामें पड़ गया कुछ देरके बाद उसने कई उपाय खोज निकाले। राक्षसों से बोला—"इसे पर्वतकी चोटीसे ढकेल दो, हाथीसे कुचलवा दो, बाघसे नोंचवा लो और इतने पर भी न मरे, तो विष दे दो। देखें, कैसे नहीं मरता है।

राक्षसोंने हिरण्यकशिपुकी आज्ञा शिरोधार्य कर यह सब उपाय कर देखे, परन्तु प्रह्लादका बाल भी बांका न हुआ। जब पर्वतकी चोटी परसे ढकेल दिये गये, तब राम राम कह कर इस प्रकार उठ बैठे, मानों निद्राका परित्याग कर गुद गुदे गद्दे परसे उठ रहे हैं। मदोन्मत्त हाथी छोड़ा गया, तो उसने उन्हे उठाकर अपनी पीठ पर बैठा लिया और जब बाघके आगे डाल दिये गये तो वह सात दिनका भूखा बाघ पालतू कुत्तेकी भाँति उनके हाथ पैर चाटने लगा। इसके बाद प्रह्लादके हाथमें हलाहलका प्याला रक्खा गया। कहा गया, कि या तो राम राम कहना छोड़ दो या इसे पी जाओ।

प्रह्लाद राम नाम लेना छोड़ दे यह असम्भव था। वे राम राम कहते कहते ही वह विष पान कर गये, उदर तक पहुंचतेही जो विष प्राण ले सकता था, वह प्रह्लादके लिये अमृत हो गया, एक एक कर तीन दिन व्यतीत हो गये, पर प्रह्लादका चेहरा तक न मुरझाया।

अब हिरण्यकशिपु बड़ी चिन्तामें जा पड़ा। उसे मालूम होने लगा मानो प्रह्लाद अजर अमर है। वह सोचने लगा, कि कहीं यह पुत्र ही मेरी मृत्युका कारण न हो जाय। ऐसे ही अनेक तर्क वितर्क करनेके बाद उसने दो चार उपाय और खोज निकाले तदनुसार प्रह्लादको मार डालनेकी चेष्टा होने लगी। वे धूपमें बैठाये गये; शीतमें बैठाये गये, निराहार रक्खे गये, जलमें डुबोये गये और कोठरीमें बन्द किये गये, पर सभी व्यर्थ। एक भी चेष्टा सफल न हुई।

हिरण्यकशिपुका मुँह सूख गया। प्रफुल्लता जाती रही। रात दिन उदास रहने लगा। यह उसकी बहिन होलिकाने देखा। देखकर चिन्तातुर हो उठी। कारण पूछा। हिरण्यकशिपुने कुछ भी न छिपा कर सारा वृतान्त उसे कह सुनाया। सुन कर होलिकाने कहा—ओह, जरासी बातके लिये इतनी बड़ी चिन्ता? इतना उद्वेग? प्रह्लादका प्राण लेना मेरे बायें हाथका खेल है। एक चिता तैयार करवाइये। मैं प्रह्लादको गोदमें ले, उस पर बैठूंगी। शायद तुम्हें नहीं मालूम, पर मैं वह विद्या जानती हूं, जिससे मैं अग्निमें जल नहीं सकती। प्रह्लाद जल जायगा, मैं जीती जागती फिर निकल आऊंगी।

वह्निकी यह बात सुन हिरण्यकशिपुके मुख पर स्मितकी रेखा झलक मारने लगी। उसके हृदयमें आशाका संचार हुआ। मानों डूबतेको सहारा मिल गया। उसने तत्काल एक वृहत चिताका आयोजन किया। होलिका प्रह्लादको उठा लायी। लाकर गोदीमें बैठाल चिता रोहण किया। राक्षसोंने हर्षनाद कर उसमें आग लगादी। प्रह्लाद समाधिस्थ योगीकी भाँति स्थिर बैठे थे। उनके नेत्र, सायंकालके कमलोंकी भाँति बन्द थे। चेहरे पर घबड़ाहटका एक भी चिन्ह दिखाई न देता था। परन्तु होंठ बराबर हिल रहे थे। मुखसे राम नामकी ध्वनि निकल रही थी।

चिताकी भीषण लपटें आकाश तक जा पहुंची। चारों ओर धुआँ छा गया। राक्षसोंने समझा-आज प्रह्लादका अन्त हो गया। किन्तु उनकी यह धारणा ठीक न थी। अग्नि शान्त होने पर उन्होंने देखा; कि होलिका जलकर भस्म हो गयी है और प्रह्लाद चिता भस्म पर पद्मासन लगाये बैठे हुए हैं। उनके मुखसे वही राम नामकी ध्वनि, अबभी निकल रही है।

यह दृश्य देखकर दानव दल भी, चकित और स्तम्भित गोया। उसे यह न समझ पड़ा, कि यह स्वप्न है या सत्य? हिरण्यकशिपु भी अपने नेत्र मलने लगा। किन्तु फिर भी जब उसे वही दृश्य दिखाई दिया, तब सोचने लगा, कि यह क्या? होलिका तो कहती थी; कि मैं न जलूंगी, प्रह्लाद जल जायगा; परन्तु परिणाम विपरीत क्यों हुआ? यह मूढ़ अब भी मेरा जी जलानेके

लिये जीवित है। इस बार भी इसकी रक्षा हुई है, परन्तु चिन्ता नहीं, अबमें स्वयं इसे यम सदन भेजूंगा।

यह सोचनेके बाद हिरण्यकशिपु प्रह्लाद पर झपट पड़ा। प्रह्लाद अब तक चिता भस्ममें उसी तरह बैठे हुए थे। मालूम होता था, मानों स्वयं शंकर भगवान भस्म विलेपित बाल ब्रह्मचारीके वेशमें आसीन हैं। हिरण्यकशिपुने उन्हें हाथ पकड़ कर बाहर खींच लिया और गरज कर पूछा—"क्या अब भी तू राम राम न छोड़ेगा?"

प्रह्लादने उत्तर दिया—नहीं, कभी नहीं। चाहे प्राण ले लो —यह तुम्हारे अधिकारकी बात है। किन्तु मैं राम राम कहना नहीं छोड़ सकता।

हिरण्यकशिपुने राक्षसोंसे कहा—"इसे पन्द्रह दिनके लिये घोर कारागारमें बन्द कर दो। देखो, इसके विचार परिवर्त्तित होते हैं या नहीं? यह अन्तिम अवधि है। यदि पन्द्रह दिनमें इसने अपना दुराग्रह न छोड़ा, तो मैं स्वयं इसे प्राण-दण्ड देकर राम राम कहनेका मजा चखाऊंगा।"

इतना कह हिरण्यकशिपु वहांसे चला गया। राक्षसोंने प्रह्लादको लेजाकर कारागारमें बन्द कर दिया। पन्द्रह दिन व्यतीत हो गये, परन्तु प्रह्लादके विचारोंमें लेश मात्र भी अन्तर न पड़ा। सोलहवें दिन दैत्यराजने राक्षसोंको आज्ञा दी कि प्रह्लादको मेरे सन्मुख उपस्थित करो। राक्षसोंने वैसाही किया। हिरण्यकशिपुने देखा, कि अब भी प्रह्लाद रामका नाम ले रहा है। देखते ही

उसके क्रोधका वारापार न रहा। सारा शरीर काँप रहा था। होंठ फड़क रहे थे। नेत्रोंसे मानों चिनगारियां निकल रही थीं।

हिरण्यकशिपुकी यह भाव भंगी देख, राक्षक गण समझ गये, कि आज कुछ अनर्थ अवश्य होगा। सबके हृदय किसी अनिष्टकी आशंका कर कांप रहे थे। इसी समय हिरण्यकशिपुकी गर्जना सुनायी दी। उसने प्रह्लादको सम्बोधित कर कहा,—हे मति-मन्द! हे कुलद्रोही! अब भी खैर है। दुराग्रह छोड़ दे। रामका नाम न ले। मेरा कहा मान। अन्यथा समझ ले, कि आज जीवन अवधि समाप्त होती है।

प्रह्लादने नम्र होकर कहा,—मैं जो कहोगे वह करूंगा; जिस तरह रखोगे उसी तरह रहूंगा, पर रामका नाम न छोड़ सकूंगा। जिसने समस्त सृष्टिकी रचना की है, प्राणी मात्रको जन्म दिया है, उस परम पिताको भुलाना—उसके प्रति कृतघ्नी होना है। मैं उस अजर अमर और सर्व व्यापी परमात्माको कभी न भूल सकूंगा।

हिरण्यकशिपुने तमक कर कहा,—मूढ़ मैंने तुझे परमात्माका गुण गान करनेके लिये नहीं बुलाया। मिथ्या बकवाद द्वारा मेरे कानोंको अपवित्र न कर। तेरे भगवान्की अजरता, अमरता और व्यापकता मैं भली भाँति जानता हूं। मेरे मुख पर ही मेरे शत्रुकी प्रशंसा करते तुझे लाज नहीं आती? अच्छा, अब अपने कियेका फल भोग कर। बुला अपने रामको! कहां है तेरा राम?

प्रह्लादने कहा,—पिताजी! उन्हें बुलाना न पड़ेगा। वे स्वयं

सब कुछ देख और सुन रहे हैं। मुझमें आपमें और वस्तुमात्रमें व्याप्त हो रहे हैं। ऐसा कोई स्थान नहीं, जहां वे न हों। ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो उनसे रहित हो।

हिरण्यकशिपु झल्ला उठा। कहने लगा—"मूर्ख! अब भी बकवाद नहीं छोड़ता? बोल क्या इस खम्भेमें भी तेरा राम है?"

प्रह्लादने कहा,—"हां, अवश्य। मैं उन्हें इस खम्भेमें भी देख रहा हूं।"

प्रह्लादकी यह बात सुन हिरण्यकशिपुको बड़ा क्रोध आया। उसने उस खम्भेमें एक ऐसा मुष्टि प्रहार किया, कि वह बीचसे फट गया। फटते समय ऐसी विकट और हृदय स्पर्शी ध्वनि हुई, कि राक्षसोंके दिल दहल गये। हिरण्यकशिपु भी हकबकाकर सन्न हो गया। सबकेसब बड़ी चिन्तामें जा पड़े। किसीको यह न ज्ञात हो सका, कि ध्वनि कहांसे आ रही है। मालूम होने लगा, मानो प्रलय हो रहा है।

किन्तु यह स्थिति अधिक समय तक न रही। कुछही देर के बाद खम्भेसे नृसिंह भगवान निकल पड़े। उनका भयानक शरीर, भीषण भाव और गदादि आयुध देख दैत्यगण भयसेही मृतक तुल्य हो गये। किन्तु हिरण्यकशिपु सावधान था। वह समझ गया, कि प्रह्लादका राम इस वेशमें उपस्थित हुआ है। निदान अपनी गदा लेकर वह उनपर झपट पड़ा। नृसिंह भगवानने उसके प्रहारको अनायासही व्यर्थ कर, उसके हाथसे गदा छीन ली। गदा छिन जानेपर हिरण्यकशिपुने तलवारका

वार किया परन्तु वह भी व्यर्थ। कुछ कालतक दोनोंमें युद्ध होता रहा। अन्तमें सायंकालके समय नृसिंह भगवानने हिरण्य कशिपुका पेट फाड़ डाला। फाड़तेही उसके प्राण पखेरू देह पिञ्जरको छोड़ न जाने कहाँ चले गये।

दानवदल आपही मृतप्राय हो रहा था। कुछ तो प्राण ले कर भगे। कुछको जीवनदान दिया गया और कुछ युद्धमें मारे गये। जिसने जैसा किया वैसा फल पाया।

हिरण्यकशिपु और दानवोंका विनाश देखकर लोगोंको बड़ा आनन्द हुआ। वे नृसिंह भगवानकी स्तुति करने लगे। नृसिंह भगवानके हृदयमें अबतक रोष भरा हुआ था। उनकी क्रोधाग्नि अब भी शान्त न हुई थी। अन्तमें जब प्रह्लादने आकर अनेक प्रकारसे स्तुति की तब वे शान्त हुये।

प्रहलादकी इच्छा थी, कि सांसारिक झमेलोंमें न पड़कर त्यागीकी भाँति पवित्र जीवन व्यतीत किया जाय, परन्तु नृसिंह भगवानने उन्हें शासनभार ग्रहण करनेके लिये वाध्य किया। निदान बड़ी धूमधामसे प्रह्लादका अभिषेक हुआ। इसके बाद नृसिंह भगवान अन्तर्ध्यान हो गये। प्रह्लादने दीर्घकाल पर्य-न्त दानवोंपर शासनकर अन्तमें परमपद प्राप्त किया। धन्य है ऐसे सत्याग्रही पुरुषको!

नामदेव
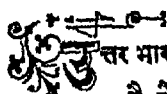
उत्तर भारतमें गोस्वामी तुलसीदासकी जैसी ख्याति है, वैसीही दक्षिण भारतके महाराष्ट्र प्रान्तमें नामदेव की ख्याति है। एक बच्चेसे लेकर बुड्ढातक उनका नाम जानता है और उनके प्रति पूज्य भाव प्रदर्शित करता है। नामदेव की गणना महाराष्ट्रकी सन्तमण्डलीमें की जाती है। उनके प्रकृत माता पिता कौन थे, यह नहीं बतलाया जा सकता। उनके पालक पिताका नाम दामोदर और माताका नाम गुणाबाई था। जातिके वे दरजी थे और पंढरपुरके पास गोकुलपुर नामक ग्राममें रहते थे। उन्हें भीमा नदीके तटपर नवजात शिशुकी अवस्थामें नामदेवकी प्राप्ति हुई थी। उन्होंने नामदेवका लालन-पालन किया। अतः वही उनके माता पिता माने गये, नामदेवका जन्मकाल १२०० शताब्द बतलाया जाता है।

नामदेव बुद्धिमान, दयावान, नम्र, उत्साही, दृढ़ धर्मनिष्ठ, और ईश्वर भक्त थे। वे आठही वर्षकी अवस्थासे योगाभ्यासमें निमग्न रहने लगे थे। उसी समयसे उन्होंने अन्न खाना छोड़ दिया था। केवल शरीर धारणके लिये थोड़ासा दूध पी लिया करते थे। यद्यपि उन्हें किसीने शिक्षा न दी थी, तथापि उनका बुद्धिबल अपूर्व था तत्वज्ञान बढ़ा चढ़ा था और उनमें बड़े बड़े

विद्वानोंका मुकाबला करनेकी शक्ति थी। इसे हम उनके पूर्व-जन्मका संस्कार किंवा योग साधनका फल कह सकते हैं। बाल्यावस्थामें लोगोंको उनकी इस अद्भुत ज्ञान शक्तिका बिलकुल पता न था।

नामदेवके विषयमें अनेक चमत्कार पूर्ण दन्त कथायें प्रचलित हैं। कहते हैं, कि एक बार उनके माता पिता दो चार दिनोंके लिये कहीं बाहर गये थे। घरमें नामदेव अकेले थे। उस समय उनकी अवस्था बहुत छोटी थी। उनके माता पिता विठ्ठल भक्त थे। घरमें विठ्ठलनाथकी एक प्रतिमा स्थापित थी। नित्य उसकी यथा विधि पूजा अर्चा होती थी। नामदेवसे उनके माता पिता कह गये, कि विठ्ठलनाथको खिलाये बिना अन्न न खाना। उनके इस कथनका तात्पर्य भोग किंवा नैवेद्य दानसे था, परन्तु नामदेव यह न समझ सके। वे तो थाली परोसकर विठ्ठलनाथके पास पहुंचे और उन्हें भोजन करनेके लिये आग्रह करने लगे। बारम्बार कहने और विनय अनुनय करनेपर भी जब विठ्ठलनाथजी टससे मस न हुए, तब नामदेव झुंझलाकर वहीं बैठ गये। माता पिताकी आज्ञा उल्लङ्घन करना उनकी दृष्टिमें भयङ्कर पाप था। अतः उन्होंने प्रण किया, कि जब तक विठ्ठलनाथजी भोजन न करेंगे तब तक मैं भी इसी तरह निराहार बैठा रहूंगा। कहते हैं, कि नामदेवकी इस बाल हठसे विठ्ठलनाथका आसन हिल उठा। उन्हें बाध्य हो नर-देह धारण कर भोजन करना पड़ा। दूसरे दिन नामदेवने माता-

पिताके निकट विट्ठलनाथकी यही शिकायत की। कहा, कि यह किसी प्रकार भोजन करने न उठते थे। मुझे बहुत तङ्ग करनेके बाद उठे तो इतना अधिक खा गये, कि मेरे लिये बहुतही कम बचा।"

नामदेवकी यह बात सुन माता पिताको बड़ा आश्चर्य हुआ उन्होंने आद्योपान्त वृत्तान्त पूछा। नामदेवने जब बारम्बार यही बात कही, तब उन्हें कुछ कुछ विश्वास हुआ। उन्होंने कहा—"पुत्र तूं बड़ा भाग्यशाली है। विट्ठलनाथने तुझे तङ्ग नहीं किया, बल्कि तूने विट्ठलनाथको तङ्ग किया है। वे इस प्रकार कभी भोजन नहीं करते। अवश्य तेरी इस चेष्टासे उन्हें कष्ट हुआ होगा। परन्तु हम लोगोंकी अपेक्षा संसारमें तेराही जीवन धन्य है। हम लोगोंको इतने दिन पूजा करते हो गये, कभी विट्ठलनाथजीने उठकर भोजन न किया। यदि तेरे हाथसे वास्तवमें उन्होंने भोजन किया है, तो समझ ले, कि तेरा जन्म सार्थक हो गया।

मातापिताकी यह बात सुन, नामदेवका हृदय पुलकित हो उठा। अब वे दूने प्रेमसे उनकी उपसना करने लगे। उनके हृदयमें यह इच्छा जागरित हुई, कि पुनःएक बार उसी मनोहर मूर्तिका दर्शन करूं। परन्तु अब दर्शन मिलना सहज न था। महान् भक्तोंकी जीवनियोंसे पता चलता है, कि ईश्वर अज्ञानावस्थामें जितनी आसानीसे मिल जाता है, उतनी आसानीसे ज्ञानावस्थामें नहीं मिलता। देवर्षि नारदको स्वयं भगवाननेभी

यह बात कही थी। नामदेवकी यह इच्छा बड़ा परिश्रम करनेसे पर कहीं बहुत दिनोंके बाद जाकर पूरी हुई।

एक दिन औषधिके लिये नामदेव बबूलकी छाल लेने गये। ज्योंही उन्होंने तदर्थ वृक्षपर कुठाराघात किया, त्योंही उससेमें रस बह चला। उस रसको देखकर नामदेवको प्रतीत होने लगा, मानो उन्होंने किसी मनुष्य पर शस्त्राघात किया है और उसके व्रणसे रक्त बह रहा है। बस यह विचार आतेही उनके हृदयमें अहिंसाका स्रोत उमड़ पड़ा। अन्तमें वे यहां तक प्रभावान्वित हुए, कि उसी दिन गृहत्याग कर विरक्तकी भाँति तीर्थस्थानोंमें भ्रमण करने लगे।

नामदेवने एक सन्त मण्डली किंवा साधु संघ स्थापित किया था। उसमें सैकड़ों भक्त सम्मिलित थे। नामदेव उनके साथ हरिकीर्तन करते हुए यत्र तत्र भ्रमण किया करते थे। भक्त लीलामृत और भक्तविजय नामक ग्रन्थोंमें उनकी अनेक जीवन घटनायें अङ्कित हैं। उनमें लिखा है, कि एक बार जब वे ४०० भक्तों के साथ किसी महोत्सवमें सम्मिलित होने जा रहे थे, तब उन्हें किसी नरेशने पकड़ लिया। नामदेवको यह कष्ट असह्य हो पड़ा उन्होंने उस नरेशको अपनी दैवी शक्तिका परिचय देनेके उद्देश्य से एक मृतक गायको सजीवन कर दिया। यह चमत्कार देखकर राजा उनके चरणों पर गिर पड़ा और अनेक प्रकारसे क्षमा प्रार्थना कर उन्हें विदा किया।

कहते हैं, कि एक बार ज्ञानदेव नामक भक्तको साथ ले

नामदेव मारवाड़ गये। मार्गमें ज्ञानदेवको तृषा लगी। एक कूप दिखायी दिया, पर उसमें जल नदारद। मरु भूमिमें जल कहां! ज्ञानदेवका धैर्य जाता रहा। वे अधीर हो उठे। नामदेवने उनकी यह दशा देख, उन्हें आश्वासन दिया और ईश्वरकी स्तुति आरम्भ की। कुछ ही क्षणबाद उस निर्जल कूपमें इतना जल बढ़ा, कि वह ऊपर तक भर गया और उभर कर बाहर बहने लगा। ज्ञानदेवने वह अमृतोमय जल पान कर तृषा शान्त की। कहते हैं, कि मारवाड़में अब भी वह कूप विद्यमान है और उससे उसी प्रकार जल बहा करता है। प्रति वर्ष वहां एक दिन मेला भी लगता है।

नामदेव एक बार शिवरात्रिके दिन जगन्नाथ गये थे। वहां मन्दिरके सन्मुख बैठ, जब वे अपनी सन्त मण्डली सह भजन कीर्तन करने लगे तब मन्दिरके पुजारियोंने बाधा देकर कहा, कि तुम्हारे यहाँ बैठनेसे हम लोगोंको कष्ट हो रहा है, अतः मन्दिरके पीछे जाकर भजन करो। पुजारियोंकी यह बात सुन नामदेव पीछे तो चले गये, पर उन्होने जगन्नाथसे अपनी ओर मुँह करनेकी प्रार्थना की। भगवान अपने भक्तका वचन कैसे टाल सकते थे। उसी क्षण मूर्त्ति सहित वह मन्दिर पश्चिमाभिमुख हो गया। कहतेहैं, कि तबसे वह मन्दिर उसी तरह है। इस घटनाके पूर्व वह पूर्वाभिमुख था।

नामदेवके विषयमें ऐसी ही अनेक कथायें प्रचलित हैं। प्रत्येक कथासे उनकी अलौकिक शक्तिका पता चलता है। सम्भव
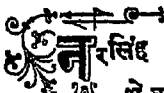
है, कि इनमें अत्युक्तिसे काम लिया गया हो, पर इसमें कोई सन्देह नहीं, कि वे एक महान् ईश्वर भक्त और योगी पुरुष थे। योगियोंके सन्मुख समस्त शक्तियां हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं अतः नामदेवने ऐसे ऐसे चमत्कार कर दिखाये हों, तो कोई आश्चर्य नहीं।

नामदेव न केवल भक्तही थे, बल्कि कवि भी थे। उन्होंने मराठी भाषामें "अभंग" नामक सहस्रों पदोंकी रचना की थी। हरिपाठ नामक एक मनोरंजक ग्रन्थ उन्हींका लिखा बतलाया जाता है। महाराष्ट्रमें नामदेव बड़ी श्रद्धा और आदरकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। जब तक मराठी साहित्यमें एक भी अभंग रहेगा, तब तक उनका नाम अमर रहेगा।

नरसिंह मेहता

नरसिंह मेहता गुजरातके एक सुप्रसिद्ध भक्त-कवि थे उनका जन्म काठियावाड़के अन्तर्गत जूनागढमें संवत १४७० में हुआ था। उनकी माताका नाम दयाकोर भाईका नाम वंशीधर, पिताका नाम कृष्णदामोदर और पिता महका नाम विष्णुदास था। नरसिंह मेहताका जन्म कृष्ण-दामोदरकी उत्तरावस्थामें हुआ था। यद्यपि उनके पिता और पितामह राज-दरबारमें मुत्सद्दो थे, किन्तु जिस समय उनका जन्म हुआ, उस समय कृष्णदामोदर वेकार थे।

नरसिंहकी बाल्यावस्थामेंही उनके पिता परलोक वासी हुए उस समय नरसिंहकी अवस्था तीन वर्षसे अधिक न थी। इस समयसे वे अपनी माता सहित अपने पितृव्य पर्वतदासके आश्रय भूत होकर रहने लगे।

नरसिंह बाल्यावस्थामें मूक प्रतीत होते थे। आठ वर्षका अवस्था पर्यन्त वे एक शब्द भी न बोल सकते थे। कहते हैं, कि एक दिन गिरनार निवासी एक वीणापाणि महात्माजी मुह-ल्लेमें भजन गागाकर भिक्षा मांग रहे थे। उनकी सुमधुर ध्वनि सुनकर बच्चेको गोदमें ले वैधव्य दुःखिता दयाकोर घरसे बाहर

निकल आयीं और एकाग्र हो उस महापुरुषकी वाकसुधा पान करने लगीं। अबोध एवम् मूक बालक नरसिंह भी उन भजनों के श्रवणमें तन्मय हो रहा था। एकाएक उस साधुकी दृष्टि नरसिंहपर पड़ी। दयाकोरके हृदयमें भी उस साधुके प्रति एक प्रकारका अपूर्व और अद्भुत भाव उमड़ पड़ा। वे सादर उसे अपने घर लिवा ले गयीं और उसे भिक्षा प्रदान कर सन्तुष्ट किया। चलते समय दयाकोरने नरसिंहकी अवस्था निवेदन कर दयादृष्टिके लिये प्रार्थना की। साधुपुरुषने प्रसन्न हो नरसिंहसे कहा—"बेटा राधाकृष्ण कहो!"

साधुके यह कहतेही नरसिंह "राधाकृष्ण" बोल उठे। वह सुनकर उनकी माताके आनन्दका वारापार न रहा। उन्होंने आज पहलीही बार अपने प्रिय पुत्रको बोलते सुना था। महात्मा आशीर्वाद देकर चले गये। और नरसिंह उस दिनसे बोलना सीखने लगे। साथही यह भी देखा गया, कि कृष्ण भक्तिकी ओर उनकी विशेष रुचि है। सांसारिक झमेलोंसे वे दूर एवम् उदासीनसे रहते हैं।

नरसिंहने यथा समय अपने पितृपथ बन्धुओंके साथ भास्य शालामें संस्कृत और मातृभाषा गुजरातीकी शिक्षा प्राप्त की। एकबार अपनी माताके साथ वे गोकुल और मथुराकी यात्रा भी कर आये किन्तु बालक और नव तरुणोंमें प्रायः जो चञ्चलता होती है, वह उनमें कभी न दिखाई दी। उनकी मुख मुद्रा सर्वकाल गम्भीर रहती थी। वे किसीसे निष्प्रयोजन बात

चीत न करते थे, यही कारण था, कि लोग उन्हें एक विचित्र व्यक्ति समझते थे।

ग्यारह वर्षकी अवस्थामें उनके व्याहका आयोजन हुआ। बातचीत पक्की हो गयी, परन्तु बादको उन्हें जड़वत देख मामला ठीक न हुआ। नरसिंह रातदिन साधुसन्तोंके साथ घूमा करते कभी कभी स्त्रीका वेश धारणकर आनन्द मग्न हो नाचते कूदते और ईश्वर भजन करते।

ऐसी दशामें उनका व्याह न होना स्वाभाविक था। बात चीत टूट गयी। इससे घरके अन्यान्य मनुष्योंको तो किसी प्रकारका क्षोभ न हुआ, पर उनकी माता इतनी मर्माहत हुई, कि उसी सोचमें वे बीमार पड़ीं, और कुछ दिनोंके बाद उनका प्राणान्त हो गया।

अब नरसिंहको एक मात्र अपने पितृव्य और पितृव्य बन्धुओंका आधार रह गया। हम पहले ही लिख चुके हैं, कि पितृव्यका नाम पर्वतदास था। वे सोचने लगे, कि यदि मेरे भतीजेका व्याह न हुआ तो मेरी बदनामी होगी। वे कुलीन नागर ब्राह्मण थे, अतः उद्योग करने पर शीघ्रही नरसिंहका विवाह हो गया। उनकी धर्मपत्नीका नाम मानिक था।

नरसिंह मेहताका यह विवाह संवत १४८७में हुआ था। इसके दूसरे ही वर्ष पर्वतदासका शरीरान्त हुआ। अब नरसिंह और उनकी पत्नीके पालन पोषणका भार पर्वतदासके पुत्रोंपर आपड़ा। उन्होंने इस बातकी बड़ी चेष्टा की, कि नरसिंह किसी प्रकार

धनोपार्जन करें और अपनी गृहस्थी सम्हालें, परन्तु करना व्यर्थ है, कि वे अकर्मण्य और निरुद्योगी प्रमाणित हुए। उनकी समस्त शक्तियां केवल कृष्ण भक्तिकी ओर लगी हुई थीं। उन्हीं एकमात्र आनन्द कन्द श्रीकृष्णचन्द्रसे उनकी लौ लगी हुई थी।

घर वाले सब ऊब उठे। उन्हें चिन्ता होने लगी, कि नरसिंह अपनी पत्नीका प्रतिपालन किस प्रकार करेगा ? ज्ञाति बन्धुओंमें भी सर्वत्र यही चर्चा चलने लगी। वंशीधरसे अपने घरकी निन्दा न सुनी गयी। उन्होंने एक दिन कुछ क्रुद्ध हो नरसिंहको उपदेश दिया और भला बुरा भी कहा। अन्तमें बोले—"तुम जैसे कपूतके कारण पूर्वजोंका नाम डूब रहा है।"

भाईकी यह बातें श्रवणकर नरसिंहको विशेष क्षोभ न हुआ परन्तु भाभीने जो उपालम्भ दिया, उसे वे अनसुना न कर सके। उसने पतिका अनुकरण कर नरसिंहको वाक् प्रहारों द्वारा भली भाँति मर्माहत किया और कहा—"तुमसे तो धोबीके कुत्ते भी अच्छे होते हैं।"

नरसिंह अपनी भाभीका यह उपालम्भ सहन न कर सके। उनका हृदय छिन्न भिन्न हो गया। उद्वेगके कारण कुछ वैराग्य भी आ गया। सोचने लगे, ध्रुवकी भाँति तपस्या कर स्वतन्त्र होना चाहिये।

भाभीको किसी प्रकार नरसिंहके विचार मालूम हो गये। वह चतुरा थी। तुरन्त उसने नरसिंहको शान्त करनेकी चेष्टा की, परन्तु फल न हुआ। नरसिंह नित्य नियमानुसार साधु मण्डली

में जा बैठे परन्तु आज उनकी मुख मुद्रा पर उदासीकी श्याम रेखायें झलक मार रही थीं। चेहरा उतर गया था। जब हृदयमें अन्धकार व्याप्त हो रहा है, तो मुखपर प्रकाश कहांसे आये। एक साधुने कहा—भाई! अभीसे उदास क्यों होते हो? अभी तो तुम्हें बहुत सी जीवन यात्रा तय करनी है। भोलानाथका स्मरण करो। वे तुम्हारा कल्यान करेंगे।"

इन बातोंसे नरसिंहके मनका समाधान न हुआ। उन्होंने जङ्गलकी राह ली। जूनागढ़से कुछ अन्तर पर, अरण्यमें गोरनाथका मन्दिर था। वहीं वे ठहर गये।

इस समय नरसिंहकी अवस्था सत्रह वर्षकी थी! उन्होंने महेश्वरकी आराधना आरम्भ की। साथही निश्चय किया, कि महेश्वर प्रसन्न होंगे तो घर जाऊंगा, अन्यथा यहीं प्राण विसर्जन कर दूंगा। नरसिंहकी यद्यपि अवस्था छोटी थी, परन्तु प्रतिज्ञा दृढ़ थी। वे सात दिन पर्यन्त निराहार दशामें शिवाराधन करते रहे। आठवें दिन महेश्वर प्रसन्न हो उठे। उन्होंने नरसिंहसे वर मांगनेको कहा। नरसिंहने पुलकित हो कुण्ठित स्वरमें कहा —"भगवन्! आप अन्तर्यामी हैं। मैं आपसे क्या कहूं। यदि वास्तवमें आप प्रसन्न हैं; तो आपको जो वस्तु प्रिय हो, वही मुझे दीजिये।"

शंकर भगवान्ने कहा—"एवमस्तु—ऐसा ही होगा। मुझे रमापति-प्रिय हैं। मैं उन्हींकी तुम्हारे हृदयमें स्थापना करूंगा।

इतना कह, महेश्वरने नरसिंहको दिव्य शरीर धारण कराया।

और अपने साथ वे उन्हें द्वारिका ले गये। वहां श्रीकृष्णसे भेंट हुई। शंकरने नरसिंहको उनके हाथोंमें सौंपते हुए कहा —"लीजिये यह आपका भक्त है—इसे अपनी शरणमें रखिये।

श्रीकृष्णने नरसिंहको गले लगा कर पूछा—"कहो तुम्हें क्या चाहिये? भक्तोंके लिये मेरे पास कुछ भी अदेय नहीं है।"

नरसिंहने श्रीकृष्णसे भी वही निवेदन किया जो भगवान शङ्करसे किया था। बोले—"वही दीजिये, जो आपको प्रिय हो।"

नरसिंहकी यह बात सुनकर श्रीकृष्ण मुस्कुरा उठे। उस समय वे रासक्रीड़ा करने जा रहे थे। नरसिंहको उन्होंने वही दिखाना स्थिर किया। इतनेहीमें रासेश्वरी राधाजी आ पहुंचीं नरसिंहको देखकर उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ। बोली—"यह अपरिचित मनुष्य कौन है और यहां क्यों आया है?"

श्रीकृष्ण राधाका मनोभाव समझ गये। बात यह थी, कि राधाको इस बातका विश्वास न था, कि नरसिंह श्रीकृष्णके परम भक्त हैं। इसी लिये वे उन्हें रासक्रीड़ा दिखानेके लिये तय्यार न थीं। श्रीकृष्णने कहा—"प्रिये! शङ्का न करो। यह मेरा परम भक्त है। कुछ समयके बाद तुम्हें इस बातका विश्वास हो जायगा।"

इतना कह श्रीकृष्णने नरसिंहको मशाल और तेलकी कुप्पी प्रदान की। बोले—"हम रासक्रीड़ा करते हैं, तुम मशाल दिखाओ। यहां तुम्हें जो बातें दिखाई दें, वही तुम संसारमें प्रकाशित करना। इसीसे तुम्हारा और जनसाधारणका कल्याण होगा।"

रासलीला आरम्भ हुई। नरसिंह मशाल दिखा रहे थे। प्रकाशमें न्यूनता न हो इस उद्देश्यसे वे मशालमें अविराम तेल सिञ्चन करते थे। साथही श्रीकृष्णका श्यामसुन्दर ललित त्रि-भङ्ग वस्त्राभरण भूषित मनोहर स्वरूप और राधिकाका अमानु-षिक एवम् अलौकिक सौन्दर्य देखनेमें वे तन्मय हो रहे थे।

नरसिंहको अपने तनो बदनकी भी सुध न थी। उनके हाथ की मशाल स्थिर थी। कुप्पीसे उसपर अखण्ड तेलकी धार गिर रही थी और स्वयं वे भी जड़वत हो रहे थे। तेल अधिक गिरनेके कारण समूचा हाथ उससे तर हो रहा था। शनैः शनैः मशालकी ज्वाला उसमें जा लगी। नरसिंहका हाथ जलने लगा परन्तु नरसिंहको इसका पता न था। उनके दूसरे हाथसे उसपर तेलकी धार गिर रही थी और वे पत्थरके पुतलेकी तरह रासक्रीड़ा देख रहे थे।

एकाएक प्रकाश अधिक हो जानेके कारण राधाकी दृष्टि नर सिंहके हाथपर जा पड़ी। उसे जलता हुआ देख उनका कोमल हृदय कांप उठा। वे श्रीकृष्णसे उसे शान्त करनेके लिये वि-नय अनुनय करने लगीं। श्रीकृष्णने तुरन्त नरसिंहसे मशाल ले ली और उनकी दग्ध भुजाको अनेक प्रकारके उपचारों द्वारा पूर्व वत् बना दिया। यह दृश्य देखकर राधाको विश्वास हो गया, कि नरसिंह श्रीकृष्णके परम भक्त हैं। शायद विश्वास दिलाने के लिये ही श्रीकृष्णने यह लीला की थी।

नरसिंह एक मास पर्यन्त द्वारिकापुरीमें रहे और श्रीकृष्ण

की विविध लीलाओंका अवलोकन करते रहे। इसके बाद पुनः महेश्वर उन्हें गोपनाथके मन्दिरमें छोड़ गये। वहांसे नरसिंह गाते बजाते आनन्द मनाते जूनागढ़ पहुंचे।

यदि पाठक गण महापुरुषोंकी जीवन घटनाओंको सूक्ष्म दृष्टिसे अवलोकन करेंगे तो उन्हें ज्ञात होगा, कि मानव जीवनमें कोई ऐसी घटना घटित हो जाती है, जो जीवन प्रवाहको दूसरी ही ओर पलट देती है। जीवनमें ऐसे परिवर्तन हो जाते हैं, जिनसे बिलकुल कायापलट हो जाती है। इन्हीं परिवर्त्तनोंके कारण, ऐसीही घटनाओंके कारण मनुष्यकी छिपी हुई शक्तियोंका विकाश होता है और उनके द्वारा वह उन्नति पथमें अग्रसर होता है एवम् विशेष ख्याति लाभ करता है। यदि नरसिंहको भाभीने इस प्रकार उपालम्भ दे मर्माहत न किया होता, तो सम्भव था, कि वे उसी दशामें पड़े रहते और आज संसारका एक भी मनुष्य उनका नाम न जानता होता।

घर आकर नरसिंहने अपनी भाभीके चरण स्पर्श किये और उससे सारा हाल कह सुनाया। उसे यद्यपि उनकी बातोंपर विश्वास न हुआ तथापि लोकलाज को लिहाज कर, उसने उनकी अभ्यर्थना की और पुनः उन्हें घरमें स्थान दिया। इन दिनों उनकी स्त्री भी घरमें ही थी। आर्थिक दशा अच्छी न होनेके कारण घरमें यह दो प्राणी भार स्वरूप मालूम हो रहे थे। जैसे तैसे कुछ दिन व्यतीत हुए। नरसिंह किसी प्रकारका उद्योग करनेको तैय्यार न थे। अन्तमें उनकी पत्नीको पराये टुकड़ोंपर

निर्वाह करना और रात दिन उनकी बातें सुनना असह्य हो पड़ा। उसने नरसिंहको समझानेकी चेष्टा की, परन्तु व्यर्थ उनका तो प्रारब्ध और परमात्मापर अटल विश्वास था। उन्होंने पत्नीको भी यही बातें समझायीं, परन्तु उसे यह सब रुचिकर न हुआ ? वह असन्तुष्ट हो एक दिन अपने मायके चली गयी।

नरसिंहकी विडम्बनाओंका यहींसे अन्त न हुआ। घरमें सदैव साधुसन्तोंका अखाड़ा लगा रहता था। सारा दिन घरमें धूम मची रहती थी। यह सबको असह्य हो पड़ा। चारों ओर यही चर्चा चलने लगी। जाति बन्धु भी निन्दा करने लगे अन्तमें नरसिंहको अलग रहनेके लिये उनके भाई-भाभीने बाध्य किया। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि अब एक स्थानमें दो तलवारें न रह सकेंगी। एक घरमें दोनोंका गुजारा न होगा। अब अलग घर लेकर रहो और अपनी गृहस्थी सम्हालो।

यह सुनकर नरसिंहने विवश हो एक अलग घर ले लिया और वहीं वे सहकुटुम्ब निवास करने लगे। उनकी पत्नीने जब देखा कि, ये संसारके मायाजालमें नहीं उलझ सकते। और समय समयपर उन्हें साक्षात परमात्माकी ओरसे सहायता मिलती है, तब उन्होंने भी अपने जीवनको उनके अनुकूल बना लिया वे एक पति परायण साध्वी और सती स्त्रीकी भाँति अपने पतिकी सेवामें लीन रहने लगी। नरसिंहको इससे बड़ी सुविधा हो गयी। उन्होंने स्वयं अपने काव्योंमें कहीं कहीं इस पति-पद-रता स्त्रीकी प्रशंसा की है।

नरसिंह मेहता वैष्णव थे और श्रीकृष्णको अपना आराध्य देव मानते थे। किन्तु उनके जाति-बन्धु—नागरगण शैव थे। नरसिंह कृष्णकी उपासना करें और नीचातिनीच मनुष्योंको भी धर्मोपदेश दें, यह उन नागरोंको पसन्द न था। उन्होंने अनेक बार नरसिंहको शैव मत ग्रहण करनेके लिये बाध्य करना चाहा, परन्तु नरसिंहने कहा, कि मैं हर और हरिको अभिन्न मानता हूं। आप लोग भी अभिन्न मानकर चाहे जिसकी उपासना कर सकते हैं। कहना व्यर्थ है, कि नरसिंहने लोकापवादकी उपेक्षा की और अपने विचारोंमें जरा भी परिवर्त्तन न आने दिया। किन्तु इससे नागरगण और भी असन्तुष्ट हो गये और वे निम्न उपायोंका अवलम्बन कर नरसिंहको नीचा दिखानेकी चेष्टा करने लगे।

इसके बाद पच्चीस वर्षकी अवस्थामें नरसिंहके एक कन्या उत्पन्न हुई। कुछ दिनोंके बाद एक पुत्र भी हुआ, परन्तु नरसिंहको इनका मोह न था। उनकी प्रवृत्तियां लवलेश भी परिवर्तित न हुई थीं। अद्यापि उनका ईश्वर और प्रारब्धपर वैसाही विश्वास था। लोगोंको भी आश्चर्य होता था, कि इनका निर्वाह किस प्रकार होता है, किन्तु सच बात यह थी, कि राजमाता और अनेक श्रद्धावान धनीमानी लोग उन्हें कुछ कुछ सहायता दे दिया करते थे। उसीसे उनका निर्वाह होता था।

कुछ दिनोंके बाद नरसिंहको एक नवीन चिन्ताने आ घेरा। उनकी पत्नी भी चिन्तित रहने लगीं। अन्तमें जिस

विश्वासके वशीभूत हो वे समस्त कार्य करते थे, उसी विश्वास के वशीभूत हो वे द्वारिका गये और वहां सात दिन रहे। लौट आनेपरकी ईश्वर कृपासे समस्त कार्य निर्विघ्न समाप्त हो गया। सम्भवतः उन्हें इस कार्यमें द्वारिकाके किसी हरिभक्तने अच्छी सहायता दी थी। इसी प्रकार उनके पुत्रका विवाह भी सम्पन्न हुआ। सन्तोषकी बात यह रही, कि उनके भाई भावज तथा नागरोंको हंसी उड़ानेका कोई मौका न मिला।

किन्तु दैव दुर्विपाकसे कुछ दिनोंके बाद नरसिंहकी सती स्त्री-का शरीरान्त हो गया। नरसिंहको इससे दुःख अवश्य हुआ, परन्तु वे संसारको स्वप्न वत् और सुख दुःखको दैवदत्त मानते थे अतः सामान्य मनुष्योंकी तरह व्याकुल और अशान्त न हुए।

अभी यह दुःख न भूला था, कि एक दूसरा दुःख आ पड़ा। अचानक उनके पुत्र शामलकी मृत्यु हो गयी। उसकी नवोढ़ा वधू जिसकी चुनरीका रंग भी अभी फीका न पड़ा था, जिसके पांवकी महावर भी अभी न छूटी थी, उस पर वैधव्यका दुःख आ पड़ा। किसी भी सांसारिक मनुष्यके हृदयको चूर्ण विचूर्ण करनेके लिये यह दो वज्र प्रहार पर्याप्त थे, परन्तु सन्त जनोंका हृदय इन आघातोंसे दलित नहीं होता। वे पहलेसे ही इन वस्तु-ओंको नाशवान समझे रहते हैं। वे जानते हैं कि यह सब माया-मिथ्या प्रपञ्च है। वे सुख और दुःखको समान और क्षण स्थायी मानते हैं। इसी लिये ऐसी घटनायें उनके जीवनमें विशेष परि-वर्तन नहीं कर पातीं। नरसिंहने भी ईश्वरेच्छा बलीयसी कह

कर, हृदयको थाम, यह खूनकासा घूंट पी गये।

बिना गृहणीके घर कैसा ? नरसिंहका वह घर अब घर न था अब वह वास्तवमें साधुसन्तोंका अखाड़ा बन गया था। नरसिंह का सारा समय उन हरिभक्तोंकी सेवा और कृष्ण कीर्त्तनमें व्यय होने लगा।

अब भी उन नागरोंके हृदयमें द्वेषाग्नि धधक रही थी। नरसिंह सांसारिक प्रवृत्तियोंसे सर्वथा दूर रहते थे। न उन्हें ऊधव से लेना रहता था, न माधव को देना। अपने कामसे काम था। फलतः नागरोंको समस्त चेष्टायें व्यर्थ जाती थीं। अन्तमें उन्होंने नरसिंहको शूद्रोंसे संसर्ग रहनेके कारण प्रमाणित कर उन्हें जाति बहिष्कृत कर दिया। किन्तु जब नरसिंहने इसकी भी परवाह न की, तब उन्होंने जूनागढ़-नरेशको जाकर समझाया, कि नरसिंह महा पाखंडी और धूर्त है। वह लोगोंकी बहू बेटिओंको धर्मकी आड़ लेकर भ्रष्ट करता है और अस्पर्श शूद्रोंसे संसर्ग रख, जन समाजमें भ्रष्टाचार फैलाता है।

जूनागढ़के तत्कालीन नरेशका नाम मण्डलीक था। उसकी राज-सभामें नागरोंका ही प्राबल्य था। सबोंने जी भर कर नरसिंहकी निन्दा की। निन्दा करनेका प्रधान कारण यह था, कि वे वैष्णव थे और समझाने पर भी शैवमतका अवलम्बन न करते थे।

मंडलीकने नरसिंहको राजसभामें बुला भेजा। वहां अनेक धर्मोंके साधु संन्यासियोंसे वादा विवाद हुआ। अन्तमें यह स्थिर हुआ, कि नरसिंहको यदि श्री कृष्ण स्वयं अपने हाथसे पुष्पमाला

पहना दें, तो यह सच्चे हरिजन माने जाय, अन्यथा इन्हें पाखंडी समझ कर सजा दी जाय।

नरसिंहके जीवनमें यह प्रसंग सबसे अधिक विकट और परीक्षाका था। वे और अन्यान्य हरिजन सारा दिन कृष्णकीर्त्तन करते रहे, परन्तु कृष्णके दर्शन न हुए, सन्ध्या हुई, सन्ध्यासे रात हुई, और वह भी धीरे धीरे बीत चली, परन्तु कृष्ण भगवानने नरसिंहकी टेर न सुनी। सवेरा हो चला, सब लोग यह समझने लगे, कि अब नरसिंहकी जीवन अवधि समाप्त हुई-अब वे पाखंडी सिद्ध हुए-अब उन्हें अवश्य सजा दी जायगी, किन्तु उस लीलामयकी लीलाको कौन जान सकता है? नरसिंहका विश्वास था, कि जिसने द्रौपदीकी बीच सभामें लाज रक्खी थी, वही मेरी भी लाज रक्खेगा।

हरिजनोंके जी छटपटा रहे थे। वे अपनी आंखोंसे नरसिंहकी अप्रतिष्ठा न देखना चाहते थे। समस्त वैष्णवोंकी आन्तरिक इच्छा थी, कि वैष्णवोंकी हेठी न हो। राजमाता महलसे निकल आयीं और उन्होंने मण्डलीकको बड़े कड़े शब्दोंमें भर्त्सना की, समस्त राजसभाको धिक्कारा और कहा, कि जो असम्भव है वह सम्भव कैसे हो सकता है। व्यर्थ हरिजनको कष्ट न दो। इससे परमात्मा अप्रसन्न होगा। राज्य पर विपत्तिकी काली घटा घिर आवेगी और इस दुर्मन्त्रणा करने वालों पर बिजली फट पड़ेगी। यह बड़ा भारी अनर्थ हो रहा है—नरसिंहको छोड़ दो, अन्यथा सर्वनाश हो जायगा।

विनाशकाले विपरीतबुद्धि" इस लोकोक्तिके अनुसार मण्डलीकको कुछ भी न सूझ पड़ा। उसने अपनी हठ न छोड़ी। उस ओर नरसिंह भी अनाहार दशामें बराबर कृष्णकीर्त्तन कर रहे थे। उनके मुखमें अब तक जल भी न गया था। न मालूम मण्डलीक नरसिंहकी परीक्षा ले रहा था या नरसिंह कृष्णभगवानकी दोनों अपनी बात पर डटे हुए थे। सूर्योदयका समय आ पहुँचा मण्डलीकने नरसिंहको अन्तिम सूचना दे दी। नरसिंहने भी एक ऐसा भजन गाया, कि श्रीकृष्ण भगवानका आसन हिल उठा। वे जिस प्रकार गजको छुड़ाने दौड़े थे, उसी प्रकार नरसिंहको माला पहनाने दौड़ पड़े। उन्हें देखतेही प्रेमातिरेकके कारण नरसिंहके रोमाञ्च हो आया, कण्ठ रुद्ध हो गया और आखोंसे जलकी धारा उमड़ पड़ी। लोगोंकी आँखोंमें चका चौंध लग गया। बिजलीसी चमक गयी। मालूम हुआ, कि अनन्त-रविशशिकी प्रभामें नरसिंह लीन हुए जा रहे हैं। दूसरे ही क्षण वह प्रकाश अन्तर्ध्यान हो गया और लोगोंने देखा, कि वही पुष्पमाला जो सामने वाले मन्दिरकी कृष्णमूर्त्तिको पहनाई गयी थी, नरसिंहके कण्ठमें पड़ी है।

नरसिंह श्रीकृष्णके स्तवनमें तन्मय हो रहे थे। जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन तैसी—यह चौपाई आज चरितार्थ हो गयी। हरिजनोंने कृष्णभगवानकी मनोहर मूर्त्तिका दर्शन किया परन्तु मण्डलीक और उसके मन्त्रियोंको आँखे उस अद्वितीय प्रकाशको देख कर झुलस गयीं थीं। उनका मुख मुर-

भाये हुए कमलकी भांति श्री हीन हो रहा था। पुनः राजमाताने गरज कर कहा—अब भी कुछ नहीं बिगड़ा, नरसिंहसे क्षमा प्रार्थना करो अन्यथा सर्वनाश हो जायगा।

माताके यह शब्द सुनते ही मण्डलीक नरसिंहके चरणों पर लोट पड़ा। नरसिंहको क्या? उनके हृदयमें तो कोई बुरा विचार ही न उत्पन्न हुआ था। उन्होंने मण्डलीकको गले लगा कर उसके समस्त अपराध क्षमा कर दिये। यद्यपि नरसिंहने मण्डलीकको क्षमा कर दिया, परन्तु भक्तवत्सल भगवन्सत ऐसी धृष्टता कब सहन कर सकते थे। उनके भक्तको जो कष्ट देता है, उसे वे समुचित दण्ड अवश्य देते हैं। कुछ ही दिनोंके बाद मण्डलीकका राज्य नष्ट भ्रष्ट हो गया। लोग कहने लगे कि नरसिंहको कष्ट देनेके कारण ही ऐसा हुआ।

यही नरसिंहके जीवनकी प्रधान घटनायें हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक दन्त कथायें प्रचलित हैं। उन सबोंमें यही कहा जाता है, कि जब जब नरसिंह पर संकट पड़ा, जब जब उन्होंने स्मरण किया, तब तब स्वयं श्रीकृष्णने उपस्थित हो उन्हे परोक्ष या प्रत्यक्ष रूपसे सहाता दी। जूनागढ़में जहां नरसिंहका निवास स्थान था, वहां सम्प्रति एक चौरा बना हुआ है। उसमें नरसिंहकी प्रतिमूर्ति स्थापित है। जिन नागरोंने नरसिंहके जीवन कालमें उन्हें कष्ट दिया था, वही नागर अब उन्हें आदर और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं।

पंचम खण्ड ।

महान कवि और भक्त ।

कवि-कुल-तिलक कालिदास
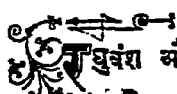
रघुवंश और शकुन्तला प्रभृति सुप्रसिद्ध ग्रन्थोंके रचयिता विश्वविख्यात महाकवि पण्डित कालिदास उज्जयिनीके परदुःख-भञ्जन परम प्रतापी राज-राजेश्वर विक्रमादित्यकी राज-सभाके एक उज्ज्वल रत्न थे। उनका जन्म कब और कहां हुआ; यह ठीक ठीक नहीं बतलाया जा सकता सम्भवतः वे किसी उच्च कोटिके ब्राह्मण थे और उनके पूर्वज काश्मीरमें रहा करते थे।

कालिदास नामक अनेक पण्डित हुए हैं। राजा भोजकी राज सभामें भी कालिदास नामक एक विद्वान रहते थे। वे भी संस्कृतके प्रवीण पण्डित और महान् कवि थे। उनका जन्म स्थान शिलानगरी (वरंगुल) था। जातिके वे तैलङ्गी ब्राह्मण थे। उन्होंने रामायण चम्पू, भोजचम्पू, नलोदय, शृंगार, रसाष्टक, पुष्पबाणविलास, और श्यामलताण्डक प्रभृति ग्रन्थोंकी

रचना की थी। यह भी कहा जाता है, कि वे परम विषयी और शाक्त मतावलम्बी थे।

हम यहाँ केवल अभिज्ञान शाकुन्तला और रघुवंश प्रभृति अद्वितीय ग्रन्थोंके रचयिता कवि कालिदासकेही विषयमें कुछ अङ्कित करना चाहते हैं। यह बड़े खेदका विषय है, कि इस नर रत्नकी कोई विश्वसनीय प्राचीन जीवनी नहीं मिलती। इन्होंने अपने ग्रन्थोंमें भी अपना नाम ग्राम किंवा समय अङ्कित नहीं किया, जिससे कुछ निर्णय किया जा सके। सम्प्रति, प्राच्य और पाश्चात्य देशी और विदेशी अनेक विद्वानोंने इनके विषयमें खोज और जांच पड़ताल की है, परन्तु उनमें परस्पर इतना मतभेद है, कि कोई बात स्थिर करना तो दूर रहा, उनपर ध्यान देनेसे साधारण पाठकका माथा ही खराब हो जाता है। हम उन विद्वानोंकी ज्ञान गम्य बातोंको अङ्कित करनेके पूर्व यहां एक दन्त कथा उद्धृत करते हैं जो कालिदासके विषयमें बड़े अनुरागके साथ कही और सुनी जाती है।

कहते हैं, कि किसी राजाके विद्यावती नामक एक कन्या थी। वह बड़ी बुद्धिमती और पण्डिता थी। राजाके प्रधान मंत्रीके चूड़ामणि नामक एक पुत्र था। चूड़ामणि और राज कन्या दोनों समवयस्क थे। दोनों बचपनमें साथही खेला करते थे। एक दिन दोनोंमें विनोदवार्ता हो रही थी। दोमेंसे किसीको यह ज्ञान न था कि हम क्या कह रहे हैं और यह कहना उचित है या अनुचित। चूड़ामणिने कहा—"विद्यावती!

मैं तेरे साथ अपना विवाह करूंगा। जब तेरे पिता तेरे विवाह का आयोजन करें तब कहना कि मैं अपना विवाह चूड़ामणिके साथ करूंगी।"

चूड़ामणिकी यह बात सुन, राजकन्याने छनककर कहा—"यह कैसे हो सकता है? तुम हमारे सेवक हो। क्या मेरे लिये कोई राजकुमार न मिलेगा?"

चूड़ामणिको राजकन्याकी बात सुनकर कुछ क्रोध आ गया, बोला—"विद्यावती! यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगी, तो जब तुम्हारे पिता तुम्हारा व्याह करना चाहेंगे, तब मैं वर खोजनेका काम अपने हाथमें लेकर तुम्हारे लिये ऐसा वर खोजूंगा, जो महामूर्ख और निपट निर्धन हो। तब क्या करोगी।"

राजकन्याने कहा—जाओ, मैं यह नहीं मानती। पति वैसाही मिलता है जैसा भाग्यमें लिखा होता है। तुम्हारे किये कुछ न होगा।

चूड़ामणिने कहा—अच्छा देख लेना।

बस दोनोंकी विनोदवार्ता यहीं समाप्त हुई। दोनो अपने अपने घर गये। राजकन्या तो यह बात भूल गयी, पर चूड़ामणि कुछ अधिक समझदार था। वह न भूला—जब राजकन्या विवाह योग्य हुई। तब उसके पिताने वृद्ध मन्त्रीसे वर खोजने को कहा। मन्त्रीने राजाकी बात स्वीकारकर अपने घरमें आकर कहा, कि आज राजाने राजकन्याके निमित्त उत्तम वर ढूढ़ने की आज्ञा दी है।

चूड़ामणिने भी यह बात सुनी। सुनतेही वह पिताके पास जाकर कहने लगा,—पिताजी! आप वृद्ध हैं। इधर उधर घूमनेके योग्य नहीं। योग्य वर न मिलनेके कारण यदि आपको कहीं दूर जाना पड़ा, तो बड़ा कष्ट होगा और राजकाजमें भी बाधा पड़ेगी। यहां आपके कार्यको कौन सम्हालेगा? राज कार्य प्रधान है। इसको छोड़कर, आपको बाहर जाना उचित नहीं। वर ढूंढ़नेका काम मैं अच्छी तरह कर सकता हूं। यदि आप आज्ञा दें, तो कलही प्रस्थान करूं।

पुत्रकी बात सुन पिताको स्वाभाविक आनन्द हुआ। बोला पुत्र! तुम्हें मैं अपना हितचिन्तन करते देख अतीव प्रसन्न हूं। मुझे बाहर जानेसे अवश्य कष्ट होगा। सम्भव है कि राजकाजमें भी विशृंखलता उत्पन्न हो जाय, परन्तु मुझे खेद है, कि तुम्हें अपनी ओरसे मैं वर ढूढ़नेकी आज्ञा नहीं दे सकता। महाराजने यह कार्य मुझे सौंपा है अतः मुझे ही पूर्ण करना चाहिये। तथापि, मैं कल महाराजसे यह बात निवेदन करूंगा और इस बातकी चेष्टा करूंगा, कि वे मेरे स्थानमें तुम्हें भेजनेको राजी हो जायें।

पिताकी यह बात सुन चूड़ामणि प्रसन्न हो उठा। दूसरे दिन मन्त्रीने महाराजसे सारा हाल निवेदन किया और इस बातका विश्वास दिलाया, कि यह कार्य मेरा पुत्र भली भांति सम्पादन कर सकता है। मन्त्रीके विश्वास दिलानेपर राजाने चूड़ामणिको यह कार्य-भार देना स्वीकार कर लिया। उन्हें तो

इस बातका पता ही न था, कि चूड़ामणिके हृदयमें कुविचार छिपे हुए हैं। राज कन्या भी समस्त बातें भूल गयी थी, निदान किसीने विरोध न किया। चूड़ामणि दूसरे दिन, कुछ अनुचरोंके साथ ले अश्वारूढ हो नगरसे चल पड़ा।

यदि किसी राजकुमारकी आवश्यकता होती, तो सम्भव था, कि चूड़ामणिको वह शीघ्र मिल जाता और उसे अधिक परिश्रम न करना पड़ता। परन्तु उसे तो महामूर्ख और निर्धन वर खोजनेकी धुन सवार थी और वह मूर्ख भी ऐसा जो देखने में सुन्दर हो रूप लावण्यमें अद्वितीय हो। वह दूर दूरतक देश देशान्तरमें भटकता फिरा, किन्तु कहना वृथा है, कि उसे अपने इच्छानुसार ऐसा वर न मिला जिसकी मूर्खता सौन्दर्यके आवरणसे इन्द्रायणके फलकी भांति आवृत हो।

बहुत दिनोंके बाद जब वह मनहीं मन विद्यावतीके भाग्यको सराह रहा था और सोच रहा था, कि शायद मेरी इच्छा पूर्ण न होगी, उसे जङ्गलमें एक ब्राह्मण पुत्र लकड़ी काटता हुआ दिखाई दिया। चूड़ामणिने देखा कि लड़का तो बड़ा सुन्दर है, परन्तु जिस डालपर बैठा है, उसीको काट कर रहा है। मालूम होता है कि यह महा मूर्ख है।

यह सोचकर चूड़ामणिने उस लड़केसे पूछा, क्यों लड़के यह तू क्या कर रहा है? क्या तुझे यह नहीं मालूम कि तू जिस डालपर बैठा है उसीको काट रहा है? उसके कटतेही तू भूमिपर आ गिरेगा तब?

लड़केने उत्तर दिया—तुम्हीं बताओ, फिर मैं क्या करूं ? मुझे वृक्षपर चढ़ना आता है, अतः चढ़ आया, पर उतरना नहीं आता, इस लिये डालीको काट रहा हूं, जिससे इसीके साथ नीचे पहुंच जाऊं ।

बालककी यह बात सुनकर चूड़ामणिको विश्वास हो गया, कि यह मूर्ख शिरोमणि है । उसने सोचा, कि इसीके साथ राजकन्याका विवाह हो जाय तो अच्छा है । यह देखनेमें सुन्दर और बोलनेमें भी चतुर है । यह सोचकर उसने अपने अनुचरोंको आज्ञा दी, कि इसे नीचे उतार लो । अनुचरोंने आज्ञा शिरोधार्य की । उनका सहारा पाकर ब्राह्मण पुत्र नीचे उतर आया । उतर आनेपर चूड़ामणिने पूछा—तुम कौन हो, और किस प्रकार जीवन निर्वाह करते हो ?

ब्राह्मण पुत्रने कहा, मैं ब्राह्मण हूं । मुझे पढ़ना लिखना नहीं मालूम । मेरी छोटी अवस्थामेंही मेरे माता पिता मुझे छोड़ गये थे । अब मैं गाय भैंसे चराकर अपना निर्वाह करता हूं ।

चूड़ामणिने कहा—यदि तुम मेरे साथ चलो तो मैं एक राजकन्याके साथ तुम्हारा विवाह करा दूं । तुम एक राजा हो जाओगे । दास दासी और धन धाम सभी कुछ मिलेगा । चैनसे दिन कटेंगे । कहो स्वीकार है ?

ब्राह्मण-पुत्रको मानो संसार भरकी सम्पदा मिल गई । वह मारे आनन्दके फूल उठा । कहने लगा—"मैं तय्यार हूं । जहां

कहो वहां चलूं। भला राजकन्यासे विवाह करना किसे स्वीकार न होगा?"

ब्राह्मण-कुमारकी यह बात सुन चूड़ामणिने उसे अपने साथ लिवा लिया। आगे चलकर एक नदी मिली। उसमें उसे भली भाँति स्नान कराया। तदन्तर उसे बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से इस प्रकार सजाया, कि वह देखनेमें प्रकृति राजकुमार प्रतीत होने लगा। चूड़ामणिने उसे राजसी ठाटसे उठना बैठना, खाना पीना, चलना फिरना, बात चीत करना-सभी कुछ सिखा दिया। साथ ही इस बातकी सूचना दे दी, कि जहां तक हो, किसीसे अधिक वार्तालाप न करना।

कुछ दिनोंके बाद चूड़ामणि अपने नगर पहुंचा। वहां उसने एक मन्दिरमें ब्राह्मण-पुत्रको ठहरा दिया और उसके पास ऐसे विश्वास पात्र नौकर रख दिये जिनसे किसी प्रकारका भण्डा फोड़ न हो। नगरमें यह बात विद्युत् वेगसे फैल गयी, कि मगध देशके राजकुमार राज कन्याको ब्याहने आये हैं। दलके दल लोग उसे देखने उमड़ पड़े। सबोंने देखा, कि वर रूपलावण्यमें कामदेव-को भी नीचा दिखाने वाला है। सुन्दर है, सुकुमार है, अवस्था भी किशोर है! उन्हें अन्दरका हाल क्या मालूम! वे मुक्त कण्ठसे उसकी प्रशंसा करने लगे। राजकन्याके पिताको भी असीम आनन्द हुआ। उसने बड़ी धूम धामसे शुभ मुहूर्तमें दोनोंका विवाह करा दिया। ब्राह्मण पुत्र राजकन्याके साथ प्रणय सूत्र में बद्ध हो राजमन्दिरमें रहने लगा।

एक दिन राजकन्याने अपनी एक दासीको अपने पतिके समीप भेजा, कि देखो क्या कर रहे हैं? उसने जाकर देखा, कि सो रहे हैं अतः लौट आई और बोली, कि सो रहे हैं। कुछ देरके बाद स्वयं राजकन्या गयी। उसने देखा, कि अब भी वे सुमन शय्यापर आनन्दके खुर्राटे भर रहे हैं। तनकी कुछ सुधि नहीं है।

राजकुमारीने पतिदेवको जगानेके लिये पहले साधारण चेष्टा की; परन्तु जब वे न उठे, तब उसने उनका हाथ पकड़ कर हिलाया किन्तु कोई फल न हुआ। वे क्यों उठें? वे तो मुर्देसे बाजी लगाकर सो रहे थे। राजकन्या समझ गयी, कि यह राजकुमार नहीं, बल्कि किसी दरिद्रीका पुत्र है। इसे कभी इस प्रकार सुखकी नींद सोनेको नहीं मिली इसी लिये अचेत पड़ा है।

राजकन्या मानों किसी अथाह सागरमें आ पड़ी। उसका जी सूख गया। काटो तो खून नहीं। सोच रही थी, कि यह क्यों हुआ? सोचते सोचते उसे चूड़ामणिके साथका वह वार्तालाप याद आ गया, जिसमें उसने यह कहा था, कि मैं तेरे लिये महामूर्ख और निपट निर्धन वर खोजकर लाऊंगा। इस बातका स्मरण आते ही उसके हृदयमें होलीसी जल उठी। उसे विश्वास हो गया, कि चूड़ामणिने मुझे और मेरे पिताको धोखा दिया है। अब उसके धैर्य्यका बांध टूट गया। उसने ब्राह्मण-पुत्रका हाथ पकड़ उठाकर बैठा दिया।

निद्राभङ्ग होनेपर ज्योंहीं ब्राह्मण-पुत्रने देखा, कि सम्मुख एक ऐसी राजकुमारी खड़ी है, जिसका रूप लावण्य अद्वितीय है, और जिसके मुखारविन्दपर कान्तिके कारण नजर भी नहीं ठहरती, त्योंही वह अकचका कर सुमन-शय्यासे नीचे उतर पड़ा। बोला—"क्षमा करिये। आपके सेवकोंने मुझे यहां लाकर सुला दिया। मेरा कोई अपराध नहीं है।"

पतिदेवके यह शब्द सुनकर राजकन्याको बड़ा दुःख हुआ। वह अपने भाग्यको कोसने लगी। मनहीमन कहने लगी, कि ऐसे पतिके साथ विवाह होनेकी अपेक्षा मैं कुमारीही भली थी तब किसी बातका शोक सन्ताप तो न था! अब मैं अपनी सखियोंको कौन मुंह दिखाऊंगी। वे प्रश्न पर प्रश्न करेंगी, तब मैं क्या कहूंगी! हा दैव! तूने यह क्या किया!

कुछ भी हो भारतकी रमणियां अपने पतिपर जितना अनुराग रखती हैं, जितना उसे चाहती हैं, उतना और कहींकी रमणियां नहीं चाहतीं। भारतीय ललनाओंको आरम्भसे यही शिक्षा दी जाती है, कि पति अन्धा, लूला, लङ्गड़ा रोगी, द्रोपी, चाहे जैसा हो वह स्त्रियोंका उपास्य देव है। राजकन्याको यद्यपि यह शिक्षा विशेष रूपसे न मिली थी, परन्तु उसके हृदयमें यह भाव अवश्य अङ्कित थे। इसी लिये वह तत्काल अपने पतिसे कुछ न कह सकी।

राजकन्याको यह बात स्पष्ट रूपसे ज्ञात हो गयी, कि मेरा पति राजकुमार नहीं है, परन्तु वास्तवमें वह कौन है—

यह उसे अबतक न मालूम हुआ था। एक दिन वह किसी उपवनमें वायु सेवन कर रही थी। ब्राह्मण-पुत्र भी साथही था। उपवनके पास, गाय भैंसे चर रही थीं। ब्राह्मण पुत्र उन्हें देखकर प्रसन्न हो उठा। कहने लगा, देखो इन पशुओंको चरनेके लिये यहां कैसा सुपास है! यह सब कैसे हृष्ट पुष्ट हैं! आजकल चारा न मिलनेके कारण बहुधा पशु दुबले हो जाते हैं।

ब्राह्मण-पुत्रकी यह बात सुन राजकन्या ताड़ गई, कि यह कोई चरवाहा है। यह कभी किसी बुद्धिमानके पास नहीं बैठा। वह मनही मन सोचने लगी, कि किसी प्रकार यह कुछ पढ़ना लिखना सीख ले तो अच्छा हो, परन्तु सबसे कठिन बात तो यह थी, कि जिसे काला अक्षर भैंस बराबर है, वह विद्यानुरागी कैसे बनाया जाय। बहुत कुछ सोचनेके बाद उसने ब्राह्मण पुत्रको भय दिखाकर कार्य सिद्ध करना स्थिर किया। और उसमें उसे सफलता भी मिली।

राजकन्याने अपने पतिको सम्बोधित कर कहा—देखो! तुम मेरे पति हो, तुम्हें कुछ भी कहनेका मुझे अधिकार नहीं। परन्तु क्या करूं! तुम्हारी मूर्खता देखकर मुझसे रहा भी नहीं जाता। यदि अपना कल्याण चाहते हो तो जाकर विद्योपार्जन करो। तुम्हारे साथ रहना वृथा जन्म खोना है। मुझे तुम्हारी मृत्युसे इतना दुःख न होगा जितना मूर्खतासे हो रहा है।

राजकन्याके इन शब्दोंने ब्राह्मण पुत्रको मर्माहत कर दिया। उसके हृदयमें विद्यानुराग जागरित हो उठा। उसने कहा—मैं

इस बातकी प्रतिज्ञा करता हूं, कि बिना कुछ पढ़े लिखे अब चाहे मर जाऊं पर तुम्हें मुंह न दिखाऊंगा। यदि यही दशा रही, तो मेरी तुम्हारी यह अन्तिम भेंट है। लो, मैं जाता हूं।

इतना कह ब्राह्मण-पुत्र राजकन्याको वहीं छोड़ विद्योपार्जनके लिये चल पड़ा। चलते समय राजकन्याने कहा—धैर्य्य न छोड़ना, छोटे छोटे जलविन्दु सञ्चित होनेपर महासागर बन जाता है छोटे छोटे कण एकत्र होनेपर पहाड़की सृष्टि होती है, एक एक कौड़ी जोड़नेपर दरिद्री धनवान हो जाता है, यदि एक एक अक्षर भी पढ़ते रहोगे; तो कुछ दिनोंमें विद्वान हो जाओगे। इस नगरके पास कालिचन्द्र नामक एक विद्वान ऋषि रहते हैं। उनके पास जाओ; वे तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे।

स्त्रीका यह उपदेश गांठमें बांध ब्राह्मणपुत्र वहांसे चल पड़ा कालिचन्द्रके पास पहुंचकर उसने उनसे अपना मनोभाव व्यक्त किया। कालिचन्द्रने उसे विद्यादान देना स्वीकार कर लिया ब्राह्मण-पुत्र उनके निकट रह शिष्यभावसे विद्योपार्जन करने लगा। परन्तु जिसने कभी पाठशालाका मुंह भी नहीं देखा, वह इतनी बड़ी अवस्थामें अध्यन द्वारा विद्वान बन जाय यह असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। ब्राह्मण-पुत्रने धैर्य्य धारण कर बड़े परिश्रमसे कुछ दिन अध्ययन किया। परन्तु जब देखा, कि जैसी चाहिये वैसी सफलता नहीं मिल रही तब वह ऊकता गया। उसने अपने मनमें समझ लिया, कि अब मुझे पढ़ना नहीं आ सकता

ब्राह्मण-पुत्रकी निराशा दिन प्रति दिन बढ़ती चली गयी जब वह चरमसीमाको पहुंची, तब उसने विचार किया, कि मूर्ख रहकर जीनेकी अपेक्षा मरजाना कहीं अधिक अच्छा है। आज यदि मैं मूर्ख न होता तो राजप्रासादमें स्वर्गीय सुख भोगता होता। परन्तु रूठी हुई भाग्यलक्ष्मीको कौन मना सकता है? जो मेरे प्रारब्धमें नहीं है, वह मुझे कैसे प्राप्त हो सकता है। चूड़ामणिने मेरा विवाह तो करा दिया; परन्तु मेरे भाग्यमें वह सुख कहां? मेरा यह सब परिश्रम व्यर्थ है, कहीं बूढ़े तोते भी पढ़ाये जा सकते हैं? मुझे अब विद्या नहीं आ सकती। बिना विद्याके मैं इस स्वर्गीय सुखका भोक्ता नहीं बन सकता और बिना सुखके जीवनही व्यर्थ है। क्यों न आत्महत्या कर प्राण दे दूं कि जिससे सारी झंझटोंका एक बारही अन्त हो जाय।

यह विचार आतेही ब्राह्मण-पुत्र ऋषिके आश्रमसे बाहर निकल आया। पासही एक जलकूप था। उसने उसीमें गिरकर आत्महत्या करना स्थिर किया। परन्तु ज्योंही वह कूएमें कूदना चाहता, त्योंही उसने एक ऐसी वस्तु देखी, कि जिससे उसके विचारोंमें एकाएक महान परिवर्तन हो गया। उसने देखा, कि कूपपर जो लकड़ी रक्खी है, वह रस्सीकी रगड़से कट गयी है; उसने सोचा, कि जब रस्सियोंसे इतना कड़ा काष्ठ कट सकता है, तब यह माननेका कोई कारण नहीं, कि मुझे रगड़ करनेसे विद्या नहीं आ सकती।

ब्राह्मण-पुत्रके विचार बिलकुल बदल गये। निराशाका

ध्यान आज्ञाने ग्रहण किया। नस-नसमें मानों उत्साहकी बिजली दौड़ गयी। उसने परिश्रम पूर्वक इस प्रकार अध्ययन करना आरम्भ किया, कि कुछही दिनोंमें वह काव्यशास्त्रका अद्वितीय विद्वान हो गया। गुरुदेवकी उसपर बड़ी दया थी। उन्होंने उसे तन-मनसे पढ़ाया था। जब देखा, कि इसने अच्छी योग्यता प्राप्त करली है, तब घर जानेकी आज्ञा प्रदान की। उन्होंने बड़े प्रेमसे अपने शिष्यका नाम कालिदास रक्खा।

इस प्रकार कालिदास विद्योपार्जनकर अपनी सुसरालको चल पड़े। प्रिय पत्नीके द्वारपर आकर उन्होंने देखा, कि किवाड़े अन्दरसे बन्द हैं। उन्हें खुलवानेके निमित्त उन्होंने आवाज दी कि "कपाटा बुद्धाटय" अर्थात् किवाड़े खोलो। राजकन्याने पतिका शब्द पहिचान लिया। यह भी उसने अनुमान कर लिया, कि यह अब कुछ पढ़ आये हैं। फिर भी किवाड़ खोलते खोलते उसने प्रश्न किया। "अस्ति कश्चित् वाग्विशेषः?" अर्थात् क्या कुछ वाणीमें विशेषता है।

कालिदासने मुस्कुराकर कहा—"इस प्रश्नका उत्तर कुछ दिन बाद दूंगा।" बादको दोनोंमें बातचीत हुई। बातचीतमें विद्यावतीको ज्ञात हो गया कि मेरा पति अद्वितीय विद्वान होकर आया है। वह हाथ जोड़ कालिदाससे अपने पूर्व अपराधके लिये क्षमा मागने लगी। कालिदासने उसे हृदयसे लगाकर कहा—"प्रिये! उस समय यदि तुम वैसा व्यवहार न करतीं तो मैं आजन्म मूर्ख रहता। तुम्हारीही कृपासे मैंने विद्या सीखी

और तुम्हारी ही कृपासे यह किञ्चित योग्यता प्राप्त की है। तुम खिन्न न हो। तुमने अपराध नहीं बल्कि मुझपर उपकार किया है। मैं तदर्थ तुम्हारा ऋणी हूं।"

अनन्तर स्त्री पुरुष दोनों आनन्द पूर्वक रहने लगे। किवाड़ खोलते समय स्त्रीने अस्ति कश्चित वाग्विशेषः यह तीन शब्द कहे थे। कालिदासने इस प्रश्नका उत्तर कुछ दिन बाद देनेको कहा था। तदनुसार उन्होंने उत्तर क्या दिया मानो समस्त संसारको अपनी अपूर्व प्रतिभाके उज्ज्वल आलोकसे आलोकित कर दिया। उन्होंने प्रत्येक शब्दको लेकर एक एक काव्यकी रचना की और उसके द्वारा अपनी वग्विशेषताका परिचय दिया।

अस्ति शब्दको लेकर कालिदासने कुमार सम्भव काव्यकी रचना की। उसका प्रथम श्लोक "अस्ति" शब्दसे ही आरम्भ होता है। वह श्लोक यह है।

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा।
हिमालयो नाम नागाधिराजः॥
पूर्वा परौ तोय निधीवगाह्य।
स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

कश्चित शब्दको लेकर मेघदूत काव्यकी रचना की। उसका पहला श्लोक इस प्रकार है:।

कश्चित् कान्ता विरह गुरुणा स्वाधिकार प्रमतः।
शापेनास्तंगमित महिमा वर्ष भोग्येन भर्तुः॥

यक्षश्चक्रे जनकतनया स्नान पुण्योदकेषु ।
स्निग्ध च्छाया तरुष वसतिं रामगिर्याश्रयेषु ॥

इसी प्रकार वाक् शब्दको लेकर रघुवंश काव्यकी रचना की। उसका पहला श्लोक यह है।

वागर्थाविव संपृक्तौ, वागर्थ प्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे, पार्वती परमेश्वरौ ॥

इन तीन काव्योंकी रचनाकर कालिदासने विद्यावती और समस्त संसारको अपनी प्रतिभाका परिचय दिया। इसके बाद वे उज्जयनी-नरेशका आश्रय ग्रहण कर वहीं कालयापन करने लगे।

यही कालिदास विषयक दन्त कथा है जो अनेक प्रकारसे जन समाजमें प्रचलित है। कहा नहीं जा सकता, कि इसमें कितना तथ्य है। विद्वानोंने इनके विषयमें बड़ी खोज की है। सबसे अधिक विवाद ग्रस्त विषय इनका आविर्भाव काल है। कोई ईसाकी पहली शताब्दिमें, कोई पांचवी शताब्दिमें कोई छटी शताब्दिमें कोई आठवीं शताब्दिमें तो कोई ग्यारहवीं शताब्दिमें इनका होना सिद्ध करते हैं। भारतमें जन साधारण इन्हें विक्रमादित्यका समकालीन मानते हैं, वे कहते हैं, कि कालिदास उनकी राजसभाके एक पण्डित थे। बहुतसे विद्वान भी इस बातको मानते हैं। उन्होंने अनेक प्रमाणों द्वारा इसे प्रमाणित भी किया है। सम्भव है, कि भविष्यमें अधिक खोज करनेपर कुछ ऐसे प्रमाण मिलें, जिनसे यह जटिल समस्या

हल हो जाय और सब लोग उन्हें विक्रमादित्यके समकालीन मानने लगें।

कालिदासकी रचनामें कुमार सम्भव, मेघदूत, रघुवंश, मालविकाग्निमित्र, अभिज्ञान शाकुन्तल, ऋतुसंहार और विक्रमोर्वशीय, इतने ग्रन्थ अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त कई और ग्रन्थ ऐसे हैं, जो कालिदासके बताये जाते हैं, परन्तु उनके विषयमें मतभेद है। यह देखा गया है, कि कालिदासकी प्रतिष्ठापर मुग्ध होकर अनेक कवियोंने कालिदासकी उपाधि किंवा नाम धारणकर ग्रन्थोंकी रचना की है। इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्यमें जब किसी अच्छे ग्रन्थके रचियताका पता नहीं चलता तब वह कालिदासकाही बतलाया जाता है। विद्वानोंकी विचारशक्ति फिर आगे नहीं बढ़ पाती। वे इसी निर्णयपर पहुंचते हैं, कि इसके रचयिता कालिदास होने चाहिये। इसी लिये हयग्रीववध, राक्षस काव्य, ज्योतिर्विदाभरण, और स्मृतिचन्द्रिका प्रभृति ग्रन्थ कालिदासके बताये जाते हैं। इसका एक मात्र कारण यही है, कि अपने बुद्धिबल और अपनी रचनाके कारण जितनी कीर्ति कालिदासने लाभ की है; उतनी और किसी विद्वानको नसीब नहीं हुई।

कालिदासके किस किस गुणकी प्रशंसा की जाय। संस्कृत भाषापर उनका असामान्य अधिकार था। उन्होंने अपनी कवितामें चुन चुनकर सरल किन्तु सरस और प्रसङ्गानुरूप शब्दोंकी ऐसी योजना की है जैसी आजतक और किसी कवि

तामें नहीं पाई जाती। उनकी प्रतिभा विश्वतो मुखी थी। उनकी कल्पनाओंकी पहुंच पृथ्वी, आकाश पाताल सब कहीं थी। उनके वर्णनका ढङ्ग बड़ाही सुन्दर और हृदय स्पर्शी है। व्याकरण, ज्योतिष, अलङ्कार, शास्त्र, नीतिशास्त्र, वेदान्त, सांख्य, पदार्थविज्ञान, इतिहास पुराण आदि जिस शास्त्र, जिस विद्या, और जिस विषयमें उन्हें जो बात अपने मतलबकी देख पड़ी है उसीको वहांसे खींचकर उसके उपयोग द्वारा उन्होंने अपने मनोभावोंको मनोहरसे मनोहर रूप देकर व्यक्त किया है।

सुन्दर सर्वाङ्ग पूर्ण और निर्दोष उपमाओंके कारण कालिदासकी जो ख्याति है, वह सर्वथा यथार्थ है। किसी देश और किसी भाषाका अन्य कोई कवि इस विषयमें कालिदासकी बराबरी नहीं कर सकता। उनकी उपमायें अलौकिक हैं। उनमें उपमान और उपमेयका अद्भुत सादृश्य है। जिस भाव जिस विचार जिस उक्तिको स्पष्ट करनेके लिये कालिदासने उपमाका प्रयोग किया है, उस उक्ति और उपमाका संयोग ऐसा बन पड़ा है, जैसा मणि काञ्चनका संयोग होता है। उपमाको उक्तिसे अलग करदेनेसे वह फीकी किंवा नीरस हो जाती है अन्य कवियोंकी उपमाओंमें उपमान और उपमेयके लिङ्ग और वचनमें कहीं कहीं विभिन्नता पायी जाती है, पर कालीदासकी उपमाओंमें शायदही कहीं यह दोष हो।

कालिदासका रघुवंश महाकाव्य लोक शिक्षोपयोगी बातोंसे

साद्यन्त परिपूर्ण है। देवता और ब्राह्मणमें भक्ति, गुरुके वाक्य में अटल विश्वास, मातृरूपिणी पयस्विनी धेनुकी परिचर्या, भिक्षार्थी अतिथिकी अभिलाषा पूर्तिके लिये राजाकी व्याकुलता, लोकरञ्जन और राजसिंहासन निष्कलङ्क रखनेके लिये नृपति द्वारा अपनी प्राणोपमापत्नीका निर्वासन रूपी आत्मत्याग, आदि अनेक लोक हितकर और समाज शिक्षोपयोगी विषयोंसे रघुवंश अलंकृत है। इसमें उन्नीस सर्ग हैं। उसकी भाषा अत्यन्त मधुर एवम् प्रौढ़ है। कितनेही प्रसंगोंका वर्णन बड़ाही मनोरञ्जक और हृदय ग्राही है। यद्यपि उसकी रचना रामायणके आधार पर हुई है, किन्तु कविकी प्रखर बुद्धिके कारण इसमें नवीनता आ गयी है। मङ्गलाचरणमें जगत् पिता परमेश्वर और जगज्जननी पार्वतीकी वन्दना कर कविने नम्रता पूर्वक अपनी दीनताका जो वर्णन किया है, उसे पढ़कर प्रत्येक मनुष्यके हृदयपर गहरा प्रभाव पड़ता है।

कालिदासके कुमार सम्भव नामक दूसरे काव्यमें शिव पार्वतीका विवाह उन दोनोंसे कार्तिकस्वामी नामक पुत्रकी उत्पत्तिका वर्णन है। वास्तवमें कविने इसमें पुरुष और प्रकृतिके संयोगका चित्र दिखाया है। उन्होंने दिखाया है, कि जीवात्मा किस तरह ईश्वरकी खोज करता है। और उसे कैसे प्राप्त करता है। यह ग्रन्थ १७ सर्गोंमें विभक्त है। इसपर पण्डित मल्लिनाथने एक टीका लिखी है। कालिदासके रघुवंश और कु-

मार सम्भव यह दो काव्य संस्कृतके पञ्चमहाकाव्योंमें गिने जाते हैं। +

मेघदूत काव्य यद्यपि बहुत छोटा है, तथापि उसमें महाकाव्यके गुण पाये जाते हैं। इसीलिये कुछ विद्वान उसे भी महाकाव्य कहते हैं। यह ग्रन्थ महाकाव्य भलेही न माना जाय; परन्तु है एक संस्कृत साहित्यका अमूल्य रत्न! अलकाधिपति कुवेरके कर्मचारी एक यक्षने कुछ अपराध किया। उसे कुवेरने एक वर्ष तक अपनी प्रियतमा पत्नीसे दूर जाकर रहनेका दण्ड दिया। यक्षने उस दण्डको चुपचाप स्वीकार कर लिया। अलका छोड़कर वह मध्य प्रदेशके रामगिरि नामक पर्वतपर आया। वहीं उसने एक वर्ष बिताना स्थिर किया। आषाढ़का महीना आनेपर आकाशमें बादल छा गये। उन्हे देखकर यक्षका पत्नी वियोग दुःख दूना हो गया। वह अपनेको भूलसा गया। इसी दशामें उस विरही यक्षने मेघको दूत कल्पनाकर अपना कुशल समाचार अपनी पत्नीके पास पहुंचाना चाहा, पहले कुछ थोड़ीसी भूमिका बांधकर उसने मेघसे अलका जानेका मार्ग बताया, फिर संदेश कहा—कालिदासने मेघदूतमें इन्हीं बातोंका शृंगार मिश्रित करुण रसमें वर्णन किया है।

+ रघुवंश, कुमार सम्भव, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध: किंवा माघ और नैषध यह संस्कृतके पञ्चमहाकाव्य हैं। पण्डित मल्लिनाथने इन पांचोंपर टीका लिखी है। संस्कृत ग्रन्थोंमें मूलसे टीका कहीं बड़ी होती है। उसमें विषय भी अधिक होते हैं। टीकाकार यदि विद्वान् हुआ तो उसकी प्रतिष्ठा भी ग्रंथकारसे किसी प्रकार कम नहीं होती।

इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त कालिदासका वह ग्रन्थ जिसपर विदेशी विद्वान भी मुग्ध हो रहे हैं और जिसके कारण कालिदासकी कीर्त्ति दिगदिगान्तमें व्याप्त हो रही है—अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक है। यह ग्रन्थ कालिदासकी विश्वतो मुखी प्रतिभा, ब्रह्माण्ड व्यापिनी कल्पना और सर्वाति शायिनी रचनाकी उत्तम कसौटी है। इसका जितना आदर भारतवर्षमें हुआ है, उससे कहीं अधिक विदेशोंमें हुआ है। इसीको देखकर युरोपीय विद्वानोंने कालिदासको भारतका शेक्सपियर कहा है। इसका अङ्गरेजी, फ्रेञ्च, जर्मन, इटालियन; प्रभृति अनेक युरोपीय भाषाओंमें अनुवाद हो चुका है। केवल इसीसे इस ग्रन्थकी महत्ता और लोक प्रियताका अनुमान किया जा सकता है।

कालिदासके विषयमें कुछ लोग कहते हैं, कि वे शाक्त मतावलम्बी थे; किन्तु यह बात ठीक नहीं प्रतीत होती। उनका आचरण शैवोंके सदृश था। वेदान्त पर भी उनका दृढ़ विश्वास था। उत्तरावस्थामें उन्होंने संन्यास ग्रहण किया था, अतः ज्ञात होता है, कि वे स्मार्त्त थे। उज्जयिनीके निकट क्षिप्रा नदीके तटपर उनकी समाधि है। सम्प्रति उसे दत्तका अखाड़ा कहते हैं और वहां गुसाईं लोग रहते हैं।

भारतवर्षमें वाल्मीकि और व्यासके बाद संस्कृत भाषाके अनेक कवि हुए हैं, किन्तु कालिदासके समान उनमेंसे एकने भी कीर्त्ति लाभ नहीं की। कालिदासने यद्यपि अपने जन्मसे भारतहीको अलंकृत किया, तथापि वे अकेले भारतहीके

कवि नहीं, उन्हें इस भूमण्डलका महाकवि कहना चाहिये। उनकी कवितासे भारतवासियोंहीको आनन्द वृद्धि नहीं होती उसमें कुछ ऐसे गुण हैं, कि अन्य देशोंके निवासियोंको भी उसके पाठ और परिशीलनसे वैसाही आनन्द मिलता है, जैसा कि भारतवासियोंको मिलता है। जिसमें जितनी अधिक सहृदयता है, जिसने प्रकृतिके प्रसार और मानव हृदयके भिन्न भिन्न भावोंका जितनाही अधिक ज्ञान प्राप्त किया है, कालिदास की कवितासे उसे उतनाही अधिक प्रमोदानुभव होता है कवि-कुल गुरुकी कवितामें प्रमोदोत्पादनकी जो शक्ति है, वह अवि-नाशिनी है। हजारों वर्षोंसे न उसमें कमी हुई है—न उसमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न हुआ है। और न आगे होने का भयही है। जब तक इस विशाल विश्वके साक्षर जन सच्ची और सरस स्वाभाविक और सुन्दर कविताका आदर करते रहेंगे, तबतक कालिदासके विषयमें उनकी पूज्य बुद्धि अक्षुण्ण बनी रहेगी। प्रमोद जनक और शिक्षा दायक वस्तुओंको जब तक मनुष्य समुदाय अपने लिये हितकर समझेगा तबतक कालिदासकी कीर्त्ति यदि उत्तरोत्तर बढ़ेगी नहीं, तो कम भी न होगी।

महाकवि माघ.

कविवर माघ धाराधिप भोजके समकालीन थे। उनका निवास स्थान श्रीमालपुर नामक नगर था। जातिके वे श्रीमाली ब्राह्मण थे। यह देखा गया है; कि विद्वान प्रायः दरिद्री होते हैं, परन्तु माघके विषयमें यह बात नहीं कही जा सकती। उनपर लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंकी समान कृपा थी। वे जैसे विद्वान थे, वैसेही श्रीमान् भी थे। परन्तु वह धन और वह विद्या व्यर्थ है, जिससे दूसरोंका कल्याण न हो। अनेक विद्वान ऐसे होते हैं, जिनकी विद्या उन्हींके मस्तिष्क तक परिमित रहती है जब वे स्वर्गारोहण करते हैं, तब उसे अपने साथ लिये चले जाते हैं। उनकी विद्यासे किसीको लाभ नहीं पहुंचता। इसी प्रकार बहुतोंका धन ऐसा होता है, जो स्वयं उनके भी काम नहीं आता। वे एक एक कौड़ी जोड़कर रखते हैं, परन्तु उसे उनकी मृत्युके बाद दूसरेही उपभोग करते हैं। ऐसे विद्वानोंकी विद्या और धनियोंका धन निरर्थक है, विद्या और धनके साथ उच्च हृदय और उदारता होनी चाहिये। माघको जगदीशने वह भी दिया था। वे प्रति दिन धनार्थियों को धन और विद्यार्थियोंको विद्या दान किया करते थे।

जैसे सहृदय माघ थे, वैसीही सुशीला उन्हें पत्नी भी मिली

थी। उन दोनोंका दाम्पत्य सम्बन्ध मणिकाञ्चन संयोगवत हुआ था। यही कारण था जिससे उनकी गृहस्थी सोनेकी हो रही थी। संसार-यात्रामें वे एक दूसरेके सहायक थे। संसारमें जिनको योग्य पत्नी नहीं मिलती, वे धनवान होनेपर भी निर्धनोंके जितना सुख और आनन्द नहीं भोग सकते। उन्हें अपना जीवन भाररूप प्रतीत होने लगता है। सौभाग्यसे माघको इस बातका भी दुःख न था। उनकी अर्द्धाङ्गिनी परम पतिव्रता एक विदुषी रमणी-रत्न थी।

विद्वता और उदारताके कारण कविवर माघकी कीर्त्ति पताका दिगदिगन्तमें फहरा रही थी। धाराधिप भोजने उन्हें अनेक बार निमन्त्रित किया था। उनकी यह आन्तरिक इच्छा थी, कि माघको आश्रय प्रदान किया जाय और वे राज-सभाके पण्डित बनाकर रक्खे जायं, परन्तु माघको किसी बातकी कमी न थी। वे राजाश्रय क्यों ग्रहण करने लगे! परन्तु सच्चे विद्वान अभिमानी नहीं होते, बारम्बार निमन्त्रण मिलनेपर भी यदि माघ भोजराजके पास न जाते तो सम्भव था, कि कोई दोषारोपण कर उन्हें अभिमानी प्रमाणित करता। इसी लिये वे एकबार मित्रभावसे राजा भोजको मिलने गये थे। भोजने उनका बड़ा सत्कार किया था, फिर भी वे राज-सभामें एक दिनसे अधिक न ठहरे थे। चलते समय स्वयं भोज अपने उपवन तक उनके साथ गये थे। उस समय माघने उन्हें एकबार अपने यहां आनेके लिये आग्रह किया। कहा—यदि महाराज

कभी इस दासका घर पावन करेंगे तो बड़ी कृपा होगी।

भोजराजने माघका निमन्त्रण स्वीकार कर किसी समय आनेका वचन दिया। कुछही दिन बाद कार्यवश उन्हें उस ओर जाना पड़ा। उसी समय वे माघके घर गये। माघका ऐश्वर्य किसी राजासे कम न था। उसे देख भोज चकित हो गये। मन्दिर तक जानेका रस्ता शीशेसे मढ़ा हुआ था। मन्दिर मानो एक महल था। प्रत्येक ऋतुकी उपभोग्य सामग्रियां उस में एकत्र थीं। भोजको माघकी यह शान शौकत देखकर आनन्द और आश्चर्य दोनों हुए।

माघने भोजका समुचित सत्कार किया। भोजनके समय भोजने देखा, कि अनेक प्रकारके पकान षटरस व्यञ्जन और सब ऋतुओंके फलादि प्रस्तुत हैं। उन दिनों शीतकाल था परन्तु खाद्यपदार्थ इतने गरम थे, कि खानेके बाद भोजको पंखेकी शरण लेनी पड़ी। उसी दिन रात्रिके समय भोज और माघमें बड़ी रात बीते तक काव्य नाटक, अलङ्कार, न्याय और नीति प्रभृति विषयोंपर बात चीत होती रही। भोजको माघकी विद्वत्ताका पता वास्तवमें उसी दिन लगा। कई दिनतक वे उनके साथ विद्याविनोद करते रहे। चलते समय उन्होंने उनकी कवित्वशक्तिकी बड़ी प्रशंसा की और बहुतसा धन प्रदान किया।

इन बातोंसे माघ कविकी विद्वता और उनके ऐश्वर्यका पता चलताहै। परन्तु दैवगति बड़ी गहन है। किसीके सब दिन

एक समान नहीं रहते। अस्तोदयके चक्रमें शायदही कोई न फसता हो। प्रकृतिके नियमानुसार इस दानवीर सुकविके सुख-का रवि वृद्धावस्थामें अस्त हो गया। महाकवि निर्धन हो गये, उनका स्वास्थ्य भी नष्ट हो चला। परन्तु भिक्षार्थियोंको इसका क्या पता? वे तो उनकी विपुलाकीर्त्ति सुनसुनकर उसी प्रकार आते रहे। उन्हें खाली हाथ लौटते देख माघको बड़ा दुःख होता। वे कहतेः—

दारिद्र्यनल-सन्तापः शान्तः संतोषवारिणा।
दीनाशा भङ्ग जन्मातु केनायमुपशाम्यतु॥

अर्थात—मैं अपने दारिद्ररूपी अग्निको तो सन्तोष रूपीजल से शान्त कर लेता हूं, परन्तु दीनोंको निराश होते देख जो सन्ताप होता है, उसे क्योंकर शान्त करूं? कहनेका तात्पर्य यह है, कि मेरे पास धन नहीं पर इससे मुझे सन्तोष है, परन्तु दीनों को निराश न होना पड़े तो अच्छा हो। उन्हें विमुख लौटते देख मुझे बड़ा कष्ट होता है।

इस प्रकार माघ बहुत दुःखी रहते थे। एक दिन उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा,—प्रिये!

देशं स्वमपि मुञ्चन्ति मानम्लानं महाशयाः।
दिनावसाने व्रजति, द्वीपान्तरमहर्मणि :॥

अर्थात्—जो महापुरुष हैं, वे आपत्तिकालमें अपना देश तक छोड़ देते हैं। देखो सूर्य भी दिवसका अवसान होनेपर द्वीपान्तरमें चले जाते हैं अतः तुम्हारी सम्मति हो, तो भोजके पास चलें।

माघकी यह बात उनकी स्त्रीको पसन्द आ गयी। उसने अन्तःकरणसे पतिके इन विचारोंका समर्थन किया। निदान, पति पत्नी दोनों धारानगरी गये। वहां पहुंचनेपर माघके हृदयमें आत्माभिमान उमड़ पड़ा। उन्होंने विना बुलाये राजसभामें न जाना स्थिर किया। उनकी पत्नी भोजकी राजसभामें "माघ काव्य" लेकर उपस्थित हुई। भोजने उस काव्यको ज्योंही बीचसे खोला त्योंहीं सर्व प्रथम उनकी दृष्टि निम्न लिखित श्लोक पर पड़ी।

कुमुदवनमपश्री श्रीमदंभोज खंडं।
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः॥
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं।
हतविधि ललितानां ही विचित्रोविपाकः॥

यह श्लोक देखतेही भोजको सीमातीत आनन्द हुआ। उन्होंने कहा—"यह काव्य अमूल्य है। यदि इस एकही श्लोकके मूल्य स्वरूप समूची पृथ्वी देदी जाय, तो वह भी कम है। इस काव्यकी कीमत नहीं आंकी जा सकती।"

यह कहकर उन्होंने तत्काल एक लक्ष मुद्रा माघकी पत्नीको प्रदान किया। वह उन्हें लेकर पतिके पास चली परन्तु मार्गमें जितने दीन हीन भिक्षुक मिले उन्हें वह मुक्त हस्तसे दान करती गयी। पतिके पास पहुँचनेपर उसके पास बहुत थोड़े रुपये बच रहे। माघको यह देखकर किसी प्रकारका रंज न हुआ। बल्कि उन्होने तदर्थ अपनी पत्नीकी बड़ी सराहना की।

अपने अनुचरों द्वारा भोजने भी यह हाल सुना। सुनकर उन्होंने बड़े आदरसे माघको राज सभामें बुला भेजा। उस समय भोजने उनका बड़ा सत्कार किया और बहुसा धन प्रदान किया। माघ उसे लेकर अपने निवासस्थानको गये, परन्तु वह धन उन्होंने अपने काममें न लाकर, पुनः जब तक रहा, पूर्ववत् दान करते रहे।

माघकी कविताके विषयमें कुछ कहना व्यर्थ है। विद्वानों का मत है कि:—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवं।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे संतित्रयोगुणाः॥

अर्थात—उपमा कालिदासकी अर्थ गौरव भारवीका और शब्द सौन्दर्य दण्डीका। इस प्रकार एक एक कविके काव्यमें एकही एक गुण हैं, परन्तु माघमें यह तीनों गुण एकत्र हैं।

चन्द बरदाई
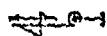
सुप्रसिद्ध पृथ्वीराज रासोके रचयिता चन्द बरदाई दिल्लीके अन्तिम क्षत्रिय सम्राट् पृथ्वीराज चौहानके आश्रय प्राप्त कवि थे। उन्होंने संवत १२२० से १२४६ पर्यन्त दिल्लीशकी राजसभाको अलंकृत किया था। जातिके वे भाट थे उनका जन्मस्थान संभल बतलाया जाता है। वे बड़े साहसी शूरवीर, वक्ता और सभाचतुर थे। नीतिशास्त्रका भी उन्हें अच्छा ज्ञान था।

चन्द बरदाई देवीके उपासक थे। उनकी पत्नीका नाम प्रभावती था। वह जैसी सुन्दर थी, वैसीही सुशील पति-परायणा और सद्गुण सम्पन्न थी। शरीर सुकुमार होनेपर भी उसका हृदय वीर था। उसने स्वेच्छा पूर्वक चन्दसे परिणय किया था। चन्द उससे बहुत प्रसन्न रहते थे।

चन्द पहले पहल संवत १२२० में पृथ्वीराजके पास गये थे, पृथ्वीराजने उन्हें आश्रय प्रदानकर कविश्वरकी उपाधि दी थी, कुछ दिन बाद वे मन्त्री बनाये गये थे। प्रत्येक कार्य वे इतनी दक्षताके साथ करते थे, कि राजकाजमें जरा भी विशृंखलता न उत्पन्न होने पाती थी। पृथ्वीराज उनके इन गुणोंपर मुग्ध थे। वे उन्हें इतना चाहते थे, कि बिना उनकी सलाह किसी

काममें हाथ देना उचित न समझते थे। साथही चन्द बरदाई ने भी पृथ्वीराजका आश्रय ग्रहण करनेके बाद बड़ी कोशि श की थी।

पृथ्वीराजको देशी और विदेशी राजाओंसे जितने युद्ध करने पड़े थे, उतने शायदही और किसी नरेशको करने पड़े हों। चन्द बरदाई प्रत्येक युद्धमें अपनी सेनाके साथ रहते थे। और सैनिकोंको महाभारत तथा अन्यान्य प्रसंगोंकी वीर गा थायें सुनाकर उत्साहित किया करते थे। उनकी वीर रस पूर्ण कविता सुनकर कायर भी उत्तेजित हो जाते थे और समरस्थलीमें आगे बढ़ शत्रुओंका संहार करते थे। वे न केवल दूसरोंकोही उत्तेजित करते थे बल्कि समय उपस्थित होनेपर स्वयं भी तलवार लेकर रण-क्षेत्रमें कूद पड़ते थे। अनेक युद्धोंमें इस प्रकार सम्मिलित हो उन्होंने अपनी वीरता का परिचय दिया था।

पृथ्वीराजके पिताको गुजरातके भीमदेव नामक राजाने मार डाला था अतः पृथ्वीराजने बदला लेनेके लिये गुजरातपर आ-क्रमण किया था। इस युद्धमें चन्द बरदाईने सेनापतिका स्थान ग्रहण कर शत्रुओंके छक्के छुड़ा दिये थे। युद्धमें सम्मिलित होनेके पूर्व वे भीमदेवकी राजसभामें उपस्थित हुए थे। पृथ्वी राजने उन्हें युद्धका संदेश दे दूतकार्य करनेके लिये भेजा था। उस समय चन्द बरदाई एक जाल एक सीढ़ी एक कुदाली एक दीपक एक अंकुश और त्रिशूल इतनी चीजें अपने साथ ले

गये थे। भीमदेवने जब इनको लानेका कारण पूछा—तब उन्होंने भरी सभामें निःशङ्क भावसे उत्तर दिया—"यह चीजें हमारे आन्तरिक भावोंकी विज्ञापक हैं। यदि तुम चौहान राजा-से डरकर किसी जलाशयमें जा छिपोगे, तो हम तुम्हें इस जाल से पकड़ लेंगे। यदि आकाशमें जाओगे तो सीढ़ीसे, पातालमें जाओगे तो कुदालोंसे और अन्धकारमें छिपोगे, तो इस दीपक-के सहारे तुम्हें खोज निकालेंगे। यह अंकुश तुम्हें वश करने-के लिये है। यदि वश न होगे तो इस त्रिशूल द्वारा तुम्हारा शिरच्छेद करेंगे। यही बतानेके लिये यह सब चीजें लाया हूं।"

चन्द बरदाईकी यह बातें सुनकर भीमदेवको बड़ा क्रोध आया। उसने उनका तिरस्कार कर अनेक प्रकारसे आत्म प्रशंसा की और कहा, कि जो दशा पृथ्वीराजके पिताकी हुई है, वही दशा युद्ध करनेपर पृथ्वीराजकी होगी।

चन्द बरदाईने कहा—"दैवयोगसे चूहे बिल्लीको पछाड़ सकते हैं, काग हंसके शिरपर सवार हो सकते हैं, हरिण सिंहकी समता कर सकता है और मेढ़क सर्पको पराजित कर सकते हैं यह सब बातें असंभव होनेपर भी कभी सम्भव हो सकती हैं, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता, कि सर्वकाल परिस्थिति वैसी ही बनी रहेगी। सूर्य और खद्योतकी समता नहीं हो सकती।"

भीमदेवने कहा—भाटोंकी लड़ाई बातों द्वारा, भाड़ोंकी लड़ाई गालियों द्वारा और दो भाइयोंकी लड़ाई घूंसों द्वारा होती है; परन्तु अपने राजासे जाकर कह दे, कि यह लड़ाई

प्राणोंकी बाजी लगाकर लड़नी होगी। यदि प्राणका मोह हो, तो चुपचाप दिल्ली लौट जाय। यहां कायर नहीं बसते जो कोरी बातें सुनकर डर जायंगे।"

भीमदेवका यह उत्तर श्रवण कर चन्द पृथ्वीराजके पास लौट आये। उन्होंने यह सब वृत्तान्त इस ढङ्गसे कहे, कि सुनतेही सुनते पृथ्वीराज उत्तेजित हो उठे। निदान दोनों दलोंमें युद्ध हुआ। चन्दने बड़ी योग्यताके साथ अपनी सेनाका संचालन किया। अन्तमें पृथ्वीराजकी विजय और भीमदेवकी घोर पराजय हुई। इस विजयका सारा श्रेय यदि चन्दको दिया जाय, तो अनुचित नहीं।

जिस समय पृथ्वीराज दिल्लीके राज-सिंहासनको अलंकृत कर रहे थे, उसी समय कन्नौजके राज-सिंहासनपर जयचन्द नामक राजा अधिष्ठित था। जयचन्दके संयोगिता नामक एक सुन्दरी कन्या थी। जयचन्द मनहीमन पृथ्वीराजसे अप्रसन्न रहता था; परन्तु संयोगिता अपना तनमन पृथ्वीराजको अर्पण कर चुकी थी। जब जयचन्दने संयोगिताके स्वयंवरका आयोजन किया, तब पृथ्वीराजको भी निमन्त्रण दिया; परन्तु कई कारणों से पृथ्वीराजने प्रकट वेशमें जाना उचित न समझा। उन्होंने चन्द बरदाईको अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा और आप भी सेवक वेशमें उनके साथ हो लिये। जब चन्द कन्नौज पतिकी राज सभामें उपस्थित हुए तब छद्मवेशी पृथ्वीराज भी उनके साथ थे। राजसभामें चन्दसे पृथ्वीराजका गुणगान करनेको

कहा गया। चन्दने यह आज्ञा शिरोधार्यकर बड़ेही सुन्दर शब्दों-में पृथ्वीराजकी गुणावली कह सुनायी। साथही साथ पृथ्वी-राजकी ओर जो उस समय उनके साथ सेवक वेशमें थे, सं-केत करते गये कि पृथ्वीराज ऐसे हैं, चन्द बरदाईकी इस बात से बहुतोंको सन्देह उत्पन्न हो गया और उन्होंने पृथ्वीराजको बन्दी बनानेका विचार किया; परन्तु धन्य है चन्द बरदाईको जिन्होंने अपने बुद्धि-बलसे उनका बाल भी न बांका होने दिया।

जिन पाठकोंने भारतके इतिहासपर यत्किञ्चित दृष्टिपात किया होगा, उन्हें ज्ञात होगा, कि शहाबुद्दीन गोरीने दिल्लीपर कई आक्रमण किये थे। पृथ्वीराजने उसे सातबार पराजित कर बन्दी बनाया था और दण्ड ले ले कर छोड़ दिया था। परन्तु आठवें युद्धमें दैव दुर्विपाकसे पृथ्वीराजको भाग्यलक्ष्मी रूठ गयी। उन्हें शहाबुद्दीनने बन्दी बनाकर दिल्लीके सिंहासन पर अधिकार जमा लिया। उसका अधिकार क्या हुआ, भार-तीयोंका भाग्य-रविही अस्त हो गया। उस दिनसे फिर वे कभी दिल्लीका सिंहासन अपने हाथ न कर सके।

इस अन्तिम युद्धमें चन्द पृथ्वीराजका साथ न दे सके। वे अजमेरमें थे। युद्धका समाचार पातेही वहाँसे चल पड़े थे। जब दिल्लीके करीब पहुंचे तब उन्हें पहले शत्रुओंकी छावनी मिली। उन्होंने सोचा, कि इनके शिविरमें प्रवेश कर इनकी गुप्त मन्त्रणाका भेद लेते जायें तो अच्छा हो। यह सोचकर उन्होंने

शत्रुदलमें प्रवेश किया; परन्तु किसी प्रकार पहचान लिये गये, अतः कारारुद्ध कर दिये गये।

चन्द बरदाई ऐसे वैसे चतुर न थे। बेड़ियां तोड़ हजारों शत्रुओंकी नजर बचाकर वे भाग आये। उनका हृदय पृथ्वीराजसे मिलनेको व्याकुल हो रहा था, परन्तु ईश्वरको कुछ औरही मंजूर था, उनकी और पृथ्वीराजकी भेंट न हुई। उनके शिविर तक पहुंचनेके पूर्व ही युद्धकी पूर्णाहुति हो चुकी थी। और पृथ्वीराज बन्दी बनाये जा चुके थे।

पृथ्वीराज रासोमें लिखा है, कि शहाबुद्दीन पृथ्वीराजको गजनी ले गया था। उसने पृथ्वीराजकी आंखें फोड़वा दी थीं और हथकड़ी बेड़ी तथा तौक द्वारा उन्हें इस प्रकार जकड़ दिया था, कि उन्हें चलना फिरना कौन कहे, उठना भी कठिन हो रहा था।

चन्द पृथ्वीराजसे मिलनेको छटपटा रहे थे। जब उन्होंने पृथ्वीराजकी इस दुर्दशाका हाल सुना, तब उनसे किसी प्रकार न रहा गया। वे गजनी पहुंचे। वहां अपनी वाक्चातुरीसे शहाबुद्दीनको प्रसन्न कर उन्होंने पृथ्वीराजसे मिलनेकी आज्ञा प्राप्त करली। जब वे पृथ्वीराजसे मिलने चले और पृथ्वीराजने सुना कि चन्द आ रहे हैं; तब उन्हें इतना हर्ष हुआ, कि वे लोह बन्धन उन्हें फूलसे प्रतीत होने लगे। वे उठकर खड़े हुए और चन्दको गले लगाकर भेंट पड़े। इसके बाद कुछ देर तक दोनों जनोंमें बातें होती रहीं। यह स्थिर हुआ कि किसी

प्रकार यवनेशसे बदला लेना चाहिये और इस दुःखी जीवनका अन्त करना चाहिये। इसके लिये एक उपाय सोचा गया और उसीके अनुसार चन्दने कार्यारम्भ किया।

शहाबुद्दीनके पास जाकर चन्दने उसे समझाया कि पृथ्वीराज जब नेत्र रहित कर दिये गये हैं, तब उन्हें हथकड़ी और बेड़ियोंसे जकड़ रखना व्यर्थ है। यदि उन्हें कष्टही देना इष्ट है, तो प्राणदण्ड दे दीजिये। ताकि सब झंझटोंका एक बारही अन्त आ जाय। पृथ्वीराजने आपपर अनेक उपकार किये हैं, अतः बन्दी होनेपर भी उनके साथ उन्हें राजा समझकर ही व्यवहार होना चाहिये। खैर यह बात जाने दीजिये। पृथ्वीराज बड़े चतुर हैं। यदि आप उन्हें बन्धन मुक्त रक्खें तो वह अपने चातुर्य द्वारा आपका मनोरञ्जन कर सकते हैं।

शहाबुद्दीनने कहा—तुम्हारी यह बात मेरी समझमें नहीं आती। नेत्रहीन मनुष्य कहीं किसीका मनोरंजन कर सकता है?

चन्दने उत्तर दिया—यह न कहिये। पृथ्वीराज बड़े निपुण बाण-धनी हैं। अन्धे होनेपर भी वे अपने शब्दवेधी बाणका चमत्कार दिखा सकते हैं। एकही बाणसे सौ सौ मनके सात तवे भेद सकते हैं। यदि विश्वास न हो तो परीक्षा लेकर देख लीजिये।

चन्द बरदाईकी यह बात सुन शहाबुद्दीनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पृथ्वीराजका शब्दवेध देखनेकी इच्छा प्रकट

की। चन्दने कहा—यदि यह चमत्कार देखना है तो पहले पृथ्वीराजको बन्धन मुक्त करिये और कुछ दिन पौष्टिक भोजन दीजिये। इसके बाद किसी दिन अखाड़ेका आयोजन कीजिये और अपने सभाजनो सहित पृथ्वीराजका चातुर्य देखिये।"

शहाबुद्दीनने यह सब स्वीकार किया। पृथ्वीराज बन्धन मुक्त किये गये। उन्हें कुछ दिन पौष्टिक भोजन दिया गया। जब वे हृष्टपुष्ट हुए तब अखाड़ेका आयोजन हुआ। शहाबुद्दीनने एक बहुत ऊंचे आसनपर स्थान ग्रहण किया। एक ओर लोहेका एक तवा लटकाया गया। यह स्थिर हुआ, कि इस तवेमें जिस स्थानपर कङ्कड़ी मारी जाय वही स्थान कङ्कड़ीके शब्दको लक्ष्यकर पृथ्वीराज भेदन करें।

ठीक समयपर पृथ्वीराज अखाड़ेमें लाये गये। उनके हाथमें एक कमान दी गयी। ज्योंहीं पृथ्वीराजने उसकी प्रत्यंचा चढ़ायी, त्योंही वह कड़कड़ाकर टूट गयी। एकके बाद एक कई धनुष दिये गये, पर उन सबकी वही दशा हुई। यह देख कर चन्दने कहा—"पृथ्वीराजके हाथमें दूसरा धनुष नहीं ठहर सकता। यदि शब्दवेधका चमत्कार देखना है, तो इनका वह धनुष मंगा दीजिये, जो इन्हें बन्दी बनाते समय छीन लिया गया था। बिना धनुषके पृथ्वीराज अपना चमत्कार कैसे दिखा सकते हैं?"

पृथ्वीराजका वह धनुष जो युद्धके समय उनके हाथको अलंकृत कर रहा था, अब तक शहाबुद्दीनके शस्त्रालयमें सुरक्षित

था। शहाबुद्दीनने उसे मंगा दिया। पृथ्वीराजने बड़े प्रेमसे उसकी प्रत्यंचा चढ़ायी। चन्दने शहाबुद्दीनसे कहा, अब आप आज्ञा दीजिये।

शहाबुद्दीनने कहा—"पृथ्वीराज! तैयार रहो। मैं तवेपर कङ्कड़ी मारता हूं। जिस स्थानमें वह लगे, उसी स्थानमें बाण मारिये।"

इतना कह शहाबुद्दीनने एक कङ्कड़ी फेंकी। तवेमें कङ्कड़ी लगनेसे जो झनकार हुई, उसीको लक्ष्यकर पृथ्वीराजको बाण चलाना था। परन्तु बात कुछ औरही थी। चन्द और पृथ्वीराजने स्थिर किया था, कि बाण तवेकी झनकारको लक्ष्यकर न चलाया जाय बल्कि शहाबुद्दीनके शब्दको लक्ष्यकर उसीका काम तमाम कर दिया जाय। इस मन्त्रणाके अनुसार पृथ्वीराजका ध्यान शहाबुद्दीनके शब्दपर लगा हुआ था। इधर शहाबुद्दीनने आज्ञा दी और उधर चन्दने पृथ्वीराजको उत्साहित करनेके लिये निम्न लिखित दोहे कहे :—

> चार बांस चोबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमान।
> एते पर सुलतान है, मत चूके चौहान॥
> धर पलट्यो पलटी धरा, पलट्यो हाथ कमान।
> चन्द कहै पृथिराजसों, दिन पलटे चौहान॥
> फेरि न जननी जनमि है, फेरि न खिंचै कमान।
> सातबार तुम चूकियो, अब न चूक चौहान॥

चन्दके यह शब्द श्रवण करतेही पृथ्वीराजके हृदयमें उत्साह

की लहर उठी और उन्होंने शहाबुद्दीनके शब्दको लक्ष्यकर ऐसा बाण मारा, कि उसका मस्तक छिन्न भिन्न हो गया। और वह गतःप्राण हो आसन परसे लुढ़क पड़ा। यह दृश्य देखतेही अखाड़ेमें हाहाकार मच गया और चारों ओरसे चमकती हुई तलवारें पृथ्वीराजकी ओर चल पड़ीं। इस अवसरपर क्या करना, यह भी चन्द और पृथ्वीराजने पहलेहीसे स्थिर कर रखा था। उन्होंने एकही साथ एक दूसरेके शिरपर तलवार फ़ेर दी। लोग जहांके तहां रह गये। उन्हें पृथ्वीराज अथवा चन्द को दण्ड देनेका समय ही न मिला। इस प्रकार चन्द पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन तीनोंकी एकही मुहूर्त्तमें मृत्यु हुई और तीनों एकही स्थानपर समाधिस्थ किये गये।

चन्दका पृथ्वीराज रासो बहुत बड़ा ग्रन्थ है। वह तत्कालीन हिन्दीमें लिखा हुआ है। उसमें संवत १२२० से लेकर संवत १२४६ पर्यन्तका पृथ्वीराजका जीवन चरित्र अनेक छन्दोंमें वर्णित है। क्षत्रियोंकी वंशावली, युद्धप्रसङ्ग, दिल्ली प्रभृति नगरोंकी रमणीयता क्षत्रियोंके शील स्वभाव, तत्कालीन रीति नीति और व्यवहार प्रभृति विषयोंका इसमें विस्तार पूर्वक वर्णन है।

यद्यपि समूचा रासो लिखनेका श्रेय चन्दकोही दिया जाता है; परन्तु उसे देखनेसे पता चलता है, कि पीछेसे उसमें बहुत कुछ मिलावट की गयी है। कहीं कहीं वह इतना अशुद्ध है, कि भावार्थ समझनेमें भी कठिनाई पड़ती है। चन्दके वंशमें

सारङ्गधर नामक कवि उत्पन्न हुए थे, जिन्होंने "हमीर रासो" और "हमीर काव्य" नामक ग्रन्थोंकी रचना की थी।

चन्द रासो किस प्रकार और कब लिखा गया इस विषयमें एक दन्त कथा प्रचलित है। कहते हैं, कि जिस समय शहाबुद्दीन और पृथ्वीराजका अन्तिम युद्ध हुआ; उस समय चन्द अपनी पत्नीको अजमेर छोड़ने गये थे। युद्धका समाचार सुन उन्होंने दिल्लीके लिये प्रस्थान किया, परन्तु ठीक समयपर वे दिल्ली न पहुंच सके। जिस समय दिल्ली पहुंचे, उस समय पृथ्वीराज रणक्षेत्रके लिये प्रस्थान कर चुके थे। चन्दने भगवतीके दर्शन कर वहां जाना स्थिर किया, परन्तु ज्योंही वे भगवतीके मन्दिरमें गये त्योंही मन्दिरके किवाड़े बन्द हो गये। कहते हैं, कि भगवतीने चन्दसे पृथ्वीराजका भविष्य बतला दिया और रासो लिखनेकी आज्ञा दी। मन्दिरके कपाट छः महिने तक बन्द रहे। चन्दने वहीं बैठ भगवतीकी प्रेरणासे रासोकी रचना की।

सम्पूर्ण रासो चन्दका लिखा भलेही न हो, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं, कि इङ्गलेण्डके सरफिलिप सिडनी और सर वाल्टर रेलेकी भाँति चन्द काव्य रचनामें निपुण थे। जिस प्रकार जन साधारणको रामायण और महाभारत पढ़नेसे आनन्द होता है, जिस प्रकार होमरके पठनसे ग्रीक लोगोंकी तबियत फड़क उठती है; उसी प्रकार कवि चन्दके रासोको पढ़कर राजपूतोंका हृदय नृत्य करने लगता है। हिन्दी साहित्यमें रहीम-

के दोहे, तुलसीदासकी चौपाई, गिरधरके कुण्डलिये, सूरकी पदावली, ठाकुरके सवैये, कबीरकी साखी, दादूकी वाणी और पद्माकरके कवित्तोंकी भांति चन्दके छप्पय अद्भुत काव्य शक्ति और अपूर्व स्वामिभक्तिके कारण चन्दका नाम यावच्चन्द्रदिवाकरौ अमर रहेगा।

तुलसीदास।

सुप्रसिद्ध भाषा-रामायणके रचयिता महात्मा तुलसीदास गोस्वामीका जन्म बांदा प्रदेशान्तर्गत राजापुर नामक ग्राममें हुआ था। जातिके वे सरयूपारीण ब्राह्मण थे। उनके पिताका नाम आत्माराम द्विवेदी और माताका नाम हुलासी था। वे विक्रम संवत १५८६ में भूमिष्ठ हुए थे। जन्मके समय अभुक्त मूल विद्यमान था। ज्योतिष शास्त्रके मतानुसार यह अतीव गर्हित और नितान्त अनिष्ट गिना जाता है। ऐसे समयमें उत्पन्न होनेवाले पुत्रको पिता त्याग दे अथवा आठवर्ष पर्यन्त उसका मुख न देखे—यही शास्त्रोंका आदेश है।

आत्मारामकी इन शास्त्रोंपर बड़ी श्रद्धा थी। अतः उन्होंने अपने प्रिय पुत्रको सदाके लिये त्याग देनाही श्रेयस्कर समझा निदान, वे उसे एकान्त अरण्यमें रख आये। परन्तु जिसे परमात्मा रखना चाहता है, उसकी किसी न किसी प्रकार रक्षा अवश्य होती है। भर्तृहरिने भी कहा है कि:—

वने रणे शत्रु जलाग्नि मध्ये।
महार्णवे पर्वत मस्तके वा॥
सुप्तं प्रमत्तं विषम स्थितं वा।
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि॥

अर्थात्, वनमें, रणमें, शत्रु, अग्नि और जलके मध्यमें, महासमुद्र तथा पर्वतकी चोटीपर भी, सुप्त, प्रमत्त अथवा विषमावस्थामें पड़े हुए मनुष्यकी पूर्वके पुण्यसे रक्षा होती है।

मानो इस उक्तिको चरितार्थ कर दिखानेके, लियेही, नृसिंहदास नामक एक साधु पुरुष विचरण करते हुए उधर जा पहुंचे। उन्होंने देखा, कि निर्जन और एकान्त स्थानमें एक दुग्धपोष्य नवजात शिशु एकाकी पड़ा हुआ है। उसे देखतेही उनके हृदयमें दयाका समुद्र उमड़ पड़ा। वे उसे अपने आश्रममें उठा ले गये। वहीं पुत्रवत लालन पालन कर उन्होंने उसे बड़ा किया। बाल्यावस्थामें वे उन्हें 'रामबोला' नामसे सम्बोधित किया करते थे। जब यह कुछ सचेत और सावधान हुए, तब उन्होंने गुरुदीक्षा देकर इन्हें अपना शिष्य बना लिया और सम्प्रदायानुसार इनका नाम "तुलसीदास" रक्खा।

निरन्तर साधुओंके सङ्ग रहने और रामचर्चा सुननेके कारण तुलसीदासके हृदयमें बाल्यावस्थासेही रामानुराग भर गया था। एक बार उनके गुरुने स्वयं भी रामकथा सुनाई थी। इस बात का उन्होंने स्वयं रामायणमें उल्लेख किया है। यथाः—

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सु सूकर खेत।
समुझ नहीं तस बालपन; तब अति रहेउ अचेत॥

अस्तु। इसी प्रकार दीनबन्धु पाठककी रत्नावली नामक कन्याके हृदयमें भी अटल राम प्रेमने अपना स्थान जमा लिया था। वह कन्या जैसी रूपवती और सुशीला थी, वैसीही वि-

दुषी भी थी। सुवर्ण और सुगन्धकासा योग था। उधर तुल-सीदास भी विद्या, विनय, विवेक और अप्रतिम प्रतिभा सम्पन्न होनेके कारण वर्णनातीत ख्याति प्राप्त कर चुके थे। दीनबन्धु नेभी एक विद्वान द्वारा उनकी प्रशंसा सुनी। वे रत्नावलीके लिये योग्य वर खोज रहे थे। तुलसीदासके श्लाघनीय गुणो को देख, उन्होंने अपनी कन्याका विवाह उन्हींके साथ कर दिया तुलसीदास और रत्नावलीका यह दाम्पत्य सम्बन्ध मणिकाञ्चन संयोगवत नितान्त रमणीय और सर्वथा अनिर्वचनीय था। विदुषी और विद्वान पतिपत्नी चाहें तो संसारको स्वर्गमें परिणत कर सकते हैं—मरु भूमिको नन्दनकानन बना सकते हैं।

रत्नावलीको अपने कर्त्तव्योंका भलीभांति ज्ञान था। वह निरन्तर पति सेवामेंही संलग्न रहती थी। तुलसीदासका भी उसपर इतना प्रेम था, कि क्षणभरके लिये भी वे उसका वियोग सहन न कर सकते थे। कुछ समय व्यतीत होनेपर उन्हें एक पुत्र भी हुआ।

इस प्रकार इनका दाम्पत्य सम्बन्ध पुराना होनेपर भी परस्परका स्नेह नित्यप्रति नूतन होता जाता था। अबतक रत्नावली लौटकर अपने पितृगृह न गयी थी। कई बार दीन-बन्धुने आदमी भेजा, रत्नावलीने भी जानेकी इच्छा प्रकट की, परन्तु तुलसीदासने उसे भेजना स्वीकार न किया। इसी प्रकार बरसों बीत गये; परन्तु रत्नावलीने मायकेका मुंह न देखा। अन्तमें एक दिन उसका भाई विदा कराने आया। तुलसीदास ने पूर्ववत् इसबार भी भेजनेसे इनकार कर दिया।

रत्नावली माता पिताके वियोगसे व्याकुल हो उठी थी। कार्यवश तुलसीदासके कहीं बाहर चले जानेपर भाईने उसे अपने साथ चलनेके लिये समझाया। रत्नावलीको भी अपने कर्त्तव्यका ज्ञान न रहा। वह पतिकी आज्ञा लिये विनाही, उनकी अनुपस्थितिमें अपने भाईके साथ मायके चली गयी।

कुछ देरके बाद जब तुलसीदास घर आये, तो वहां पत्नीको न पाकर, शोकाकुल हो, इतस्ततः उसकी खोज करने लगे। पड़ोसियोंसे पूछने पर जब सत्य सत्य समाचार मालूम हुए, तब वे और भी व्याकुल हो उठे। उन्हें अपना घर श्मशानवत् शून्य और भयावना मालूम होने लगा वे और सब कुछ सहन कर सकते थे, परन्तु पत्नीका वियोग उन्हें क्षण भरके लिये भी असह्य था। वे उसी क्षण उठे और बिना कुछ विचार किये ही ससुरालके लिये चल पड़े।

रत्नावली अपने माता पिता और सखि सहेलियोंसे अभी मिलने भी न पाई थी, कि तुलसीदास वहाँ जा पहुंचे। उन्हें देख तेही वह बहुत लज्जित हुई। उसने क्रोधसे विह्वल हो निपट झुंझलाकर, बाल्य कालके अंकुरित रामानुरागके कारण असाधारण निर्वेद पूर्ण वचन कह डाले। बोली—"प्राणनाथ! मेरे इस अस्थि और चर्म निर्मित तुच्छ शरीर पर आपकी जैसी प्रीति है, वैसी लोकाभिराम श्री रामचन्द्र पर होती तो आप अनायास भगवद्धाम प्राप्त कर लेते। अधिक क्या कहूं; चिह पुरुषको घृणा

स्पर्श आदि क्षणिक सुखाभासमें कदापि आसक्त न होना चाहिये।"

रत्नावलीके यह शब्द सुनकर तुलसीदासका हृदय टूक टूक हो गया। वे क्षण भरके लिये किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये। किन्तु यह दशा अधिक समय तक न रही। रत्नावलीके शब्दोंमें धिक्कार, उपदेश और वैराग्य तानोंकी पुट थी। उसका निशाना ठीक जा लगा था। परन्तु फल जो हुआ, वह शायद उसकी कल्पनामें भी न था। तुलसीदासके हृदयमें एक बार ही वैराग्यकी भावना जागरित हो उठी। सूर्योदय होने पर जिस प्रकार अन्धकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार उनका मोह जाता रहा। वे उसी क्षण ससुरालसे लौट पड़े। मनोवृत्तिके साक्षात्कारका अनुभव प्राप्त करनेके लिये काशीपुरी चले गये। वहीं एकाग्र हो ईश्वराराधनमें वे लीन हुए।

रत्नावलीको यह स्वप्नमें भी खयाल न था, कि उसके वचनों का ऐसा प्रभाव पड़ेगा। यदि वह यह जानती, कि इन वचनोंसे मर्म्माहत हो मेरे प्राण धन गृहत्यागी हो जायंगे तो वह ऐसे वचन कदापि न कहती। भारतीय ललनायें अपने पतिका अनिष्ट कभी नहीं चाहतीं। रत्नावलीका कौन दोष। जैसी होनी होती है, वैसी ही बुद्धि हो जाती है। भावीको कौन रोक सकता है? विधिके विधानमें हस्तक्षेप करनेका किसमें सामर्थ्य कहां? परमात्माकी इच्छाको कौन जान सकता है? यदि रत्नावली यह शब्द न कहती, तो तुलसीदासके हृदयमें आन्दोलन कैसे मचता?

यदि वे इस प्रकार मर्माहत न होते, तो गृहत्यागी क्यों बनते? उनके जीवनमें यह परिवर्तन कैसे होते? और यदि यह न हुआ होता, तो रामायणकी रचना क्यों होती? जन समाजका कल्याण कैसे होता? तुलसीदासको भी कौन जानता? वे भी अन्यान्य मनुष्योंकी तरह अपनी जीवन अवधि समाप्त कर कालके गालमें समा गये होते। जो कुछ हुआ सो ईश्वरेच्छासे हुआ—रत्नावलीका कोई दोष नहीं।

यद्यपि तुलसीदासके हृदयमें बाल्याकालसे ही रामानुरागका अङ्कुर अङ्कुरित हो रहा था, किन्तु बीचमें उसपर आवरण पड़ गया था। अब वह पुनः प्रकट हो वृद्धिगत होने लगा। निरन्तर वे यही सोचा करते थे कि क्या कभी मुझे भी रामचन्द्रके दर्शन होंगे क्या मैं भी कभी अपनेको धन्य समझ सकूंगा? क्या मुझ पर भी कभी दीनदयालकी दया दृष्टि होगी?

कहते हैं, कि तुलसीदास शौचसे निवृत्त हो नित्य ही शेष जल एक बबूलके वृक्षमें छोड़ दिया करते थे। एक दिन जल बचाना भूल गये। उस वृक्षके पास पहुंचने पर उन्हें स्मरण हुआ। वे किंचित खिन्न हो पश्चात्ताप करने लगे। उनकी यह दशा देख, उस वृक्षसे एक विशाल काय प्रेत निकलकर बोला—"आप व्यर्थ चिंता करते हैं। आपके जलदानसे मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूं, आज यदि जल नहीं है तो आप खिन्न न हों। अभीष्ट वर मांगिये, मैं आपसे बड़ा प्रसन्न हूं।"

प्रेतकी यह बात सुन, तुलसीदासने कहा—"यदि आप मुझे

अभीष्ट वर दे सकते हैं, तो श्रीरामचन्द्रके साक्षात दर्शन करा दीजिये। इसके अतिरिक्त मेरी और कोई अभिलाषा नहीं।"

प्रेतने हँसकर उत्तर दिया—"महाराज! यदि मुझमें ऐसा सामर्थ्य होता, तो मैं इस योनिमें ही क्यों रहता। मैं आपको श्रीरामके दर्शन नहीं करा सकता, पर हां, आपको ऐसा उपाय बतला सकता हूं, जिससे आप अपना अभीष्ट प्राप्त कर सकेंगे। सुनिये-कर्णघण्टा पर प्रति दिन राम कथा होती है। कथा सुनने के लिये हनुमानजी भी कुष्ट कवलित काय धारण कर नित्य नियत समय पर आते हैं। यदि एकान्तमें, उनके चरण पकड़ कर सविनय निवेदन करोगे तो वे आपकी इच्छा अवश्य पूरी कर देंगे उन्हींमें यह करनेका सामर्थ्य है।"

प्रेतकी यह बात सुन तुलसीदास उसीदिन कथा सुनने गये। वहां उन्हें वैसेही घृणित वेशमें हनुमानजी दिखाई दिये। कथा समाप्त होने पर, एकान्त देख वे इस प्रकार उनके चरणोंमें जा लिपटे, कि चेष्टा करने पर भी हनुमान अपनेको छुड़ा न सके। तुलसीदासने एक बालककी भांति अभीष्ट प्राप्तिके लिये उनसे हठ और आग्रह किया। हनुमानजी भी उनकी आन्तरिक दृढ़ता, धीरता और रामानुराग देख कर प्रसन्न हो उठे। बोले—"चित्रकूटमें जाकर शिवाराधन करो; वहीं कुछ दिनोंके बाद तुम्हें रामचन्द्रके दर्शन होंगे"

हनुमानजीके यह वचन सुनकर तुलसीदासको सीमातीत आनन्द हुआ। दूसरे ही दिन वे चित्रकूटके लिये रवाना हुए

वहां रामघाट पर, आश्रमकी स्थापना कर वे शिवाराधन करने लगे। बीच बीचमें उनका जी छटपटा उठता था। रामचन्द्रके दर्शनार्थ हृदय व्याकुल हो उठता था। उसी शुभ घड़ीकी चिन्ता और प्रतिक्षामें वह लीन रहते थे।

एक दिन वे निकटवर्ती जङ्गलमें विचरण कर रहे थे। विचरण करते हुए उन्होंने देखा, कि अश्वारूढ़ दो युवक धनुष वाण ताने मृगया करते हुए आगे चले जा रहे हैं। उन्हें मृगयासक्त प्राकृत पुरुष जान, तुलसीदासने उनकी ओरसे अपनी दृष्टि हटा-ली। इसी समय हनुमानजीने प्रकट हो कहा—"क्यों, रामचन्द्र-जीके दर्शन हुए ?"

हनुमानजीकी यह बात सुन तुलसीदास पश्चात्ताप करने लगे। बोले—"मैंने तो उन्हें पहचाना नहीं, अतः उनकी ओरसे दृष्टि हटा ली।"

इतना कह वे गद्गद् हो पश्चाताप स्वरूप अपने नेत्रोंको उला हना देने लगे:—

"लोचन रहे बैरी होय।
जान बूझ अकाज कीन्हो, गये भूमें गोय।
अवगति जो तेरी गति न जान्यों, रह्यो जागत सोय॥
सबै छबिकी अवधिमें हैं, निकसिगे ढिग होय।
कर्महीन मैं पाय हीरा, दयो पलमें खोय॥
दास तुलसी राम बिछुरे, कहो कैसी होय।"

तुलसीदासने इन शब्दों द्वारा अपना हृदय निकालकर हनु-

मानजीके सामने रख दिया। हनुमानजीने देखा, कि प्रत्येक शब्दमें उनके हृदयका विषाद और पश्चात्ताप झलक मार रहा है। तुलसीदासके मुखपर भी यही भाव विद्यमान हैं। यह सब देखकर वे प्रसन्न हो उठे। बोले—"खेद न करो। मैं आपको पुनः रामचन्द्रजीके दर्शन कराऊंगा।"

इतना कह हनुमान अन्तर्ध्यान हो गये। तुलसीदास पुनः उसी प्रकार शिवाराधन करते हुए कालयापन करने लगे। एक दिन वे वनमें भ्रमण करने गये। मार्गमें क्या देखते हैं, कि एक स्थानपर बड़े समारोहसे रामलीला हो रही है। मूर्त्तिमान राम, लक्ष्मण और सीता विराजमान हैं। राज्याभिषेकका प्रब-न्ध हो रहा है।

यह अद्भुत लीला देख वे आश्रमकी ओर आ रहे थे। मार्गमें एक परिचित ब्राह्मण मिला। उससे बातही बातमें तुलसीदासने रामलीलाका वृत्तान्त भी कहा। उनकी बात सुनकर ब्राह्मण हंस पड़ा। बोला—"आप क्या कहते हैं? कहीं आजकल भी रामलीला होती है? रामलीलाका यह समय कहां?"

तुलसीदासने कहा,—"नहीं मैं जो कहता हूं, वह बिलकुल ठीक है। यदि आपको विश्वास न हो, तो चलिये अभी दिखा दूं।"

ब्राह्मणको विश्वास न हुआ। तुलसीदास झुंझला कर उसे रामलीला दिखाने ले चले। परन्तु उस स्थानमें जाकर देखते हैं,

तो न कहीं राम हैं, न लक्ष्मण सीता। रामलीलाका नामनिशान भी नहीं है। वनका वही प्राकृतिक दृश्य दिखाई दे रहा है—वृक्षों की घटा घिरी हुई है और पक्षीगण कलरव कर रहे हैं।

यह देखकर तुलसीदास लज्जित हो गये। उन्हें हनुमानजी के वचनोंका स्मरण हो आया। वे प्रसन्न हो कहने लगे, कि मुझे आज श्रीरामचन्द्रजीके साक्षात् दर्शन हुए। फिर भी एक बातकी कमी रह गयी। वे उनकी स्तुति और सेवा न कर पाये। यह बात उनके हृदयमें खटकने लगी। वे पुनः राम-दर्शन पानेको गाढ़ उत्कण्ठासे अहर्निश भगवद्भजनमें लीन रहने लगे। उनका यह अनुराग देख रामचन्द्रने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देना स्थिर किया।

एक दिन कोई पर्वणी थी। चित्रकूटमें सहस्र सहस्र साधु संत एकत्र थे। तुलसीदास भी स्नान शौचसे निवृत्त हो देव-सेवाके लिये चन्दन घिस रहे थे। इसी समय करुणा-वरुणा लय कौशल्यानन्दन श्रीरामचन्द्रने उनके निकट उपस्थित हो कहा, "स्वामीजी! मेरे ललाटमें तिलक कर दीजिये।"

श्रीरामचन्द्र देखनेमें एक राजकुमारसे प्रतीत होते थे। संभव था, कि तुलसीदास इस बार भी उन्हें न पहचानते और उन की बातपर ध्यान न देते, परन्तु उनकी ओर दृष्टिपात करते ही उन्होंने देखा, कि पीछेसे हनुमानजी सङ्केत कर रहे हैं। वे समझ गये, कि यह राजकुमार नहीं, स्वयं श्रीरामचन्द्र हैं। उनके आनन्दका पारावार न रहा। वे अतीव प्रसन्न हो, चन्दन घिस

घिसकर प्रभुके अनूप स्वरूपको चर्चित करने लगे। अनेक साधु सन्त यह अलौकिक कौतुक देखनेके लिये एकत्र हो गये। उसी समय तुलसीदासने यह दोहा पढ़ाः—

चित्रकूटके घाटपर, भइ सन्तनकी भीर।
तुलसीदास चन्दन घिसैं, तिलक देत रघुवीर॥

इस प्रकार तुलसीदास साक्षात् अपने इष्टदेवका दर्शन और स्पर्शन कर घनिष्ट आनन्दको प्राप्त हुए। इसके बाद उन्हें स्वप्न में इच्छानुसार रामचन्द्रजी दर्शन देने लगे। तुलसीदासके समान सुखी और सौभाग्यशाली मनुष्य संसारमें अब और कोई न था।

कुछ दिनोंके बाद चित्रकूटसे वे अयोध्यापुरी चले गये। वहीं उनके हृदयमें रामायण रचनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। इसे ईश्वरीय प्रेरणा समझ, उन्होंने चैत्र शुक्ल नवमी मङ्गलवार संवत १६३१ के दिन कार्यारम्भ किया। इस विषयमें उन्होंने स्वयं लिखा है किः—

"संवत सोलहसौ इकतीसा * करौं कथा हरिपद धरि सीसा।
नौमी भौमवार मधुमासा * अवधपुरी यह चरित प्रकाशा॥

किन्तु वे पूरा अरण्यकाण्ड भी न लिख पाये थे, कि इसी बीच अचानक अयोध्यानिवासी वैष्णवोंसे कलह हो गयी। अतः वे अयोध्या छोड़ काशी चले गये। वहां असीके किनारे लोलार्क कुण्डके समीप उन्होंने अपना निवासस्थान नियत किया। वहीं इस लोकमान्य रामायणकी पूर्णाहुति हुई।

काशीमें तुलसीदासने बड़ी कीर्त्ति प्राप्त की। रामायणके कारण उनका चारों ओर नाम हो गया। जहां देखो, वहां यही

चर्चा हो रही है। बात यह थी, कि उस समय तक भाषाकाव्यका अधिक प्रचार न हुआ था। लोग बहुधा संस्कृतमेंही काव्य और विविध विषयोंके ग्रन्थ लिखा करते थे। तुलसीदासकी कृतिमें एक ओर नवीनता थी और दूसरी सरलता रसिकता और वे सभी गुण विद्यमान थे, जो किसी ग्रन्थको लोकप्रिय बना देते हैं।

तुलसीदासकी यह विपुला कीर्त्ति काशीके कितनेही पण्डितोंको असह्य हो पड़ी। वे तुलसीदासके पास गये और बोले—"आपकी रचनायें संस्कृतमें न होकर व्रजभाषामें क्यों हुआ करती हैं?

तुलसीदास पण्डितोंके आगमनका कारण समझ गये। वे जान गये, कि यह लोक शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। अतः कुछ सोचकर बोले—क्षमा करिये, मैं शुष्क वाद नहीं करता।

"हरि हर यश सुर नर गिरा, वर्णहिं सन्त सुजान।
हांड़ी हाटक चारुचिर, रांधे स्वाद समान॥
का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये सांच।
काम जो आवे कामरी, का ले करै कमाच॥"

तुलसीदासकी यह बात सुन, पण्डितगण कुछ लज्जित हुए उन्होंने यह बात मधुसूदनाचार्यसे निवेदन की। मधुसूदनाचार्यने स्वामीजीको अनेक धन्यवाद दे कहा—

"परमानन्द पत्रोऽयं जङ्गमस्तुलसी तरुः।
कविता मंजरी यस्य राम भ्रमर भूषिता॥"

अर्थात परमानन्दमय पत्रोंसे सम्पन्न, कविता मंजरीमण्डित और रामरूप भ्रमरसे भूषित यह जङ्गम (चलने फिरनेवाला) तुलसीका वृक्ष है—इसकी निन्दा न करो।

दण्डीस्वामीके यह वचन सुन पण्डितगण शान्त हो गये। फिर कभी उन्होंने तुलसीदाससे शास्त्रार्थ करनेका नाम तक न लिया। रामायणकी महिमा बढ़ चली। लोग उसे श्रवण करनेके लिये वर्षाके बादलोंकी भाँति उमड़ पड़ते थे। स्वामीजी सबको बड़े प्रेमसे सुनाते। उन्होंने अपनी अद्भुत रचना द्वारा लोगोंके हृदय जीत लिये। उनकी कीर्त्ति-पताका दिगदिगान्तमें लहराने लगी।

रत्नावली अबतक अपने मायकेमें ही थी। उसे तुलसीदासके गृहत्यागका समाचार विदित हो चुका था। मनही मन वह अपने कियेपर पश्चाताप भी कर रही थी। जब उसने सुना, कि तुलसीदासजी काशीमें हैं, तब विह्वलता और भी बढ़ गयी उसने तुलसीदासके पास चिट्ठीमें निम्नलिखित दोहा लिख भेजा।

"कटिकी खीनी कनकसी, रहत सखिन संग सोय।
मोहि फटेको डर नहीं, अनत कटे डर होय॥"

तुलसीदास यह पत्र पाकर मुस्कुरा उठे। कहने लगे—रत्नावली! तुम धन्य हो। तुमने मुझे पहले भी उपदेश दिया था और फिर भी दे रही हो। तुम्हें इस बातकी चिन्ता है, कि कहीं मैं विपथगामी न हो जाऊं। पर निश्चिन्त रहो, तुम्हारे वचन मुझे कभी न भूलेंगे। मैंने सदाके लिये संसार त्याग

कर वैराग्य धारण किया है। निदान, उन्होंने उस पत्रका उत्तर इस प्रकार लिख भेजा—

"कटे एक रघुनाथ संग, बाँधि जटा शिर केश।
हम तो चक्खा प्रेमरस, पत्नीके उपदेश॥"

रत्नावली अपने पत्रका यह उत्तर प्राप्त कर निश्चिन्त हो गयी उसे विश्वास हो गया कि तुलसीदासका हृदय निर्बल नहीं है। वे पतित नहीं हो सकते। उसे यह भी आशा न रही, कि अब कभी उनसे भेंट होगी। अतः वह भी विरक्त भावसे एक तपस्विनीकी भाँति कालयापन करने लगी। सांसारिक बन्धनोंमें रहकर ऐसा जीवन व्यतीत करना सहज नहीं। क्या उसे हम साध्वी न कहेंगे?

तुलसीदासका धर्मोपदेश सुन, अनेक दुर्व्यसनी, चोर वेश्या और पतित मनुष्य सदाचारी बन गये। अनेक नास्तिक आस्तिक हो गये और अनेक पापी पवित्र जीवन व्यतीत करने लगे। समय समयपर राजे महाराजे भी उन्हें मिलने आया करते थे। जयपुर नरेशकी तो उनपर बड़ीही श्रद्धा थी। किन्तु यह सब होनेपर भी तुलसीदासको किसी बातका अभिमान न था। वे धनी और गरीब सुखी और दुःखी सबको एक समान मानते थे। दिन भर उनके आश्रममें दर्शकोंकी भीड़ लगी रहती थी। यह देखकर एक साधारण पुरुषने उनसे सहज स्वभाव प्रश्न किया कि महाराज! अब आपके दर्शनार्थ आनेवाले मनुष्योंकी भीड़ पहलेकी अपेक्षा इतनी अधिक क्यों होती है? स्वामीजीने कहा—

लहै न फूटी कौड़िहू, को चाहै किहिकाज।
सो तुलसी महंगो कियो, राम गरीब निवाज॥
घर घर मांगे टूक पुनि, भूपति पूजे पाय।
जो तुलसी तब राम बिनु, सो अब राम सहाय॥

सम्राट् अकबरके दीवान अमीर खान खानाके पुत्र अब्दुल
। और गोस्वामीजीकी परस्पर प्रकृत मैत्री थी। मुसलमान
'र भी अब्दुल रहीमका हिन्दीपर जो प्रेम था वह हिन्दी
भाषियोंसे छिपा नहीं है। आज भी रहीमके दोहे हमारे
को नीतिकी शिक्षा देते हैं। एक दिन स्वामीजीने उनके
निम्नलिखित समस्या लिख भेजी—

"सुरतिय नरतिय नागतिय, सह वेदन सब कोय"

रहीमने इस समस्याकी पूर्ति इस प्रकार कर भेजी—

"गर्भ लिये हुलसी फिरैं, सुत तुलसीसो होय"

इस पूर्तिमें तुलसीदासकी प्रशंसा और व्यङ्ग दोनों बातें थीं
आरम्भमेंही लिख चुके हैं, कि तुलसीदासकी माताका नाम
सी था। रहीमकी यह पूर्ति पढ़ तुलसीदासने उनके आ-
। और रसिक स्वभावकी प्रशंसा की।

राजा टोडरमलकी भी जिनकी जीवनी इसी पुस्तकमें अङ्कित
स्वामीजीके साथ गाढ़ मैत्री थी। उनका देहान्त होनेपर
मीजीने शोकाकुल हो निम्नलिखित चार दोहे लिखे थे।

"महतो चारो गांवको, मनको बड़ो महीप।
तुलसी या कलिकालमें, अथयो टोडर दीप॥

तुलसी राम सनेहको; शिर धरि भारी भार।
टोडर धरे न कांध हू; जगकर रहे उतार॥
तुलसी उर थाला विमल, टोडर गुणगण बाग।
समुझि सुलोचन सोचिये, उमगि उमगि अनुराग॥
रामधाम टोडर गयो, तुलसी भयो अशोच।
जियबो मीत पुनीत बिनु, यही बड़ो सङ्कोच॥"

अन्तमें तुलसीदासकी कीर्त्तिलता लहराती हुई सम्राट्के दरबार तक जा पहुंची। सम्राट्ने इन्हें दिल्ली बुला भेजा। तुलसीदास गये और राज-सभामें उपस्थित हुए। सम्राट्ने कहा—"स्वामीजी! कोई करामात दिखाइये।"

स्वामीजीने उत्तर दिया—"मैं तो केवल राम नाम कहकर अपना पेट भरता हूं। मेरे पास करामात कैसी!"

यह सुन सम्राट्ने असन्तुष्ट हो उन्हें कारावासमें डाल दिया। स्वामीजी अनशन व्रत धारण कर वहां हनुमान और श्रीरामचन्द्रकी प्रार्थना करने लगे। कहते हैं, कि उसी समय दिल्लीमें ऐसा उपद्रव मचा, मानों प्रलय हो जायगा। न जाने कहांसे हजारों वन्दर आकर दिल्लीको चौपट करने लगे। जो उनके हाथ लगा वही तोड़ फोड़ दिया। बालक तरुण वृद्ध और स्त्री जिसे देखो उसे ही दांत और नखोंसे घायल किये देते हैं। सरकारी कर्मचारी, सैनिक और सन्तरियोंके तो नाकमें दम आ गया। बेगमें भी व्याकुल हो उठीं। प्रजा भी संत्रस्त हो त्राहि त्राहि पुकार उठी। अन्तमें सम्राट्को किसीने समझाया,

कि तुलसीदासको बन्दी बनानेके कारण ही यह सब उत्पात हो रहे हैं। अन्य लोगोंने भी इसका समर्थन किया। निदान सम्राट्ने विवश हो उन्हें बन्धन मुक्त कर क्षमा प्रार्थना की। चलते समय तुलसीदासको बहुतसा धन देने लगा। तुलसीदासने कहा—राजन्! मैं यह धन लेकर क्या करूं?

तीन टूक कौपीनमें, अरु भाजी बिन लौन।
तुलसी रघुबर उर बसै, इन्द्र बापुरो कौन॥

यह सुन सम्राट् लज्जित हो गया। उसने बारम्बार क्षमा प्रार्थना कर उन्हें सम्मान सहित विदा किया।

कुछ दिनोंके बाद स्वामीजी वृन्दावन गये। वहां सुप्रसिद्ध भक्तमालके रचयिता नाभाजीसे भेंट हुई। नाभाजीने तुलसीदासकी कीर्त्ति पहलेसेही सुन रखी थी। अब उन्हें अपने निवासस्थानमें पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उन्हें सर्वोच्च आसन प्रदानकर उनकी समुचित अभ्यर्थना की और कहा—

त्रेता काव्य निबन्ध सहस चौबिस रामायण।
इक अक्षर उद्धरै ब्रह्महत्यादि पारायण॥
अब भक्तन सुख हेत बहुरि लीला विस्तारी।
राम चरित रस मत्त अटल निशिदिन व्रतधारी॥
संसार पारके पार कहं, सुगम रूप नौका लियो।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित, बाल्मीकि तुलसी भयो॥

नाभाजीके निकट अनेक साधु संत रहते थे। तुलसीदासकी यह प्रशंसा सुन उन्हें भी परमानन्द हुआ। नाभाजीका अति-

र्थ्य ग्रहण कर तदर्थ उन्हें धन्यवाद दे स्वामीजी अपने निवास स्थान चले गये।

एक बार स्वामीजी जब काशीमें रहते थे, तब उनके निकट मीराबाई उपस्थित हुई। उन्होंने स्वामीजीसे कहा, कि मुझे मेरे आत्मीय भगवद्भजन नहीं करने देते। मैं बड़े असमञ्जसमें पड़ी हूं। आपकी इस विषयमें क्या सम्मति है?

स्वामीजीने मीराबाईकी यह बात सुन उन्हें निम्नलिखित उत्तर दिया।

"जाको प्रिय न राम वैदेही।
त्यागिय तिन्हें कोटि वैरी सम, यद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कन्त ब्रज बनितन भये सब मंगलकारी॥
ताते नेह रामहीके मनियत, नाते नेह जहां लौं।
तुलसी सोइ आपनो सकल विधि पूज्य प्राणते प्यारो।
जाते होय सनेह राम पद, इतनो मतो हमारो॥

मीराबाईने तुलसीदासकी यह सम्मति मानकर तदनुसारही आचरण किया। पति और आत्मीय जनोंके लाख प्रयत्न करने पर भी वे सांसारिक बन्धनोंमें अबद्ध न हुईं।

तुलसीदास भाषा कवियोंके मुकुट-मणि माने जाते हैं। इनके हाथकी लिखी रामायणकी दो प्रतियां अब तक वर्त्तमान हैं। एक तो इनकी जन्मभूमि राजापुरमें और दूसरी काशीमें श्रीसीतारामजीके मन्दिरमें स्थापित है।

राजापुरवाली प्रति सम्प्रति अपूर्ण है। केवल बालकाण्ड को छोड़ उसका शेष भाग नष्ट हो गया है। इसका कारण यह सुना जाता है, कि एक वैरागी इस पुस्तकको लेकर भागा। यह समाचार विदित होतेही उससे पुस्तक छीननेके लिये बहुत लोगोंने उसका पीछा किया। निदान, जब उसने जाना, कि अब मैं अवश्य पकड़ा जाऊंगा तब वह पुस्तकको यमुनामें फेंक अपने प्राण बचाकर भागा। तदन्तर बड़ी खोज करनेपर केवल बालकाण्ड हस्तगत हुआ। शेष भाग जलमें गलकर नष्ट हो चुका था।

इन दो प्रतियोंके अतिरिक्त काशी नरेशके पास भी एक प्राचीन प्रति है, किन्तु वह स्वामीजीकी लिखी हुई नहीं है। उसे देखनेसे विदित होता है वह उनकी मृत्युके २४ वर्ष बाद संवत १७०४ में उनकी हस्तलिखित प्रतिसे नकल की गई थी। रामायणके अतिरिक्त तुलसीदासकी रची हुई और पुस्तकें इस प्रकार हैं:—

(१) कवित्तरामायण (२) गीतावली (३) दोहावली (४) विनय पत्रिका (५) कृष्णगीतावली (६) राम सतसई (७) रामलला (८) नहछू (९) वैराग्य संदीपिनी (१०) बरवा रामायण (११) कुण्डलिया रामायण (१२) रोला रामायण (१३) कड़खा रामायण (१४) झूलना रामायण (१५) पार्वती मङ्गल (१६) जानकी मङ्गल (१७) सङ्कटमोचन (१८) हनुमान बाहुक (१९) राम शकुनावली (२०) रामशलाका।

अब तक इतनीही पुस्तकें मिल सकी हैं। इनमें रामायण सर्वश्रेष्ठ, वृहत और सुप्रसिद्ध है। भारतमें लङ्कासे लेकर हिमालय और पुरीसे लेकर द्वारिका तक इसका घर घर प्रचार है। ईसाई लोग साभिमान यह बात कहते हैं, कि संसारमें बाइबिलके जितने संस्करण हुए हैं, उतने और किसी ग्रन्थके नहीं हुए। किन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं। बाइबिल छपाकर स्वल्प मूल्यमें बेचनेके लिये बड़े बड़े फण्ड स्थापित हैं। वह प्रायः रद्दी कागजोंके भाव अथवा उससे किञ्चित अधिक मूल्यपर बेचा जाता है। अनेक संस्थायें विना मूल्य भी वितरण करती हैं। किन्तु रामायणके लिये ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। उसे प्रत्येक मनुष्य अच्छे दामोंपर खरीद करता है। अतः रामायणके संस्करणोंका जितना महत्व है, उतना बाइबिलके संस्करणोंका कदापि नहीं। रामायणका प्रचार वास्तविक प्रचार है और बाइबिलका प्रचार कृत्रिम है, रामायणके संस्करण बजारकी मांगके कारण करने पड़ते हैं। परन्तु बाइबिलके संस्करण बाजारकी मांग न होनेपर भी केवल प्रचारके उद्देश्यसे किये जाते हैं। अब तक न मालूम रामायण के कितने संस्करण हो चुके, कितनी प्रतियां बिक चुकीं और कितनी बिकेंगी। भारतवर्ष और हिन्दी साहित्य इस ग्रन्थके कारण अपना मस्तक साभिमान ऊंचा रख सकते हैं।

महात्मा तुलसीदासके विषयमें अनेक प्रकारकी लौकिक और अलौकिक कथायें प्रचलित हैं। हम उन्हें यहां अङ्कित कर

व्यर्थ ही पाठकोंका समय नष्ट करना नहीं चाहते। कुटिल-कालके अटल नियमानुसार संसारमें जो जन्म लेता हैं, उसे मृत्युके अधीन अवश्य होना पड़ता है। तुलसीदास भी तदनु-सार ६१ वर्षकी अवस्थामें सद्गतिको प्राप्त हुए। उनकी मृत्यु-के विषयमें यह दोहा प्रचलित है—

संवत सोलहसौ असी, असी गङ्गके तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

स्वामीजीके अन्तिम वचन यह थे।

राम नाम यश बरणिकै, भयों चहत अब मौन।
तुलसीके मुख दीजिये' अबही तुलसी सोन॥

महात्मा सूरदास

स्वनामधन्य महात्मा सूरदासकी कोई प्रामाणिक जीवनी नहीं मिलती। इनके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी दन्तकथायें प्रचलित हैं। उन्हें देखनेसे ज्ञात होता है, कि इनके और तुलसीदासके प्रारम्भिक जीवनमें बहुत कुछ साम्य है। कहते हैं, कि उनके पिताका नाम रामदास था। ज्ञातिके वे ब्राह्मण थे। सूरदासका जन्म सम्वत् १६४०में हुआ था। उनका प्रकृत नाम विल्वमङ्गल था। किशोरावस्थामेंही उनके पिताका परलोक वास हुआ था। उसी समय विल्व-मङ्गल चिन्तामणि नामक एक वारांगनाके प्रेम-जालमें उलझ चुके थे। चिन्तामणिपर उनका असीम प्रेम था। उन्हें एक दिन भी उसके बिना एक युग समान प्रतीत होता था।

एक दिन विल्वमङ्गलके पिताका श्राद्ध था। श्राद्धके एक दिन पहले वे चिन्तामणिके पास गये थे और चलते समय उससे दूसरे दिन मिलनेका वादा कर आये थे। श्राद्धके दिन घरमें बड़ी चहल पहल थी। अनेक वेदज्ञ ब्राह्मणोंको भोज-नार्थ निमन्त्रण दिया गया था। विल्वमङ्गलने यथा समय पुरोहितके आदेशानुसार श्राद्धकर्म आरम्भ किया। कुछ देरके बाद वे एकाएक चौंक पड़े। उन्हें चिन्तामणि और अपने वादेका स्मरण हो आया। पुरोहितसे उन्होंने यथा सम्भव

शीघ्र श्राद्धकर्म सम्पन्न करानेका आग्रह किया। किसी तरह काम निपटनेपर वे चिन्तामणिके यहाँ जानेको प्रस्तुत हुए। उस समय शाम हो चुकी थी। घरमें अतिथि अभ्यागत और नाते रिश्तेदारोंको बड़ी भीड़ थी। लोगोंने उनसे उस समय बहुत कुछ कहा सुना, बहुत समझाया, पर कोई फल न हुआ। वे उसी क्षण घरसे निकल पड़े।

बिल्वमङ्गलका चित्त चिन्तामणिपर लगा हुआ था। चिन्तामणिका निवासस्थान नदीके उस पार था। चारों ओर सन्नाटा और अन्धकार व्याप्त हो रहा था। आकाश मेघाच्छन्न था। रह रहकर बिजली चमक रही थी। रिमझिम रिमझिम पानी बरस रहा था। हवा बड़े जोरसे चल रही थी। उसके वेगसे बड़े बड़े वृक्ष भी उखड़े जा रहे थे। परन्तु इन सब बातोंकी ओर बिल्वमङ्गलका ध्यान न था। उनकी लौ तो चिन्तामणिसे लगी हुई थी। किसी तरह गिरते पड़ते ठोकरें खाते वे नदी तटपर जा पहुंचे।

वहाँ पहुंचनेपर बिल्वमङ्गलने देखा, कि नदी बड़े वेगसे बह रही है। नाविक भी प्राण भयसे नौकाको वहीं छोड़, अपने अपने घर चले गये हैं। बहुत खोज करनेपर उन्हें एक नाविक दिखाई दिया, परन्तु लाख समझानेपर भी वह नाव छोड़नेको तय्यार न हुआ। धारा इतनी प्रचण्ड थी, कि तैरकर पार करना भी कठिन था। परन्तु बिल्वमङ्गलको चैन कहाँ? वे इधर उधर टहलते हुए कर्तव्य स्थिर करने लगे। अन्तमें

कामावेशके कारण उन्हें कुछ सूझ न पड़ा। वे एकाएक नदीमें कूद पड़े।

बिल्वमङ्गल नदीमें कूद तो पड़े, परन्तु सम्हलना कठिन हो गया। पहले कुछ दूर बहे, फिर डूबने लगे। प्राण जानेका समय आ पहुंचा, पर उन्हें इसकी चिन्ता न थी। उनका चित्त तो चिन्तामणिके चिन्तनमें लीन था। सौभाग्यवश नदीमें एक शव बहा जा रहा था। बिल्वमङ्गलने उसे काष्ट समझकर पकड़ा और उसीके सहारे नदी पार की।

नदी पारकर जब वे चिन्तामणिके निवासस्थानमें पहुंचे, तो देखा कि मकानका दरवाजा बन्द है। उन्होंने बहुत पुकारा, पर किसीने किवाड़ न खोले। तूफानके कारण पशु पक्षी तक बाहर निकलनेकी हिम्मत न कर सकते थे। नीरवताने अन्धकारकी भीषणता अधिक बढ़ा दी थी। बिल्व-मङ्गल चिन्तामणिके मकानके चारों ओर चक्कर काटने लगे। कई बार इधर उधरसे ऊपर चढ़नेकी चेष्टा की, परन्तु सफल न हो सके। अन्तमें बगीचेकी ओर गये। बगीचा मकानसे बिल्कुल सटा हुआ था। बिजली चमकनेपर बिल्वमङ्गलने उसके प्रकाशमें देखा, कि खिड़कीके पासही एक वृक्षसे बँधी हुई रस्सी लटक रही है। देखतेही वे आनन्दसे फूल उठे और वृक्षपर चढ़ उस रस्सीके सहारे किसी तरह चिन्तामणिके कमरेमें जा पहुंचे।

चिन्तामणि बेखबर सो रही थी। बिल्वमङ्गलने उसे अतृप्त

नयनोंसे देखकर मनहीमन उसके रूप लावण्यकी प्रशंसा की। दूसरेही क्षण वे वेहोश होकर गिर पड़े। शीत और असीम परिश्रमके कारण उनका शरीर शिथिल हो गया था। चिन्तामणि उनके गिरनेका शब्द सुनकर जाग पड़ी। पहले तो वह भयभीत हुई, पर जब विल्वमङ्गलको पहचाना, तब उसके आश्चर्यका वारापार न रहा। यथोचित उपचार द्वारा उन्हें शुद्धिमें लाकर उसने कहा—"विल्वमङ्गल! क्या तुम पागल हो गये हो? तूफानके.वक्त ऐसे अन्धकारमें तुमने नदी किस तरह पार की? क्या कल घर न गये थे? इस समय तो नदी पार करना सम्भव नहीं है।

विल्वमङ्गलने चिन्तामणिको अथेति सारा हाल कह सुनाया, पर उसे उनकी बातपर विश्वास न हुआ। वह सोचने लगी, कि शायद यह मुझे धोखा दे रहे हैं। उसने कहा—"यदि मैं उस लकड़ी और रस्सीको अपनी आंखों देखूँ, तो विश्वास कर सकती हूँ अन्यथा नहीं।

विल्वमङ्गलने उसे विश्वास दिलानेके लिये उन वस्तुओंका दिखाना स्वीकार किया। खिड़कीके पास आकर उन्होंने कहा कि—"वह देखो रस्सी लटक रही है। उसीको पकड़कर मैं अन्दर आया हूँ।"

चिन्तामणिने देखा, कि वह रस्सी नहीं, बल्कि सांप है। देखतेही वह चिल्ला उठी। विल्वमङ्गलने भी गौरसे देखा। चिन्तामणिने उन्हें बहुत खरी खोटी सुनायीं। कौतूहल वश वह

उसी समय उनके साथ नदी तटपर गयी। वहां विल्वमङ्गलने वह शव बताया, जिसके सहारे, काष्ट समझकर उन्होंने नदी पार की थी। शवको देखतेही चिन्तामणिने विल्वमङ्गलपर धिक्कारकी बौछार शुरू की। उसने कहा—निःसन्देह तुम पागल हो गये हो। यदि ऐसा न होता, तो ऐसे तूफानमें शवको लकड़ी और सर्पको रस्सी समझकर, मेरे पास आनेकी चेष्टा न करते। यह कैसी मूर्खता है? मैं मानती हूं, कि यह सब मेरे प्रेमके कारण हुआ है, पर ऐसे प्रेमको धिक्कार है! यदि इतना प्रेम परमेश्वरपर होता तो आज आवागमनके बन्धनसे मुक्त हो गये होते। यदि तुम मूर्ख न होते, तो इस तरह मिथ्या मोहमें पड़कर दुःख न उठाते।

चिन्तामणिके यह शब्द विल्वमङ्गलके हृदयमें बाणकी तरह चुभ गये। उनके अज्ञानका परदा हट गया और हृदयमें दिव्यज्ञानके बीज अंकुरित हो उठे। वे उसी क्षण चिन्तामणिके घरसे निकल पड़े और हरिस्मरण करते हुए यत्र तत्र भ्रमण करने लगे। जैसा स्नेह वे चिन्तामणि पर रखते थे, वैसाही स्नेह अब हरि-चरणमें रखने लगे। चिन्तामणि उनके लिये वास्तवमें चिन्तामणि हो गयी।

यद्यपि वे अब हरिभक्तिमेंही लीन रहते थे, परन्तु अभी कुछ कसर थी। रूप दर्शनकी लालसा अभी छूटी न थी। हृदयमें वैराग्य होने परभी रूपवती स्त्रीको देखकर वे मोहित हो जाते थे। एकबार वे एक नगरमें भ्रमण कर रहे थे। वहां

एक व्यापारीकी स्त्रीको देखकर, उनका चित्त चलायमान हो गया। उसे फिर दुबारा देखनेकी इच्छा हुई। वे तुरन्त उसके घर गये। व्यापारी बड़ा धर्मनिष्ट था। अतिथि और याचक उसके यहाँसे खाली हाथ न लौटने पाते थे। यथोचित आदर सत्कार कर उसने बिल्वमङ्गलसे उनके आगमनका कारण पूछा। बिल्वमङ्गलने कहा—आपकी स्त्रीका अप्रतिम सौन्दर्य देखकर मेरा चित्त चञ्चल हो गया है। मैं उसे फिर एकबार देखकर अपना जन्म सफल करना चाहता हू।

बिल्वमङ्गलकी यह बात सुनकर वणिक बड़ी चिन्तामें आ पड़ा, परन्तु दूसरेही क्षण, उसने अपने नियमका स्मरणकर, बिल्वमङ्गलको आश्वासन दे बैठाया और अपनी स्त्रीके पास जाकर कहा—प्रिये! आज तुम्हारी परीक्षाका दिन आ पहुँचा है। एक वैरागी ब्राह्मणने तुम्हारे रूप-दर्शनकी भिक्षा मांगी है। अतिथिकी इच्छा पूर्ण करनीही होगी। मैं उसे वचन दे चुका हूँ। चलो अपना कर्त्तव्य पालन करो।

वणिककी स्त्री पतिव्रता थी। पतिकी बात सुन वह उसके चरणोंमें लोट पड़ी। कहने लगी—नाथ! मैं आपको छोड़, और किसीका मुख नहीं देख सकती। प्राण दे दूँगी, पर इस तरह पर पुरुषको मुँह न दिखाऊँगी।

वणिकने कहा—प्रिये! तुम जानती हो, कि मैं अतिथिके आतिथ्यमें किसी तरहकी कोरकसर नहीं रखता। यदि वास्तवमें तुम मुझे प्रेम करती हो, तो चलो और इस पुण्य-

कार्य्यमें मेरा हाथ बटाओ। जब तुम पर पुरुषको भाई और पिता समान समझती हो, तब तुम्हें मुख दिखानेमें कोई आपत्ति न होनी चाहिये।"

पतिकी यह बात सुन, वह साध्वी स्त्री निःसंकोच भावसे आकर बिल्वमङ्गलके सामने खड़ी हो गयी। बिल्वमङ्गलने उसे सतृष्ण नयनोंसे देखकर कहा—"सुभगे! मैं तेरे अलौकिक रूप लावण्यपर मुग्ध हो रहा हूँ।"

वणिक पत्नीने उत्तर दिया—"यह तेरे नेत्रोंका दोष है। वे तुझे विपथगामी बना रहे हैं। तू जितने प्रेमसे मुझे देख रहा है, उतनेही प्रेमसे विभुको देख—तेरा कल्याण होगा।"

इतना कह वणिक पत्नी अन्दर चली गयी। उसके शब्दोंसे बिल्वमङ्गल बहुतही प्रभावान्वित हुए। वे अनुभव करने लगे, कि वास्तवमें इस मिथ्या मोहका कारण मेरे नेत्र हैं। यदि यह न होते, तो मैं इस तरह अपने पथसे विचलित न होता। धिक्कार है मुझे और धिक्कार है मेरे नेत्रोंको! यदि इन्हें फोड़ डालूँ, तो फिर पथभ्रष्ट होना सम्भव नहीं। न कुछ देखूँगा, न मोह होगा। हरिभक्तिमें भी कुछ बाधा न पड़ेगी और मैं शान्ति पूर्वक भगवद्भजन कर सकूँगा। यह सोचकर बिल्वमङ्गलने अपने दोनों नेत्र फोड़ डाले और उस स्त्रीको मन ही मन धन्यवाद दे जंगलकी राह ली। इसी समयसे वह सूरदासके नामसे विख्यात हुए।

भक्तमाल प्रभृति ग्रन्थोंमें लिखा है, कि सूरदासको भग-

वानने दर्शन दे, उन्हें कृतार्थ किया था। कुछ लोग कहते हैं, कि वे नेत्र हीन होनेके कारण, एक कूपमें गिर पड़े थे और स्वयं भगवानने उससे उनका उद्धार किया था। कुछ लोग कहते हैं, 'कि भगवान गोपपुत्रके वेशमें सदा उनके साथ रहते थे और उन्हें सब प्रकारसे सहायता दिया करते थे। उसकी सहायतासे वह वृन्दावन पहुँच पाये थे, और वहाँ हरि-दर्शन-कर मुक्ति लाभकी थी। कुछ भी हो, पर इसमें सन्देह नहीं, कि उपरोक्त घटनाओंके बाद वे हरिभक्तिमें तन्मय हो गये और तद्द्वारा मुक्ति लाभ की।

सूरदास ब्रजभाषाके महान कवि थे। उन्होंने कृष्णभक्तिपर १२५००० पदोंकी रचना की थी। सूरसागर नामक ग्रन्थमें उनके अधिकाँश पदोंका संग्रह है। प्रत्येक पद भाषा, भाव, अलङ्कार और रसादि गुणोंसे युक्त है। मालूम होता है, कि उन्होंने अन्धावस्थामें काव्य और सङ्गीत शास्त्रका अध्ययन किया था।

कुछ लोग कहते हैं, कि वे जन्मसेही अन्ध थे, परन्तु उनकी कविता देखने पर यह बात ठीक नहीं मालूम देती। उनके अनेक पदोंमें प्राकृतिक दृश्योंका ऐसा सुन्दर वर्णन है, कि जो विना आँखके देखे लिखना असम्भव है। अनेक पदोंमें शृङ्गारकी ऐसी पुट है, ऐसे भाव हैं, जिन्हें एक अन्ध और अनुभव हीन मनुष्य व्यक्त ही नहीं कर सकता। इन बातोंपर विचार करनेसे ज्ञात होता है, कि सूरदास जन्मान्ध न थे। सम्भव है, कि सुख भोग और भ्रमण करनेके बाद किसी तरह वे अन्धे हो गये हों।

सूरदास वल्लभ सम्प्रदायके आठ महाकवियोंमें सर्वश्रेष्ठ गिने जाते है। उनके पद साहित्यिक दृष्टिसे बेजोड़ हैं। न आज तक वैसे पद किसीने लिखे हैं, न लिख सकनेकी सम्भावना है। प्रसिद्ध गायक तानसेनकी उनसे परम मैत्री थी। सूरदासकी पदावलीके सम्बन्धमें उनका निम्नाङ्कित दोहा प्रसिद्ध है:—

किधौं सूरको सर लग्यौ, किधौं सूरकी पीर।
किधौं सूरको पद लग्यौ, तन मन धुनत शरीर॥

सूरदासकी कविताके सम्बन्धमें इतनाही कहना यथेष्ट है। जिस प्रेम बन्धन द्वारा मानव हृदय आजीवन आबद्ध रहता है, योगीजन जिस प्रेमके ध्यानमें निमग्न हो एकान्त अरण्यमें समाधि साधते हैं, और संन्यासीगण जिस प्रेमसे उन्मत्त आनन्दमय जीवन व्यतीत करते हैं, उसी प्रेमके सूरदास दास थे। काशीके पास शिवपुरी नामक ग्राममें इनकी समाधि है। ब्रज भाषाके कवियोंमें इनका आसन बहुतही ऊँचा है। किसी कविने कहा है कि:—

सूर सूर तुलसी शशी, उडुगण केशवदास।
अबके कवि खद्योत सम, इत उत करत प्रकाश॥

समाप्त।